

‘भारतीय आधुनिक शिक्षा’ राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की एक त्रैमासिक पत्रिका है। इस पत्रिका का मुख्य उद्देश्य है शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों, शैक्षिक प्रशासकों तथा शोधकर्ताओं को एक मंच प्रदान करना, शिक्षा के विभिन्न आयामों जैसे-शिक्षादर्शन, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा की समकालीन समस्याएं, पाठ्यक्रम एवं प्रविधि संबंधी नवीन विकास, अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा का स्वरूप, विभिन्न राज्यों में शिक्षा की स्थिति आदि पर मौलिक तथा आलोचनात्मक चिंतन को प्रोत्साहित करना और शिक्षा के सुधार और विकास को बढ़ावा देना। लेखकों द्वारा व्यक्त किए गए विचार उनके अपने हैं। अतः ये किसी भी प्रकार से परिषद् की नीतियों को प्रस्तुत नहीं करते इसलिए इस संबंध में परिषद् का कोई उत्तरदायित्व नहीं है।

### अकादमिक संपादक

राजरानी

### अकादमिक संपादकीय समिति

रंजना अरोड़ा योगेश कुमार  
किरण वालिया अनुपम आहूजा  
एम.वी. श्रीनिवासन

### प्रकाशन विभाग के सदस्य

विभागाध्यक्ष नीरजा शुक्ला\*  
मुख्य संपादक श्वेता उप्पल  
संपादन ओम प्रकाश  
उत्पादन सुनील कुमार

### आवरण

अमित श्रीवास्तव

### एन.सी.ई.आर.टी. के प्रकाशन विभाग के कार्यालय

एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस  
श्री अरविंद मार्ग  
नयी दिल्ली 110 026 फोन : 011-26562708

11005, 1100 फीट रोड  
हेली एक्सटेंशन, होस्टेकेरे  
बनाशंकरी बिल्डिंग इस्टेज  
बंगलुरु 560 053 फोन : 080-26725740

नवजीवन ट्रस्ट भवन  
डाकघर नवजीवन  
अहमदाबाद 380 014 फोन : 079-27541446

सी.डब्ल्यू.सी. कैंपस  
धनकल बस स्टॉप के सामने  
पनिहटी  
कोलकाता 700 014 फोन : 033-25530454

सी.डब्ल्यू.सी. कॉम्प्लैक्स  
मालीगाँव  
गुवाहाटी 781001 फोन : 0361-2674869

### मूल्य

एक प्रति : 50.00 रुपए वार्षिक : 200.00 रुपए

\*जून 2010 में मुद्रित

**परिषद् की 'भारतीय आधुनिक शिक्षा' एवं 'प्राइमरी शिक्षक'  
त्रैमासिक पत्रिकाओं के ग्राहकों, पाठकों तथा लेखकों से निवेदन**

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की उल्लेखित दो त्रैमासिक पत्रिकाएं शिक्षा जगत में राष्ट्रीय स्तर तथा राज्य स्तर पर हो रहे अनेक प्रयोगों, अनुसंधानों, कार्यक्रमों व गतिविधियों को पाठकों तक पहुँचाने के सुगम माध्यम हैं। इन पत्रिकाओं का प्रकाशन विशेष रूप से विद्यालयी शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत शिक्षाविदों, शिक्षकों, शिक्षक-प्रशिक्षकों तथा पाठ्यक्रम निर्माताओं को समर्पित है। इनके प्रत्येक संस्करण में ऐसे नवीनतम लेखों के प्रकाशन को प्राथमिकता दी जाती है जो शैक्षिक नीतियों से संबंधित हों, गुणात्मक सुधार की दिशा में उल्लेखनीय प्रयोग हों, अधिगम को सुरुचिपूर्ण तथा ग्राह्य बनाने की दिशा में निजी अनुभव अथवा शोध कार्य हों, विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों के विवरण हों, शिक्षण-प्रशिक्षण संबंधी प्रभावी सामग्री हो। शैक्षिक उपयोगिता से ये पत्रिकाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं तथा परिषद् इन्हें मूल लागत से भी बहुत कम कीमत पर पाठकों को उपलब्ध कराती है।

इन पत्रिकाओं के लिए उत्कृष्ट स्तर के शिक्षाप्रद प्रभावी लेख सहर्ष स्वीकार किए जाते हैं तथा उनके प्रकाशन के उपरांत समुचित मानदेय देने की भी व्यवस्था है। लेख की विषयवस्तु 2500 से 3000 शब्दों में या अधिक टंकित रूप में होना वांछनीय है। यदि लेखक अपने लेखों के साथ सीडी या फ्लोपी और स्वयं का ई. मेल का पता भेज सकें तो सुविधा होगी। कृपया अपने लेख निम्न पते पर भेजें -

**विभागाध्यक्ष ( पत्रिका प्रकोष्ठ ), प्रकाशन विभाग  
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्  
श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110 016**

अध्यक्ष, प्रकाशन विभाग द्वारा राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविन्द मार्ग, नयी दिल्ली 110 016 के लिए प्रकाशित तथा ..... द्वारा मुद्रित।



ISSN 0972-5636

# भारतीय आधुनिक शिक्षा

वर्ष 30

अंक 3

जनवरी 2010

## इस अंक में

संपादकीय		3
स्कूल में शिल्प	कृष्ण कुमार	5
शिक्षा, भाषा और बच्चों का मानसिक विकास	रवि पी. भाटिया	18
समझ की भाषा	संध्या सिंह	24
कृष्णमूर्ति की शिक्षा दृष्टि और उसकी प्रासंगिकता	सुजाता साहा	29
वर्तमान शैक्षिक समस्याओं के समाधान हेतु डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शिक्षा चिंतन की उपादेयता	रश्मि श्रीवास्तव	36
स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक चिंतन की प्रासंगिकता	भवेश कुमार	45
जयप्रकाश नारायण का समाजवादी चिंतन एक मूल्य शिक्षा	पंकज कुमार दूबे	51
शिक्षण अधिगम प्रक्रियाएँ और निर्मितवाद	संदीप कुमार	59
भारतीय परिप्रेक्ष्य में शांति शिक्षा	नृपेंद्र वीर सिंह एवं रेनू राय	66

एक रास्ता यह भी	साधना देवेश	74
प्रारंभिक विद्यालयी शिक्षा में बहुभाषिकता की आवश्यकता विशेषकर जनजातीय बच्चों की शिक्षा के संदर्भ में		
एक शिक्षक से अपेक्षा	एस. सी. चौहान	78
ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी की शिक्षण प्रभावशीलता	सुरेन्द्र कुमार तिवारी	91
नेट परीक्षा अनिवार्य क्यों हो?	नीरज प्रिया	96
शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता और प्रशिक्षण आवश्यकताओं का अध्ययन	पी. के. साहू एवं रमा गुप्ता	102
शिक्षक-शिक्षा — नयी दृष्टि	एन.सी.ई.आर.टी.	115

## संपादकीय

प्रिय पाठकों, इस बार का अंक फिर से एक बार स्कूली शिक्षा के विविध आयामों और सरोकारों को समेटे हुए है। इन दिनों स्कूलों में बच्चों की भाषा पर चर्चा एक महत्वपूर्ण सरोकार के रूप में उभरकर सामने आ रही है। बच्चा किस भाषा में पढ़े? कैसे उसके अंदर समझ विकसित की जाए? ऐसे ही कुछ सवालों का उत्तर देने का प्रयत्न किया है हमारे इस अंक के लेखकों— रवि पी. भाटिया, संध्या सिंह तथा एस. सी. चौहान ने अपने सारगर्भित लेखों के माध्यम से। जब हम अपने देश की विविधता पर नजर डालते हैं तो पाते हैं कि बहुसंस्कृति और बहुभाषिकता वे संसाधन हैं जो हमें स्कूली शिक्षा में बहुत मदद कर सकते हैं। हमारे लाखों बच्चे उन परिवारों से संबंध रखते हैं जहाँ उनके अभिभावक कामगार और शिल्पकार हैं। ये बच्चे बचपन से बहुत कुछ ऐसा सीख लेते हैं जिन पर यदि हमारी स्कूली शिक्षा निर्मित हो तो कुशल और पढ़े-लिखे नागरिक जो स्वरोजगार में सक्षम हों, तैयार किए जा सकते हैं। 'स्कूल में शिल्प' कृष्ण कुमार द्वारा लिखा यह लेख आपके लिए 'प्रारम्भ' शैक्षिक संवाद शिक्षा की त्रैमासिक पत्रिका, वर्ष-5, अंक-3 जुलाई-सितम्बर 2007 से इस अंक में साभार प्रकाशित किया जा रहा है। यह लेख इस विषय के विविध पहलुओं को गहराई से उभारता है और स्कूल में काम और शिक्षा

की आवश्यकता पर जोर देता है। कुछ ऐसे ही विषय पर पुनः चर्चा करता है साधना देवेश द्वारा लिखित लेख 'एक रास्ता यह भी'। शिक्षक-शिक्षा आज एक ऐसा सरोकार बन गया है जिसकी चर्चा हर शैक्षिक फोरम पर हो चली है। इस अंक में भी इस विषय पर शामिल हैं नीरज प्रिया, पी. के. साहू और रमा गुप्ता के लेख। साथ ही सम्मिलित किए गए हैं 'शिक्षक-शिक्षा' पर बने राष्ट्रीय फोकस समूह के आधार पत्र के कुछ अंश। यह अंक कुछ ऐसे दार्शनिकों और महान व्यक्तियों के विचारों को भी समेटता है जिनकी प्रासंगिकता युगों-युगों तक बनी रहेगी। सुजाता साहा, रश्मि श्रीवास्तव, भवेश कुमार और पंकज कुमार दूबे के लेखों में डॉ. कृष्णमूर्ति, डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन, स्वामी विवेकानन्द और जय प्रकाश नारायण के शैक्षिक विचारों को शामिल किया गया है। कुछ अन्य महत्वपूर्ण विषय जो कि चर्चा में हैं जैसे—निर्मितिवाद, शांति के लिए शिक्षा और शिक्षण अधिगम में शैक्षिक तकनीक का प्रयोग, इन विषयों पर हमारे लेखकों—संदीप कुमार, नृपेन्द्र वीर सिंह और रेनु राय तथा सुरेन्द्र कुमार तिवारी ने इस अंक में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। आप सब की प्रतिक्रियाओं की हमें सदैव प्रतीक्षा रहती है। इस बार भी इस अपेक्षा के साथ कि आप लिखें कि यह अंक आपको कैसा लगा।

अकादमिक संपादकीय समिति



## स्कूल में शिल्प\*

कृष्ण कुमार\*\*

---

स्कूल में हस्तशिल्प महात्मा गाँधी जी द्वारा प्रस्तावित बुनियादी तालिम का केंद्रीय विचार रहा है। जिस पर शिक्षा प्रणाली में कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। विगत 2005 में एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या दस्तावेज को तैयार करते समय 'काम और शिक्षा' के फोकस समूह ने इस पर पुनः गहराई से विचार किया तथा ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में काम के महत्त्व को रेखांकित किया। प्रो. कृष्ण कुमार के इस आलेख में स्कूल में शिल्प विषय पर गहराई से दृष्टि डाली गई है तथा इसे या इससे देश की राष्ट्रीय परम्परा और विरासत से जोड़ने का प्रयास किया है और आज के सूचना प्रौद्योगिकी के समय में शिल्प की आवश्यकता से जुड़े विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है।

---

भारत में ग्रामीण स्कूलों का सुपरिचित दृश्य एक पहली-सी पेश करता है। रोजमर्रा इस्तेमाल की चीजों में आश्चर्यजनक रूप से विविधापूर्ण एवं समृद्ध सौंदर्यबोध बनाए रख सकने वाले एक समाज में, सीखने के लिए इतनी उदास दिखने वाली जगह कैसे हो सकती है? विशिष्ट शहरी स्कूलों की निम्न और उच्च के. जी. की कक्षाओं में जाने पर जब मैं उनको चिपचिपे प्लास्टिक उपकरणों से भरा पाता हूँ तो समझ नहीं पाता कि क्या प्रतिक्रिया करूँ या स्वयं को कैसे समझाऊँ कि सरकारी अधिकारियों से अधिक कल्पनाशीलता का

दावा करने वाले हमारे शिक्षा उद्यमी परंपरागत भारतीय हस्तकला के संसाधनों की दुनिया से इतने अनजान हैं, जहाँ से चीजें लेकर वे छोटे बच्चों के लिए बेहतर शुरुआती कार्यक्रम बना सकते हैं। कुटीर उद्योग वाणिज्य केंद्रों (इंपोरियमों) में जाने पर उनके खिलौना प्रभाग के आकार को देखकर मुझे हमेशा झटका लगता है। तब मैं सोचता हूँ कि हमारी जड़ शिक्षा व्यवस्था को हस्तशिल्पों की तरफ़ खिसकने के लिए कितने और कमलादेवी चट्टोपाध्याय, पुपुल जयकर, लैला तैय्यबजी तथा 'उरमूल', 'सेवा' और 'संधी' की जरूरत होगी।

\* 'प्रारम्भ' शैक्षिक संवाद शिक्षा की त्रैमासिक पत्रिका, वर्ष-5, अंक-3 जुलाई-सितम्बर 2007 से साभार प्रकाशित

\*\* निदेशक, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

राजस्थान से आई नवीनतम पाठ्यपुस्तकों के मुख्य पृष्ठ देखकर मुझे आश्चर्य होता है कि रंगों और डिजाइनों की इतनी चौका देने वाली समझ वाला राज्य इतने नीरस मुख्य पृष्ठ कैसे बना सकता है, उनकी विषयवस्तु निराश होने का एक और पूरी तरह अलग मामला है। आखिरकार अजमेर स्थित बोर्ड कार्यालय 'तिलोनिया' के साथ मिलकर करोड़ों राजस्थानी बच्चों के लिए कम-से-कम बेहतर मुख्य पृष्ठ बनाने का काम क्यों नहीं कर सकता? हमें अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि भारत में बच्चों और उनकी राष्ट्रीय विरासत के बीच, स्कूलों और हस्तशिल्प के बीच तथा शिल्पियों के बीच और शिक्षकों के बीच कोई संपर्क नहीं है।

स्कूली पाठ्यक्रम में हस्तशिल्पों को शामिल करने का विचार नया है न अपने आप में इतना विवादास्पद, इसके बावजूद अब इसे लागू करना उतना ही कठिन दिखता है जितना 1937 और 1967 के बीच सिद्ध हुआ था। महात्मा गाँधी की उत्साही पैरवी मिलने के बाद, काफी विरोध के बावजूद यह विचार आगे बढ़ा जिसका कारण गाँधी जी की राजनीति और उनका व्यक्तित्व था पर मुख्य कारण युद्धकालीन समय में स्वतंत्रता संग्राम की ऐतिहासिक परिस्थितियाँ थीं। उस समय भी नए विचारों के प्रति भ्रम और द्वेष तथा उनकी गलत व्याख्या की आजादी इतनी ही सामान्य थी जितनी आज है। यहाँ तक कि मुल्कराज आनंद जैसे प्रगतिशील लेखक और विचारक ने गाँधी जी के प्रस्ताव की आलोचना की, शायद इस आधार पर कि इससे बाल श्रम को प्रोत्साहन और वैधता मिलेगी। काँग्रेस-लीग मतभेद, सीखने वाले की

मातृभाषा में हस्तशिल्प आधारित समग्र बुनियादी शिक्षा के प्रति शत्रुतापूर्ण माहौल पैदा करने का मुख्य आयाम बन गया।

इन समस्याओं के बावजूद, स्वतंत्रता के बाद भारत के अनेक भागों में इस विचार को लागू किया गया और इसे काफी समर्थन मिला। इसने एक ऐसी पीढ़ी पैदा की जिसने औपनिवेशिक स्कूली शिक्षा के माल से कुछ अलग प्राप्त किया। यदि हम 'कुछ अलग' को व्याख्यायित करने के लिए एक शब्द प्रयोग कर सकें तो वह संसाधनपूर्णता होगा। अपने हाथों से स्वयं चीजें बनाने की इच्छा (यदि दुनियाँ को पुनर्गठित करने की मूलभूत इच्छा को कुचला न जाए तो कुछ भी बनाने की इच्छा, जैसा कि बचपन में महसूस होता है) और यह विश्वास कि कोई सभी प्रकार की चीजें बना सकता है, गाँधी जी अपनी 'नई तालीम' द्वारा बुनियादी स्कूलों में गए थोड़े से लोगों में यही पैदा कर सके।

काफी सफलता और अब अच्छी तरह दस्तावेजों में संकलित विविध कारणों से, कोठारी आयोग की 1964-66 की रिपोर्ट में बुनियादी शिक्षा को ठंडे बस्ते में डाल दिया गया, हालाँकि मुझे पूरा विश्वास है कि ऐसा करना उनका स्पष्ट उद्देश्य नहीं था। भारत उस समय तक विकास के नए चरण में प्रवेश कर चुका था और 1960 दशकांत के माहौल में, बच्चों की हस्तशिल्प केंद्रित शिक्षा को अनावश्यक तथा आदर्शवादी सनक के रूप में देखने की शुरुआत हो चुकी थी। अनेक दूसरे गाँधीवादी विचारों का भी यही हश्र हुआ।

आज स्कूलों में हस्तशिल्प शुरू करने का एक मुख्य कारण, यह व्यापक नजरिया है कि



यह एक बार असफल हो चुका है। विचारों की 'सफलता' या असफलता की अवधारणा सभी स्तरों पर निर्णयकर्ताओं की दुनिया में अंतर्निहित होती है। जब, आई टी उद्योग, शिक्षाशास्त्री बने इंजीनियरों एवं प्रबंधन गुरुओं द्वारा लगातार बहुत से नये चमकदार विचार लगातार दिए जा रहे हों तब उस स्थिति में एक असफल विचार को दूसरा मौका कौन देना चाहेगा। और, उन बहुपक्षीय एजेंसियों को कैसे भूला जा सकता है जो तीसरी दुनिया के उपभोग के लिए काफी नियमित रूप से अवधारणाओं और कार्यक्रमों की खोज करती रहती हैं? भारत के परंपरागत शिल्प आमतौर से प्रचारित 'विकसित' नजरिए में नहीं आते। वे आ भी कैसे सकते हैं? जब प्लास्टिक हमारी जिंदगियों पर एक विशाल कम्बल की तरह फैली है तब संस्कृति और जीवनशैली विविधताओं को छोड़े, हम यह भी याद नहीं कर सकते कि संवेदी अनुभवों की विविधता का क्या अर्थ है। विकसित देश बनने का सपना तेजी से, 28 खुशबुओं पर एक ही जायके वाली आइसक्रीमों तैयार करने जैसा हो रहा है।

दूसरी ओर हस्तशिल्प संभवतः भारत की सांस्कृतिक बहुलता का सर्वाधिक प्रतिनिधि संकेत है। वे काम और मूल्यों को ऐसे संदर्भ के अंतर्गत जोड़ने का प्रतीक है जो प्रत्येक मनुष्य में कलाकार की उपस्थिति स्वीकार करता है। इन दिनों हम शिल्पों के कुछ विशिष्ट कलाकारों की पहचान 'कुशल शिल्पी' के रूप में कर उनका सम्मान करते हैं। ऐसी श्रेणी हमारे प्रतियोगितात्मक स्वभाव के अनुकूल है तथा उसे संतुष्ट करती है। जब हम निर्यात योग्य शिल्पियों और मुक्त रेलवे पास

आदि की सहायता वाले शिल्पियों के तौर पर भी भेदभाव करते हैं। हमें याद रखना चाहिए कि परंपरा से शिल्पी ग्रामीण समुदाय के साधारण सदस्य होते थे। वास्तव में एक शिल्प का व्यवहार करना सामान्य जीवन का एक आयाम था और शिल्प उत्पाद का मकसद इसका रोजमर्रा की जिन्दगी में इस्तेमाल होना था।

शिल्प उत्पाद जीवन के सभी क्षेत्रों पर छाए हुए थे और वे उसे शोभा तथा अंहकार-रहित सौंदर्य के हल्के प्रकाश से भर देते थे। फर्श बुहारने के लिए झाड़ू, सोने के लिए चटाई या चारपाई, पानी रखने के लिए बर्तन, खेलने के लिए मिट्टी का घोड़ा या गुड़िया तथा ठंडी हवाओं से बचाने वाली शाल-सभी इस्तेमाल के लिए बनाए जाते थे और अपनी सतत् सौंदर्यबोध शक्ति के साथ ड्रिप (जड़ों को बूँद-बूँद कर खाद-पानी देने वाली) सिंचाई प्रणाली की तरह वे रोजमर्रा जीवन की यात्रा में घुलमिल जाते थे।

*“आज स्कूलों में हस्तशिल्प शुरू करने का एक मुख्य कारण, यह व्यापक नजरिया है कि यह एक बार असफल हो चुका है। विचारों की 'सफलता' या असफलता की अवधारणा सभी स्तरों पर निर्णयकर्ताओं की दुनिया में अंतर्निहित होती है। जब, आई टी उद्योग, शिक्षाशास्त्री बने इंजीनियरों एवं प्रबंधन गुरुओं द्वारा लगातार बहुत से नये चमकदार विचार लगातार दिए जा रहे हों तब उस स्थिति में एक असफल विचार को दूसरा मौका कौन देना चाहेगा। और, उन बहुपक्षीय एजेंसियों को कैसे भूला जा सकता है जो तीसरी दुनिया के उपभोग के लिए काफी*

नियमित रूप से अवधारणाओं और कार्यक्रमों की खोज करती रहती हैं?"

“सुधारों को लागू करने में देरी की हमें भारी कीमत अदा करनी पड़ी है। युवाओं में आत्मविश्वास और पहलकदमी की भावना पैदा करना तो दूर की बात, हमारी व्यवस्था ने उनको व्यापक समाज से अलग-थलग महसूस करना तथा जीवन के किसी भी क्षेत्र में व्यक्तिगत निर्णय लागू करने में डरना सिखाया है। न यह ज्ञानेन्द्रियों को प्रशिक्षित करती है न संवेदनशीलता को पोषित करती है। करोड़ों लोगों के लिए, व्यवस्था उसी तरह काम करती जा रही है जिस तरह यह उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम समय में करती थी।”

रोजमर्रा जिन्दगी में गहराई के इस स्तर पर, शिल्प भारत में व्यापक और चौंकाने वाली विविधता के संकेत की तरह काम करते हैं। थोड़ा व्यंग्यात्मक बात है कि पाकिस्तान का एक संग्रहालय देखते समय मैं इस समझ पर पहुँचा। हमारे यहाँ इसके जैसा कुछ नहीं है इसलिए इसके बारे में कुछ पंक्तियाँ जरूरी हैं। मैं इस्लामाबाद के बाहरी इलाके में स्थित 'लोक विरसा' का जिक्र कर रहा हूँ। देश का भीतरी चेहरा प्रस्तुत करने वाली यह पाकिस्तान के लोकवार्ता विभाग की शानदार रचना है। यह एक ऐसा चेहरा है जिसने राष्ट्रीय जीवन द्वारा सामूहिक रूप से अनुभव की जाने वाली तमाम सामूहिक मुसीबतों के बावजूद अपनी चमक और विविधता बनाए रखी है।

'लोक विरसा' आधुनिक संग्रहालयीन प्रयास और उपकरणों तथा पाकिस्तान में प्रयोग किए जा रहे शिल्पों का शानदार नमूना है। इसमें प्रदर्शित

चीजें गहराई से, शिल्प और जहाँ पर फला-फूला वहाँ के प्राकृतिक भूगोल से इसके संबंध, सामुदायिक जीवन में इसका स्थान और स्थानीय संस्कृति, उसके विश्वासों तथा जैडर संबंधों को बदलने में उसकी भूमिका को संप्रेषित करती हैं। 'लोक विरसा' स्पष्ट रूप से, शिल्पों में जड़े जमाए सभ्यता में महिलाओं के योगदान का आनंद मनाती है। भारत से गए एक दक्षिण एशियाई अतिथि के तौर पर मैंने पाया कि 'लोक विरसा' इस चीज की जीवंत यादगार है कि शिल्प पूरे क्षेत्र में विश्वास, समृद्धि और शांति बनाए रखने में क्या कर सकते हैं।

शिल्पों को शिक्षा से जोड़ने का प्रयास एक बार फिर करने का विचार अच्छा है, पर पिछली गलतियों से बचने के लिए उपयुक्त पश्च दृष्टि के साथ, क्योंकि दोनों क्षेत्र आज एक ही प्रकार के संकट से ग्रस्त हैं। शिक्षा एक ऐसे क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है जहाँ समाज स्वयं को पुनर्जिवित कर सकता है, यदि वह इस स्थान का न्यायोचित उपयोग करे। संबंध जोड़ने के दौरान, शिक्षा का हृदय अभिव्यक्ति है। यह एक सुस्थापित तथ्य है कि भारत की शिक्षा व्यवस्था मृतप्राय बनी हुई थी, आंशिक रूप से प्रशासन और वित्तीय व्यवस्थाओं की औपनिवेशिक विरासत के कारण, पर मुख्यतः इस कारण की पुरानी सांस्कृतिक विरासतें साक्षरता और बौद्धिक शिक्षण तथा शारीरिक कार्य और कौशल में विभाजन करती थी। प्राथमिक शिक्षा को सर्वव्यापी बनाने और व्यवस्था को सुधारने में हमारी राष्ट्रीय विफलता के कारण इसे (10 मिलियन कारीगरों सहित) तथाकथित कमजोर तबकों के सामाजिक बहिष्करण का औजार बनने से रोका नहीं जा सका। इन कारणों का जितना

संबंध पाठ्यक्रम के सांस्कृतिक चरित्र से है उतना ही हमारे कठोर प्रशासनिक व्यवहारों से भी।

सुधारों को लागू करने में देरी की हमें भारी कीमत अदा करनी पड़ी है। युवाओं में आत्मविश्वास और पहलकदमी की भावना पैदा करना तो दूर की बात, हमारी व्यवस्था ने उनको व्यापक समाज से अलग-थलग महसूस करना तथा जीवन के किसी भी क्षेत्र में व्यक्तिगत निर्णय लागू करने में डरना सिखाया है। न यह ज्ञानेन्द्रियों को प्रशिक्षित करती है न संवेदनशीलता को पोषित करती है। करोड़ों लोगों के लिए, व्यवस्था उसी तरह काम करती जा रही है जिस तरह यह उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम समय में करती थी। यह ऐसे कागज़ का टुकड़ा प्राप्त करने का माध्यम है जो लगातार घटती कार्यकालीन नौकरियों का वादा करता है। स्वतंत्रता के बाद नीतिगत निर्णयों के इतिहास में बहुत जोरशोर से काम और शिक्षा को जोड़ने की बात की गई है, पर हमारी संस्कृति के सबसे पुराने नकारात्मक रूप-मानसिक और शारीरिक काम के बीच खाई कम करने में बहुत कम प्रगति हुई है। नए प्रकार की बुनियादी शिक्षा का गाँधी जी का प्रस्ताव वास्तव में इसी खाई को कम करने को लक्षित था पर चीजें उस तरह नहीं चलीं जैसा उन्होंने सोचा था।

कोई कारण नहीं कि हम स्कूली पाठ्यक्रम में शिल्प शिक्षा शामिल करने के गाँधी जी के विचार पर फिर नहीं लौट सकते, एक पाठ्येतर गतिविधि के तौर पर नहीं बल्कि एक अनुभव के तौर पर जो बाकी पाठ्यक्रम को व्यापक अर्थ तथा गहराई देगा। यदि हम इस मामले पर फिर से सोचें तथा इस पर कल्पनाशील एवं पश्च

दृष्टि के साथ काम करें तो हम शिक्षा व्यवस्था को उस तरह सुधार सकते हैं जिस तरह केवल शिल्प हमें सुधारने में मदद कर सकते हैं और इस प्रक्रिया में हम शिल्पों की अपनी विरासत को प्रमुख संस्थागत स्थान भी दे सकते हैं जहाँ नई डिजाइनें, तकनीकें, संबंध और नजरिए फल-फूल सकते हैं। जातीय आधार पर विभाजित समाज में दूसरी अन्य बहुत-सी चीजों की तरह अलगाव और ठहराव से ज्ञान तथा शिल्प के कौशल आयामों को भी नुकसान पहुँचा। औपचारिक शिक्षा को शिल्पों के साथ जोड़ने पर दोनों में रचनात्मकता को बढ़ावा मिल सकता है।

इस प्रस्तावित संबंध पर आगे बात करने से पहले, मैं दो पुस्तकों-उर्सुला ह्यूज़ की 'द मेकिंग ऑफ़ अ साइबरटेरियट' तथा उर्सुला फ्रेंकलिन की 'द रियल वर्ल्ड आफ़ टेक्नालाजी' की सहायता से संक्षेप में आर्थिक दुनिया में शिल्पों के संकट की जाँच करना चाहूँगा।

उर्सुला ह्यूज़ एक श्रम अर्थशास्त्री हैं और नारीवाद तथा मार्क्सवाद के प्रति प्रतिबद्धता के कारण उनको लुड्डाइट(कारीगरों के वर्ग का जिसने मशीनों को नष्ट करने के लिए दंगे किए) नहीं कहा जा सकता। लंदन में कामगार अधिकारों के लिए संघर्ष करने के लंबे कैरियर में छपी केवल एक किताब में उनका तर्क है कि तकनीक और सामाजिक संबंधों के इतिहास में कुछ विशेष हो रहा है, और हम एक नये चरण की शुरुआत से गुजर रहे हैं जो विचारधारात्मक थकान से मुकाबला करने के लिए एक नये स्तर की मानवीय सरलता की माँग करता है। उनका तर्क है कि द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद मालिक-मजदूर

संबंधों में एक संतुलन स्थापित हो गया था। तकनीक के इतिहास में इस तरह के अनेक महत्वपूर्ण मोड़ आए हैं, प्रत्येक स्तर स्वयं तकनीक में मानव कौशलों को शामिल कर लेने और कौशलों के मालिकों को व्यर्थ बना देने के लिए एक नए स्तर के पूँजी निवेश का प्रतिनिधित्व करता है, पर वर्तमान स्तर अधिक गहरा है। ह्यूज हमें दिखाती हैं कि विज्ञान और तकनीक की दिशा इस चीज पर निर्भर करती है कि मुनाफे और निवेश हमें कहाँ ले जाते हैं, दूसरे शब्दों में इसका समर्थन करने वाली तकनीक और विज्ञान की प्रगति को मूल्यों और इरादों से निबटना होगा।

ह्यूज बहुत से उदाहरण देती हैं। इनमें से एक 'साइबरटेरियट' का उभरना है जिसमें कार्यालयीन कर्मचारी-पश्चिमी दुनिया में अधिकतर महिलाओं- के सभी कौशल शामिल होते हैं और जिसने युद्ध के बाद वाले दशकों में एक सामूहिक आत्मछवि विकसित कर ली है। अब इसके कोई मायने नहीं है कि आप एक पत्र कि कितनी बढ़िया डिजाइन बना कर इसे फार्मेट कर सकते हैं, या कितनी कुशलता से आप पहले ड्राफ्ट में की गई गलतियाँ ठीक कर सकते हैं। सेक्रेटरी के काम में शिल्प के तत्व समाप्त हो गए हैं। डेस्कटाप (कंप्यूटर) ने शताब्दियों की शिल्पकारिता को अपने भीतर समाहित कर लिया है। इसे प्रयोग करने वाले को अब मेन्यू में पेश अनेक संकेतों- 'फार्मेट', 'व्यू' या केवल 'हेल्प'- में से जरूरी संकेत पर बस क्लिक करना होता है। ह्यूज उन परिवर्तनों को सामने लाती हैं कि यह कैसे आर्थिक और सांस्कृतिक संबंधों को बदलेगा, खासकर कार्य आधारित सेक्युलर पहचानों को।

अनेक ऐसे उदाहरण देने की प्रक्रिया में वे हमें शिल्पों को परिभाषित करने का एक संकेत देती हैं। शिल्प ऐसी चीज है जिसके लिए सावधानी तथा व्यक्तिगत रूप से ध्यान देने की जरूरत होती है और जो यह संप्रेषित करने के माध्यम से पहचान बनाता है, 'मैं इसे अच्छी तरह कर सकता हूँ, मैं यह हूँ।'

*“शिल्पों के सामने आने वाला संकट वास्तव में पहचानों के बड़े द्वंद्व की अभिव्यक्ति है जिस पर काफी स्पष्ट रूप से समाजविज्ञानियों यहाँ तक कि अर्थशास्त्रियों ने गौर किया है। उदाहरण के लिए सिलाई को लें। जो चीज इसे शिल्प बनाती है वह उस व्यक्ति से संबंधित है जो काटने, सिलने और अंत में महिन काम में ध्यान देता और चिंता करता है। जब व्यक्ति यानी सिलने वाला दर्जी केवल शरीर के आकार तक सीमित रह जाता है तो शिल्प साफ्टवेयर में गायब हो सकता है जिससे केवल वस्त्र फैक्ट्री बचती है जहाँ कामगार को कोई निर्णय नहीं लागू करना होता है, उसे बस सही समय पर सही बटन दबाने होते हैं।”*

*“अपनी किताब, 'द रियल वर्ल्ड ऑफ टेक्नालाजी' में उर्सुला फ्रैकलिन समग्र और निर्देशात्मक तकनीकों के बीच अंतर करती हैं। अंतर का आधार यह है कि क्या तकनीक व्यक्तियों को उसे नियंत्रित करने के अधिकार की अनुमति देती है। जहाँ निर्देशात्मक तकनीकें सक्षम हैं। और भारी संख्या में लोगों को एक समूह के तौर पर काम करने की अनुमति देती हैं, वे काम के सभी आयामों पर नियंत्रण को किसी ऊपर के आदमी को स्थानान्तरित कर*

देती हैं। इसके अलावा हर व्यक्ति केवल वही करना जानता है जिसे करने की उसे जिम्मेदारी दी जाती है। समय तकनीक में लोग अपने शुरू से अन्त तक अपने काम की प्रक्रिया पर नियंत्रण करते हैं। एक उत्पाद पर काम करते समय निर्णय शिल्पी का होता है, ऊपर बैठे किसी उच्च अधिकारी का नहीं।”

शिल्पियों के सामने आने वाला संकट वास्तव में पहचानों के बड़े द्वंद्व की अभिव्यक्ति है जिस पर काफी स्पष्ट रूप से समाजविज्ञानियों— यहाँ तक कि अर्थशास्त्रियों ने भी गौर किया है। उदाहरण के लिए सिलाई को लें। जो चीज़ इसे शिल्प बनाती है वह उस एक व्यक्ति से संबंध है जो कटिंग, सिलने और अन्त में महीन काम में ध्यान देता और चिंता करता है। जब व्यक्ति यानी सिलने वाला दर्जी केवल शरीर के आकार तक सीमित रह जाता है तो शिल्प साफ्टवेयर में गायब हो सकता है जिससे केवल वस्त्र फैक्ट्री बचती है जहाँ कामगार को कोई निर्णय नहीं लागू करना होता है, उसे बस सही समय बटन दबाने होते हैं।

परंपरागत शिल्पों को स्कूल पाठ्यक्रम में शामिल करने की पैरवी करने वाले हमारे जैसे लोग निश्चित रूप से अपने चारों ओर की आर्थिक व तकनीकी स्थिति तथा आने वाले आर्थिक परिवर्तनों से बहुत निराश होते हैं। ऐसे परिवर्तन शिल्पों के इतिहास में पहले भी हुए हैं, पर इस बार संकट के तेजी से फैलने की संभावना है। ऐसे देश हैं जो नई वास्तविकताओं को समझकर तथा उनके भीतर काम कर अपने शिल्पों को बचाने में सफल हुए हैं। दक्षिण अफ्रीका ऐसा ही

एक देश है जहाँ शिल्प उत्पादों का संगठन और बिक्री अब व्यापार और पर्यटन से मजबूती से जुड़ी है। भारत में भी यह प्रयास किया जा रहा है, हालाँकि हमारे काम का दायरा काफी सीमित और हमारी प्रगति धीमी है। मुझे विश्वास है कि कुछ समय में काफी संख्या में बेहतर प्रबंधन विशेषज्ञों को शामिल कर हम अपने शिल्पों के लिए काफी बड़े बाजार बनाने में सफल होंगे और शायद काफी संख्या में शिल्पियों और महिलाओं के लिए बेहतर रोजगार मिलने की संभावना होगी— कम से कम उससे बेहतर आजीविका जिसे वे आज हासिल कर पा रहे हैं।

शिल्प उत्पादों के लिए बड़ी संख्या में ग्राहक तलाश करना वास्तव में एक बड़ी चुनौती है पर शिल्पों का भविष्य बहुत से फैसले और पहल कदमियों पर निर्भर होगा। संभवतः इनमें सबसे महत्वपूर्ण भारत के लोकतंत्र में शिल्पियों के सामाजिक स्तर के बारे में होगा। असंदिग्ध रूप से शिक्षा एक महत्वपूर्ण आयाम है जो शिल्पियों और उनके द्वारा प्रयोग किए जाने वाले शिल्पों का भविष्य तय करेगा। न केवल उनके बच्चों की शिक्षा बल्कि ज्ञान और भारत के शिल्पों में अंतर्निहित कौशल के बीच संबंधों की अनुमति देने वाली एक व्यवस्था के तौर पर शिक्षा, यह तय करेगी कि हमारे शिल्प नव-उदारवादी सिद्धांतों के हमले में जीवित रहने और जीवन सुनिश्चित करने के बाद हमारी सभ्यता का भविष्य बनाने में कितना सफल होंगे। वर्तमान समय में आत्मसंतुष्ट बने रहने का कोई स्थान नहीं है।

अपनी किताब ‘द रियल वर्ल्ड ऑफ टेक्नालाजी’ में उर्सुला फ्रैंकलिन समग्र व

निर्देशात्मक तकनीकों के बीच अंतर करती हैं। अंतर का आधार यह है कि क्या तकनीक व्यक्तियों को उसे नियंत्रित करने के अधिकार की अनुमति देती है। जहाँ निर्देशात्मक तकनीकें सक्षम हैं और भारी सँख्या में लोगों को एक समूह के तौर पर काम करने की अनुमति देती हैं, वे काम के सभी आयामों पर नियंत्रण को किसी ऊपर के आदमी को स्थानान्तरित कर देती हैं। इसके अलावा हर व्यक्ति केवल वही करना जानता है जिसे करने की उसे जिम्मेदारी दी जाती है। समय तकनीक में लोग अपने शुरू से अंत तक अपने काम की प्रक्रिया पर नियंत्रण करते हैं। एक उत्पाद पर काम करते समय निर्णय शिल्पी का होता है, ऊपर बैठे किसी उच्च अधिकारी का नहीं।

कनाडा में चोटी के प्रायोगिक भौतिकविज्ञानियों में शामिल फ्रैंकलिन, निर्देशात्मक तकनीक के सबसे शुरूआती उदाहरण के तौर पर प्राचीन चीन में ढाले जाने वाले विशाल बर्तनों का जिक्र करती हैं। इस काम को अलग-अलग लागू किए जाने वाले लक्ष्यों की एक श्रृंखला के तौर पर संगठित किया जाता था जिसमें भारी सँख्या में लोग शामिल होते थे। वे सभी एक प्रबंधक या मालिक के पर्यवेक्षण के अंतर्गत सटीक मानकों वाला काम करते थे। समग्र तकनीकों का उदाहरण वे हस्तशिल्पों के माध्यम से देती हैं जिनमें अवधारणा बनाने, उस पर काम करने तथा उसे पूरा करने के लिए एक व्यक्तिगत रचनाकार की ज़रूरत होती है। फ्रैंकलिन कहती हैं कि दोनों प्रकार की तकनीकों में, 'बिल्कुल अलग विशेषताएँ और श्रम विभाजन शामिल होते हैं और आखिरकार

उनके बिल्कुल भिन्न सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव होते हैं (पृष्ठ 10)।

निर्देशात्मक तकनीकें, आज्ञा पालन की संस्कृति विकसित करती हैं। फ्रैंकलिन का तर्क है कि सामाजिक और राजनीतिक विचारों को शकल देकर तथा नौकरशाही के सर्वाधिक आरम्भिक ज्ञात उदाहरणों के साथ ऐसा प्राचीन चीन में हुआ। समग्र तकनीक भारी सँख्या में शिल्पों में प्रयोग की जाती है और इसने यूरोप के सामाजिक एवं राजीतिक संस्थानों को शकल दी। फ्रैंकलिन बताती हैं कि औद्योगिक क्रांति के समय निर्देशात्मक तकनीकें 'समुद्र पर गिरे तेल की तरह फैलीं', पर उनका तर्क है कि पसंद का तत्व लगातार प्रासंगिक बना रहा। हालांकि समग्र तकनीकों का जीवित बने रहना अधिक अनिश्चित हो गया है, पर समझ-बूझ और पसंद के आधार पर उन क्षेत्रों की फौरन पहचान करने के कारण मौजूद हैं (जैसे पर्यावरण संसाधनों की कमी और विभिन्न प्रकार के राजनीतिक संकट जिनको अत्यधिक औद्योगिक तथा कम औद्योगिक देश, दोनों अनुभव कर रहे हैं) जहाँ दोनों प्रकार की तकनीकें लागू करने की ज़रूरत है।

*“हस्तशिल्पों की लंबी परंपरा में शताब्दियों से उद्योगों की आधुनिकीकरण प्रक्रिया का अर्थ खासकर उन सामाजिक समूहों के लिए काफी परेशानी और भय पैदा करने वाला रहा है जो किसी हस्तशिल्प के विशेषज्ञ और अपने जीवन के लिए उस पर निर्भर थे। भारत में 'हस्तशिल्पों की लंबी परंपरा में शताब्दियों से, उद्योगों की आधुनिकीकरण प्रक्रिया का अर्थ खासकर उन सामाजिक समूहों के लिए काफी*

परेशानी और भय पैदा करने वाला रहा है जो किसी हस्तशिल्प के विशेषज्ञ और अपने जीवन के लिए उस पर निर्भर थे। भारत में इस प्रकार की परेशानी को हस्तशिल्प के संरक्षकों द्वारा लगभग लगातार अभिव्यक्त किया गया उनमें से अनेक ने पूरा कैरियर अपने शिल्प को राज्य की आर्थिक विकास योजनाओं में स्थान सुनिश्चित कराने के लिए कठोर संघर्ष करने में लगा दिया। यह संघर्ष जारी रहना चाहिए, साथ ही शिल्पों को बनाए रखने और उनके विकास के लिए स्कूली शिक्षा व्यवस्था के भीतर स्थान का दावा किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005 (एनसीएफ) यही करना चाहती है।”

भारत में इस प्रकार की परेशानी को हस्तशिल्प के संरक्षकों द्वारा लगभग लगातार अभिव्यक्त किया गया, उनमें से अनेक ने पूरा कैरियर अपने शिल्प को राज्य की आर्थिक विकास योजनाओं में स्थान सुनिश्चित कराने के लिए कठोर संघर्ष करने में लगा दिया। यह संघर्ष जारी रहना चाहिए, साथ ही शिल्पों को बचाए रखने और उनके विकास के लिए स्कूली शिक्षा व्यवस्था के भीतर स्थान का दावा किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 (एनसीएफ) यही करना चाहती है।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा के अंतर्गत परंपरागत शिल्पों और लक्षित समूह की रिपोर्ट ने संकेत किया है कि शताब्दियों से शिल्प ने, भारतीय दर्शन, तत्ववाद, कला और सामाजिक जीवन के लिए मुहावरों और विचारों के संसाधन

की तरह सेवा की है। रिपोर्ट कहती है, ‘शिल्प-सिद्धांत और व्यवहार दोनों में स्कूल और समाज के सभी स्तरों, स्थानों और क्षेत्रों में सभी बच्चों के भावनात्मक, आर्थिक एवं बौद्धिक सशक्तीकरण का शक्तिशाली औजार हो सकते हैं।’ यह दावा किसी स्कूल प्रधानाचार्य या राज्य शिक्षा अधिकारी को स्कूलों में शिल्प को मौका देने के लिए काफी हो सकता है।

“अपने पाठ्यक्रम में शिल्प शुरू करने वाले स्कूलों को बच्चों और शिक्षकों के साथ काम करने के लिए स्थानीय रूप से उपलब्ध शिल्पियों को अपने साथ जोड़ना चाहिए। भारत में शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जहाँ की अपनी शिल्प परंपराएँ और तमाम तनावों के बावजूद इनका व्यवहार करने वाले लोग न हों। परंपरागत शिल्पों पर राष्ट्रीय लक्ष्य समूह ने भावुक अपील की है कि स्कूल शिक्षकों और बच्चों के साथ काम करने के लिए आमंत्रित किए जाने पर इन स्थानीय शिल्पियों को सम्मानजनक मानदेय दिया जाए। स्कूली जीवन में काम से संबंधित मूल्यों और नैतिकता को मजबूती से अंतर्निहित करने के लिए शिल्प शिक्षण को पाठ्येत्तर योग मानने के बजाय उसे परंपरागत स्कूल विषयों के साथ जोड़ा जाना चाहिए।”

स्कूल पाठ्यक्रम में शिल्पों को शामिल करने में, शिक्षा व्यवस्था में लंबे समय से इच्छित अनेक परिवर्तनों को शुरू करने की क्षमता है। शिल्प पाठ्यक्रम की पूरी क्षमता को प्राप्त करने के लिए तैयारी के अनेक कदम उठाए जाने चाहिए। हमें यह सोचना होगा कि स्कूल में इसे पढ़ने की

इच्छा करने वाले छात्रों को जरूरी सामग्री और औजार कैसे उपलब्ध कराए जाएँ। यदि हम इस काम को खरीद और बिक्री की तरह समझेंगे तो हो सकता है हम 1980 के दशकांत में आपरेशन ब्लैकबोर्ड में की गई गलतियों को दुहराने लगे। इसके विकल्प हैं।

प्राइवेट स्कूलों (जिनको भारत में 'पब्लिक' स्कूल कहते हैं) के लिए अपने फैसले लेने में कोई समस्या नहीं है कि वे ऐसे औजारों जैसे करघे, कपड़े, रंग और तागे, लकड़ी, मिट्टी या भट्टी को कहाँ से प्राप्त करेंगे। प्राइवेट स्कूलों में असली चुनौती प्रबंधन और अक्सर प्रधानाचार्य के दिमाग को तड़क-भड़क, चमक-दमक और एयरकंडीशनिंग से बदलने और आगे की दिशा में चलाने की होती है। अपनी बहुत व्यस्त समय सारिणी में शिल्पों के लिए जगह बनाने के प्रयास में प्राइवेट स्कूलों को शहरी संपन्न माता-पिता की जीवन शैली और माँगों का ध्यान रखना होगा। यह भय कि अगर उनके लड़के अपनी अँग्रेजी पाठ्यपुस्तक में गाल्सवर्दी की 'क्वालिटी' पढ़ने के बाद जूता बनाना सीखने में समय खर्च करेंगे तो वे आईआईटी प्रवेश परीक्षा में असफल हो जाएंगे, काफी प्रधानाचार्यों और प्रबंधक समितियों के विभागाध्यक्षों को इससे विरत करेगा।

इससे कहीं बड़ी व्यवस्थागत चुनौती सरकारी स्कूल व्यवस्था के सामने है जिसमें केंद्रीय एवं नवोदय विद्यालय के रूप में उनकी अधिक विशेषाधिकार प्राप्त उप-व्यवस्थाएँ शामिल हैं। सरकारी स्कूलों को अलग-अलग संस्थानों की तरह नहीं समझा जाता है। सभी चीजें ऊपर के निर्देश पर होती हैं और यह सभी स्कूलों पर लागू होता है।

सरकारी स्कूलों से स्वायत्त संस्थान की तरह व्यवहार न किए जाने के कारण, जहाँ प्रधानाचार्य और शिक्षकों को पसंद के एक ढाँचे के अंतर्गत कुछ मामलों पर पेशेवर निर्णय लेने की स्वतंत्रता हो, सुधार के बहुत से महान विचार जरा भी असर छोड़ने में विफल हो गए हैं।

यदि शिल्पों को शामिल करने का निर्णय एक प्रबुद्ध राज्य निदेशक द्वारा लिया गया, तो यह प्रयासों की शुरुआत से पहले ही उसके अन्त की गारंटी होगा। पसंदें अनुपयुक्त होंगी, विभिन्न प्रक्रियाओं के माध्यम से सप्लाई किए गए उपकरणों और सामग्री में भ्रष्टाचार की संभावना होगी और यह सामग्री बक्सों में बंद रह जाएगी। इसके बजाय, यदि केवल एक रूपरेखा का प्रस्ताव हो तथा अलग-अलग स्कूलों को स्वयं शुरू किए जाने वाले शिल्प तथा प्रासंगिक सामग्री व औजार प्राप्त करने का स्रोत पसंद करने का अधिकार हो तो तार्किक रूप से प्रधानाचार्य से परियोजना के परिणाम के लिए जिम्मेदारी महसूस करने की आशा की जा सकती है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा ने इसका सुझाव व्यापक परिणामों वाले एक सामान्य सुधार के रूप में दिया है। संस्थागत स्वायत्तता के विचार को आगे बढ़ाने में शिल्प एक अच्छा शुरुआती बिंदु हो सकते हैं।

अपने पाठ्यक्रम में शिल्प शुरू करने वाले स्कूलों को बच्चों और शिक्षकों के साथ काम करने के लिए स्थानीय रूप से उपलब्ध शिल्पियों को अपने साथ जोड़ना चाहिए। भारत में शायद ही कोई ऐसा क्षेत्र हो जहाँ की अपनी शिल्प परंपराएँ और तमाम तनावों के बावजूद इनका व्यवहार करने वाले लोग न हों। परंपरागत शिल्पों पर



राष्ट्रीय लक्ष्य समूह ने भावुक अपील की है कि स्कूल शिक्षकों और बच्चों के साथ काम करने के लिए आमंत्रित किये जाने पर इन स्थानीय शिल्पियों को सम्मानजनक मानदेय दिया जाए। स्कूली जीवन में काम से संबंधित मूल्यों और नैतिकता को मजबूती से अंतर्निहित करने के लिए शिल्प शिक्षण को पाठ्येत्तर योग मानने के बजाय उसे परंपरागत स्कूल विषयों के साथ जोड़ा जाना चाहिए। जो स्कूल शिल्प शिक्षण को शामिल करने का निर्णय लें उन्हें चुने हुए शिल्प और दूसरे विषयों के बीच विभिन्न प्रकार के संबंधों की तलाश करनी चाहिए। उदाहरण के लिए गणित को सामग्री और डिजाइन आयामों से जोड़ा जा सकता है जबकि विज्ञान को पॉटरी जैसे शिल्प की प्रक्रियाओं का अध्ययन करते समय पढ़ाया जा सकता है। विशिष्ट शिल्प से संबंधित शब्दावली का प्रयोग और विस्तार, प्रासंगिक साहित्यिक सामग्री (जैसे फणीश्वरनाथ रेणु की कहानी ठेस या गाल्सवर्दी की कहानी 'क्वालिटी', जिसका जिक्र पहले किया जा चुका है।) के साथ भाषा और साहित्य की कक्षा में किया जा सकता है। शिल्प के सामाजिक भूगोल (यानी इसका व्यवहार करने वाले कौन हैं, उनके उत्पादों को कहाँ भेजा जाता है और इस्तेमाल के लिए आदि) को समाजविज्ञान के पाठ्यक्रम से जोड़ा जा सकता है।

स्कूल में शिल्प सिखाने को कला शिक्षण के एक आयाम की तरह भी देखा जाना चाहिए। वर्तमान कला पाठ्यक्रम शास्त्रीय परंपराओं पर केंद्रित होते हैं तथा लोक परंपराओं की अनदेखी करते हैं जबकि आमतौर से शिल्प इन्हीं में अंतर्निहित होते हैं। लोक परंपराओं और शैलियों

को शामिल करने के लिए सभी प्रमुख क्षेत्रों जैसे संगीत, नृत्य, थियेटर, विजुअल आर्ट्स आदिम कला पाठ्यक्रम के पुनरीक्षण की फौरी आवश्यकता है। ऐसी पुनर्परिभाषा के संदर्भ में शिल्प कार्यक्रमों को व्यापक कला शिक्षण ढांचे के अंतर्गत समाहित किया जा सकता है। यह उन अन्य संभावनाओं को अनदेखा करने की पैरोकारी नहीं है जिनको शिल्प कार्यक्रम प्रस्तुत कर सकता है जैसे व्यावसायिक प्रशिक्षण जो उत्पादन कौशलों और नज़रियों की ओर ले जाता है। ये चीजें शिल्प शिक्षा के क्षेत्र में भी शामिल होती हैं पर उनको मुख्य धारा या शिल्प की पैरवी का आधार बनाने की आवश्यकता नहीं है। आंशिक रूप से इस कारण कि गाँधीवादी चरण में हमने इस विचार का अनुभव बिना अधिक सफलता के किया है, और इस कारण भी कि शिल्पों के सामने उस संकट को अचानक दूर होने के कोई तात्कालिक कारण नहीं दिखाई दे रहे हैं जिसका सामना वे आर्थिक रूप से जीवित बचे रहने के संदर्भ में कर रहे हैं।

*“जो स्कूल, पाठ्यक्रम में शिल्प परियोजना का विकल्प देते हैं उनको मूल्य शिक्षा के बारे में अपनी परेशानियों को भुला देना चाहिये। ‘मूल्य शिक्षा’ शब्द उस सीमा की याद है जिसके बारे में शिक्षा से हमारी उम्मीदें घट गई हैं। हमारे सामने शिक्षा में मूल्य डालने के अनेक कार्यक्रम आते हैं, जैसे स्कूलों में जो चल रहा है उसमें मुट्टीभर मूल्य डाले जा सकते हैं। शिल्प यह भूमिका इस तरह से अदा करेंगे जिसे बहुत से लोग आसानी से पहचान नहीं सकेंगे क्योंकि*

शिल्प सीखने के मूल्य आयाम बहुत सूक्ष्म होते हैं।”

जो स्कूल, पाठ्यक्रम में शिल्प परियोजना का विकल्प देते हैं उनको मूल्य शिक्षा के बारे में अपनी परेशानियों को भुला देना चाहिए। ‘मूल्य शिक्षा’ शब्द उस सीमा की याद है जिसके बारे में शिक्षा से हमारी उम्मीदें घट गई हैं। हमारे सामने शिक्षा में मूल्य डालने के अनेक कार्यक्रम आते हैं, जैसे स्कूलों में जो चल रहा है उसमें मुट्ठी भर मूल्य डाले जा सकते हैं। शिल्प यह भूमिका इस तरह से अदा करेंगे जिसे बहुत से लोग आसानी से पहचान नहीं सकेंगे क्योंकि शिल्प सीखने के मूल्य आयाम बहुत सूक्ष्म होते हैं।

शिल्प सीखते समय बच्चे एक प्रक्रिया में भाग लेते हैं जो प्रत्येक सीखने वाले को एक सुखद पर कठोर मेहनत की माँग करने वाली परम्परा में प्रयोग के समुचित अवसर देती है। सही होने के मानक स्वयं अपने काम से पैदा होते हैं। यदि शिक्षक उत्पीड़क न हो और प्रधानाचार्य वार्षिक दिवस कार्यक्रम में वीआईपी मुख्य अतिथि को आश्चर्यचकित करने के लिए छात्रों के सर्वोत्तम उत्पाद प्रदर्शित करने की योजना न बना रहे हों तो फिर से करने और खुद को ठीक करने की क्षमता स्वाभाविक रूप से पोषित होती है। दूसरों के साथ संबंधों के संदर्भ में उच्चस्तरीय नैतिक मूल्य पैदा होते हैं, जिनमें प्रकृति के साथ संबंध भी शामिल हैं। स्वर्गीय डेविड हांसबरो ने समझाया है कि काम करने वाली सामग्री हमें अपने साथ व्यवहार करना कैसे सिखाती है। यदि हम लकड़ी के एक खरादने वाले टुकड़े के साथ खराब व्यवहार करते हैं तो वह टूट जाता है।

“जब स्कूल और शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान शिल्पियों के साथ काम करना शुरू करते हैं तो शिल्प सीखने के बहुत से अन्य आयाम उभरेंगे जो शिक्षा में नैतिकता के लिए प्रासंगिक होंगे। समय और कठोरता का अलग अनुभव, उत्पाद की व्यक्तिगत देखभाल और विस्तार की समझ; किसी शिल्प अनुभव के सामान्य आयाम हैं। चाहे आप एक रूमाल पर कढ़ाई कर रहे हों या लकड़ी के एक टुकड़े पर नक्काशी, आपको अपनी खोज, आनन्द और आराम की एक लय का अहसास होगा।”

गाँधी जी के जीवन पर अपनी किताब में मार्जोरी साइक्स बुनियादी शिक्षा कार्यक्रम के हिस्से के तौर पर कतई सीखने वाले बच्चों और शिक्षकों से अपनी बातचीत को याद करती है। शिक्षकों ने उन्हें बताया कि वे कपास की बोडियों को केवल तभी तोड़ते हैं जब वे पूरी तरह पक जाती हैं, क्योंकि उनके लिए ‘बस एक हल्का-सा स्पर्श काफी है, वे आसानी से टूट जाती हैं। यदि ऐसा नहीं होता तो वे अभी तोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं। हमें कुछ दिन और इंतजार करना चाहिए। हमें अधीर या लालची नहीं होना चाहिए। साइक्स की टिप्पणी है,

“यह भी शिक्षा थी, इस बात की शिक्षा कि दूसरी जीवित चीजों, पौधों, जानवरों के साथ उनके अपने प्राकृतिक जीवन चक्र में सम्मान से कैसे व्यवहार किया जाए। यह अहिंसा के एक आयाम की शिक्षा है” (पृष्ठ 54)।

जब स्कूल और शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान शिल्पियों के साथ काम करना शुरू करते हैं तो शिल्प सीखने के बहुत से अन्य आयाम उभरेंगे

जो शिक्षा में नैतिकता के लिए प्रासंगिक होंगे। अपनी खोज, आनंद और आराम की एक लय समय और कठोरता का अलग अनुभव, उत्पाद का अहसास होगा। यदि आप एक शिल्प का की व्यक्तिगत देखभाल और विस्तार की समझ, अभ्यास एक ऐसे माहौल में करते हैं जो व्यक्तिगत किसी शिल्प अनुभव के सामान्य आयाम हैं। चाहे सम्मान और न्याय की गारंटी देता है तो आपको आप एक रूमाल पर कढ़ाई कर रहे हों या ऐसा आत्मविश्वास मिलेगा जो किसी दूसरी चीज़ लकड़ी के एक टुकड़े पर नक्काशी, आपको से नहीं मिल सकता है।

## शिक्षा, भाषा और बच्चों का मानसिक विकास

रवि पी. भाटिया\*

शिक्षा द्वारा बच्चों के मानसिक विकास की प्रक्रिया में भाषा की अहम् भूमिका है। भाषाएँ वे माध्यम हैं जिनसे अधिकतर ज्ञान का निर्माण होता है और इसके प्रयोग से बच्चे विचारों, व्यक्तियों और वस्तुओं तथा अपने आसपास के संसार से अपने आप को जोड़ पाते हैं। भारत एक बहुभाषिक देश है। हमारी यह भाषिक विविधता एक जटिल चुनौती तो पेश करती ही है, साथ ही वह कई प्रकार के अवसर भी देती है। बच्चे अपनी मातृभाषा के साथ-साथ धीरे-धीरे कुछ अन्य भाषाएँ भी समझने, बोलने लगते हैं और बहुभाषाई वातावरण का उन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। बहुभाषिक देश होते हुए भी आज हमारे यहाँ कुछ भाषाओं का अधिक बोलबाला है (विशेषकर अँग्रेजी) जबकि कुछ भारतीय भाषाएँ धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही हैं। हमें अपनी बहुभाषाई धरोहर का भरपूर लाभ उठाना चाहिए। बच्चों के विकास के लिए हिन्दी, अन्य भारतीय भाषाओं और अँग्रेजी का उचित प्रकार से समन्वय किये जाने की आवश्यकता है।

भाषा के माध्यम से मानव न केवल बोल पाता है बल्कि एक दूसरे के साथ संपर्क कर पाता है, और इस माध्यम से शिक्षा भी ग्रहण कर लेता है। भाषा के मौखिक और लिखित रूप होते हैं। इनके चलते शिक्षा पढ़कर, लिखकर तथा सुन कर ग्रहण की जाती है। विद्यार्थी, पर्यावरण, चित्र, हस्तकला, संगीत आदि से भी शिक्षा प्राप्त कर पाते हैं।

लेकिन लिखित रूप का महत्त्व अधिक है। शैक्षिक सामग्री— ग्रंथ, पुस्तक, लेख, कहानी, कविता आदि लिखित रूप में अधिक सकारात्मक हैं। इस कारणवश पढ़ाई लिखाई व शिक्षण में भाषा का योगदान महत्वपूर्ण है।

ऐसी स्थिति में भारत में शिक्षा कौन-सी भाषा में ग्रहण की जाए, यह मुद्दा जटिल बन गया है।

\*4, माल अपार्टमेंट, माल रोड, दिल्ली-110054

### भारत की अनेक भाषाएँ

भारत बहुभाषीय देश है। 1991 जनगणना के अनुसार भारत में 114 मातृभाषाएँ थीं। भारतीय सर्वविधान ने 22 भाषाओं को मान्यता दे रखी है। हिंदी भारत की राष्ट्रभाषा और सरकारी कामकाज की भाषा है। अँग्रेजी भाषा को अतिरिक्त सरकारी कामकाज की भाषा का स्थान दिया गया है। सन् 1991 की जनगणना में लगभग 39% लोगों की मातृभाषा हिंदी थी। बंगाली 8.2% और तेलुगू 7.8% लोगों की मातृभाषा थी। सबसे कम 0.005% व्यक्तियों ने संस्कृत को मातृभाषा माना था। अँग्रेजी भाषा को मातृभाषा मानने वाले केवल 0.02% व्यक्ति थे।

दस साल बाद सन् 2001 की जनगणना में हिंदी बोलने वालों की संख्या बढ़कर 41% हो गई। बँगाली व तेलुगू बोलने वालों की संख्या थोड़ी बहुत घट गई थी (क्रमशः 8.1% व 7.3%)। जबकि अँग्रेजी बहुत कम लोगों की मातृभाषा है और उसको बोलने वाले भी कम हैं, फिर भी भारत में अँग्रेजी का महत्त्व सबसे अधिक है।

### अँग्रेजी भाषा व स्कूली शिक्षा

अँग्रेजी भाषा की उपयोगिता व प्रभुत्व के कारण स्कूली शिक्षा में इसका पढ़ना-पढ़ाना अनिवार्य हो गया है। कुछ वर्ष पूर्व अनेक राज्यों में अँग्रेजी पाँचवी या छठी कक्षा से आरंभ की जाती थी लेकिन बच्चों के माता-पिता की माँग को देखते हुए, अधिकाँश राज्यों में अँग्रेजी अब तीसरी या पहली कक्षा से पढ़ाई जाती है। निजी (पब्लिक) स्कूलों में तो यह पहली या नर्सरी

स्तर से ही पढ़ाई जाने लगी है। इन स्कूलों में अँग्रेजी भाषा एक विषय के रूप में ही नहीं बल्कि माध्यम के रूप में प्रयोग की जाती है। इसका अर्थ यह है कि गणित, विज्ञान या सामाजिक शिक्षा आदि की पुस्तकें अँग्रेजी भाषा में चलती हैं और इसी के माध्यम से बच्चों को पढ़ाया तथा समझाया जाता है।

### शिक्षण व बच्चों का विकास

अँग्रेजी भाषा के बोलबाले के चलते, बच्चों के मानसिक व बौद्धिक विकास के संबंध में कुछ प्रश्न उठते हैं जिनकी मैं इस लेख में चर्चा करूँगा। शिक्षाशास्त्र (पैडागोजी) क्या रूप ले सकती है यह भी अहम मुद्दा बन गया है। हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं का क्या भविष्य हो सकता है तथा उनका कैसे विकास हो सकता है इनके बारे में भी मैं अपनी दो बातें रखूँगा।

भारत में अनेक भाषाओं के चलते, बच्चे अपनी मातृभाषा तो समझते हैं व बोल पाते हैं। साथ-ही-साथ अपने क्षेत्र में चलने वाली एक दो अन्य भाषाओं से भी परिचित हो जाते हैं। यह स्थिति लगभग सभी राज्यों में देखी जाती है। उदाहरण के रूप में अगर हम झारखंड की बात करें तो गाँव हो या शहर अनेक आदिवासी बोलियाँ बोली जाती हैं। हिंदी भी विस्तृत रूप से चलती है। साथ-साथ मैथिली और भोजपुरी भाषाओं का भी चलन है। ऐसी स्थिति में अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त चार-पाँच साल के बच्चे दो-तीन अन्य भाषाएँ भी समझते तथा बोलते हैं।

यह स्थिति और भी मजबूत होती है जब बच्चे स्कूल जाने लगते हैं। अगर पब्लिक स्कूल की

बात न की जाए तो हिंदी क्षेत्र में अधिकतर बच्चों की पढ़ाई हिंदी माध्यम से होती है— समझाने-बुझाने के लिए मातृभाषा या मैथिली, भोजपुरी भाषाओं का भी उपयोग होता है।

ये बच्चे घर में आदिवासी भाषा में बोलते हैं, स्कूल में हिंदी या भोजपुरी आदि में बात करते हैं। इस प्रक्रिया से बच्चों की न केवल भाषाई वृद्धि होती है बल्कि वे एक दूसरे के संस्कार व रीति रिवाज भी सीख पाते हैं। गाना-बजाना, खाना-पीना, तीज-त्यौहार भी अलग हो सकते हैं। जिन्हें बिना परेशानी के बच्चे ग्रहण कर लेते हैं। इस वातावरण में बच्चों का चौमुखी विकास होता है। शिक्षा का, भाषा का, गाने बजाने का आदि। अक्सर इन परिवारों की कहानियाँ भी अलग होती हैं जिनको सुनकर बच्चे खूब आनंद उठाते हैं। इस प्रक्रिया से बड़ी सहजता व स्वाभाविक ढंग से बराबरी व समानता की धारणा प्रबल होती है। बच्चों में जातिवाद की भावना का भी जन्म नहीं होता जिससे उनके माँ-बाप व समाज पीड़ित हैं।

जब मातृभाषा, क्षेत्रीय भाषा, हिंदी व अँग्रेजी भाषाओं का समन्वय होता है, तब बहुभाषावाद (बहुभाषाई वातावरण) का बच्चों के मानसिक तथा बौद्धिक विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। यह तथ्य मोहन्ती (1994, 2003) के शोध कार्य से प्रमाणित होता है।

एन.सी.ई.आर.टी. (2006)के भाषा पर पोजीशन पेपर में भी यह बात स्पष्ट रूप से लिखी गई है। इस पेपर के अनुसार—

- बहुभाषावाद लाभदायक है और इसका उपयोग पढ़ने-पढ़ाने में किया जाना चाहिए।

- बहुभाषावाद, मानसिक व बौद्धिक विकास में गहरा संबंध है जिसके सही उपयोग से शिक्षण तथा सामाजिक मूल्यों का चौमुखी विकास होता है।
- मातृभाषा शिक्षा को न केवल माध्यम बल्कि पाठ्यक्रम का अनिवार्य अंग होना चाहिए।

### जमीनी स्थिति

बहुभाषावाद के ऊपर दिए गए गुण तो शैक्षिक व सैद्धांतिक रूप से अच्छे लगते हैं लेकिन जमीनी स्तर पर स्थिति काफी भिन्न है। जैसा कि हम अच्छी तरह से जानते हैं भारत में अँग्रेजी भाषा का बोलबाला और दबाव इतना अधिक है कि अनेक स्कूलों में अँग्रेजी पहली कक्षा से पढ़ाई जाने लगी है। अँग्रेजी माध्यम के स्कूल शहरों में तो पाए जाते ही हैं, अब तो कस्बों व दूर दराज के इलाकों में भी देखे जा सकते हैं।

भले ही इन स्कूलों में शैक्षिक सामग्री की कमी हो, कुर्सी मेज टूटे हुए हों, अध्यापकों की ट्रेनिंग न हुई हो, परन्तु 'इंग्लिश मीडियम' के बड़े-बड़े बोर्ड जरूर देखे जा सकते हैं। वैसे अनेक सर्वेक्षणों से पता चलता है कि स्कूल अँग्रेजी या हिंदी माध्यम के भले ही हों, बच्चों के मानसिक व बौद्धिक विकास में कोई विशेष अन्तर नहीं पाया जाता।

अगर अँग्रेजी माध्यम के निजी स्कूलों का परिणाम अन्य स्कूलों की तुलना में बेहतर माना जाता है तो मुख्य तौर पर इसके निम्नलिखित कारण दिए जाते हैं:

- इन स्कूलों की हालत बेहतर होती है।
- शैक्षिक सामग्री (पुस्तकें, चार्ट, कंप्यूटर आदि) बेहतर होती हैं।

- अध्यापकों की बेहतर ट्रेनिंग तथा बेहतर वेतन दिया जाना।
- घरों में माँ-बाप का बच्चों की ओर अधिक ध्यान देना आदि।

कुछ समय पहले मुझे पुणे जाने का अवसर मिला था। वहाँ एक अन्तर्राष्ट्रीय स्कूल खुला है जहाँ औसतन एक कक्षा में छः या आठ बच्चे पढ़ते हैं। स्कूल साफ-सुथरा है, तरह-तरह की शैक्षिक सामग्री उपलब्ध है, अध्यापकगण नियमित ट्रेनिंग पा चुके हैं और उनका वेतन भी काफी अच्छा है। हाँ, पढ़ाई केवल अँग्रेजी भाषा में होती है। अगर हिंदी पढ़नी हो तो अतिरिक्त विषय के रूप में (जैसे फ्रेंच, जर्मन भाषा) पढ़ी जा सकती है। इस स्कूल की वार्षिक फीस दो लाख से अधिक है। क्या ऐसे स्कूल का प्रदर्शन अच्छा नहीं होगा? ऐसे स्कूल व सरकारी स्कूल जिसकी हालत से हम परिचित हैं, तुलना करना व्यर्थ होगा।

यहाँ पर यह विचार करना आवश्यक है कि अच्छे स्कूल से हमारा क्या तात्पर्य है? एन.सी.ई. आर.टी. द्वारा हाल ही में विकसित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 गुणवत्ता के मुद्दे पर अनेक जटिल और व्यावहारिक प्रश्न खड़े करती है और स्पष्ट तौर पर इंगित करती है कि यह विश्वास कि निजि स्कूल अपेक्षाकृत श्रेष्ठ होते हैं इस मान्यता से जनित है कि परीक्षा परिणाम ही शिक्षा के स्तर को परखने का एकमात्र मापदण्ड है। इस तरह की समझ सुविधासंपन्न निजि स्कूलों के माहौल-संबंधी सीमाओं पर ध्यान नहीं देती। यह तथ्य, कि ऐसे स्कूल प्रायः बच्चे की मातृभाषा की उपेक्षा करते हैं, हमारे समक्ष प्रश्न खड़ा करता

है कि वे ज्ञान को सार्थक रूप से रचने के कितने अवसर बच्चों को दे पाएँगे। इसके ही साथ, प्रवेश प्रक्रिया में निर्धन वर्ग के बहिष्कार का अर्थ है कक्षा में विभिन्न सामाजिक-आर्थिक व साँस्कृतिक पृष्ठभूमि से आए बच्चों के बीच सीखने के अवसरों को खो देना।

### शिक्षा, भाषा व भारतीय संविधान

हमारे उच्चतम न्यायालय ने शिक्षा संबंधी अनेक महत्वपूर्ण निर्णय लिये हैं (रवि पी.भाटिया, 2009)। इनमें से एक प्रमुख फैसला 6 से 14 वर्ष के बच्चों का मुफ्त व अनिवार्य शिक्षा प्राप्त करने का मौलिक अधिकार के संबंध में था। इसके चलते भारत गणराज्य ने सन् 2009 में 'बच्चों का निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम' (The Right of Children to Free and Compulsory Education Act 2009) पारित कर दिया जिसका उद्देश्य इस मौलिक अधिकार को लागू करना है।

इस प्रावधान के अतिरिक्त संविधान की धारा 350ए में साफ शब्दों में लिखा गया है कि राज्यों को प्राथमिक स्तर तक मातृभाषा में पढ़ाने की सुविधाएँ उपलब्ध करानी चाहियें। इस प्रावधान का उद्देश्य स्पष्ट था— बच्चों का मानसिक विकास अपनी मातृभाषा में अच्छे ढंग से होता है। क्योंकि कई राज्यों में अनेक मातृभाषाएँ हैं (झारखंड, छत्तीसगढ़, उत्तरपूर्वी राज्य आदि) सब मातृभाषाओं में पढ़ना-पढ़ाना सम्भव नहीं होता। ऐसी स्थिति में वहाँ की प्रचलित मुख्य भाषा में पढ़ाई उपलब्ध कराई जाती है। बच्चे आसानी से अपनी मातृभाषा के साथ-साथ एक या दो अन्य क्षेत्रीय भाषाएँ भी

सीख लेते हैं। इस कारणवश क्षेत्रीय भाषा में पढ़ाना ही उचित समझा जाता है।

इसके अनेक उदाहरण हैं। बम्बई में बच्चे मराठी, गुजराती व हिंदी सुनते हैं— स्वाभाविक है कि तीन या दो भाषाएँ समझते हैं और बोल भी लेते हैं। दिल्ली में भी गैर हिंदीभाषी मातृभाषा के साथ-साथ हिंदी में भी कोई कठिनाई महसूस नहीं करते। बल्कि कई तमिल, मलयाली, बंगाली माँ-बाप की यह शिकायत है कि उनके बच्चे अपनी मातृभाषा भूलते जा रहे हैं या टूटी-फूटी ही बोल पाते हैं। सिंधी भाषा तो दिल्ली से लगभग समाप्त हो गई है भले ही सिंधी अकादमी भरपूर कोशिश कर रही है कि सिंधी भाषा का विकास हो। उनके कार्यक्रमों में वृद्ध या मध्य आयु के लोग ही दिखते हैं— बच्चों को इन में कोई विशेष रुचि नहीं होती।

### भारत में अँग्रेजी भाषा का स्थान

भारत में अँग्रेजी भाषा का क्या भविष्य है? क्या इसका प्रभुत्व कम हो सकता है? इन प्रश्नों पर कई विद्वानों में मतभेद है। हम अच्छी तरह से जानते हैं कि अँग्रेजी भाषा का महत्व और उपयोगिता, अंतर्राष्ट्रीय बाजारवाद, अर्थव्यवस्था, कूटनीति, अमरीका का विश्व स्तर पर महाशक्ति बनना, के कारणवश उभरा है। इसके अलावा विज्ञान, टेक्नॉलोजी और इंटरनेट की मुख्य तौर पर भाषा अँग्रेजी ही है। यह भाषा समृद्ध है, चपल है। यही कारण है कि भारत में इस भाषा का बोलबाला है।

विश्व स्तर पर भी अँग्रेजी की उपयोगिता व प्रासंगिकता को माना गया है। यूरोप हो, अफ्रीका हो, चीन या अन्य एशियाई देश हों, सब देशों में अँग्रेजी भाषा पढ़ी जाती है। परन्तु इन देशों में

यह भाषा इतनी हावी नहीं है जैसे भारत में। उन देशों में अपनी भाषा में पढ़ना-पढ़ाना, बोलना एक राष्ट्रवाद का मुद्दा है जो कि भारत में ओझिल होता जा रहा है। हमें यह समझ विकसित करने की कोशिश करनी चाहिए कि 'अँग्रेजी एकाकी नहीं है। अँग्रेजी शिक्षण का लक्ष्य ऐसे बहुभाषी लोगों को तैयार करना है जो हमारी भाषाओं को समृद्ध कर सकें, यह एक राष्ट्रीय दृष्टीकोण रहा है। विभिन्न राज्यों में अन्य भारतीय भाषाओं के साथ अँग्रेजी का स्थान बनाने की आवश्यकता है, जहाँ अन्य भाषाएँ अँग्रेजी सीखने-सिखाने को समृद्ध करें; और अँग्रेजी के वर्चस्व को कम करने के लिए अन्य भारतीय भाषाओं के मूल्यवर्धन की जरूरत है।' (राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005)

प्रो. जीत ओबराय दिल्ली विश्वविद्यालय के विख्यात समाजशास्त्री तथा विद्वान हैं। उनका मानना है कि जब तक हम अपने भगवान या ईश्टदेव से हिंदी (या अनेक राजभाषाओं) में नहीं बोलेंगे, हिंदी (या क्षेत्रीय भाषाओं) की दुर्दशा बनी रहेगी।

युरोपीय देश पहले अपने देवताओं से हीबरू, यूनानी (ग्रीक) या लैटिन भाषाओं में बात करते थे। इसका मतलब है कि ओल्ड टैस्टामेंट, बाइबल आदि ग्रंथ इन्हीं भाषाओं में लिखी गई थीं तथा धार्मिक गतिविधियाँ भी इन्हीं भाषाओं में चलती थीं। इन देशों में दर्शनशास्त्र, विज्ञान, गणित आदि की पुस्तकें भी इन्हीं भाषाओं में लिखी पढ़ी जाती थीं।

कई सदियों बाद धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद स्पैनिश, जर्मन, इटैलियन, फ्रेंच, रूसी, अँग्रेजी आदि भाषाओं में हो पाया। इसके बाद चर्च की



कार्यवाही इन्हीं राष्ट्रीय भाषाओं में होने लगी। विज्ञान व गणित आदि पुस्तकों का भी अनुवाद धीरे-धीरे होने लगा परन्तु यह कार्य कई वर्षों बाद हुआ। हमें याद रखना चाहिए कि प्रख्यात वैज्ञानिक-गणितज्ञ न्यूटन अपनी पुस्तकें लैटिन भाषा में लिखते थे। आज आवश्यकता है हिंदी, संस्कृत तथा अन्य भारतीय भाषाओं में समसामयिक साहित्य का विकास करने की ताकि हमारी ये भाषाएँ फल-फूल सकेंगी और विनाश की ओर जाने से बच सकेंगी। प्रो. ओबराय की राय में तुलसीदास की लिखी रामचरित मानस व मीरा बाई के भजनों से हिंदी भाषा को खूब लाभ पहुँचा है। इसी प्रकार तमिल, कन्नड़, मलयाली, बँगाली, मराठी आदि भाषाओं में भी जाने माने

संत तथा कवि हुए हैं जिनकी रचनाओं से इन भाषाओं का विकास हुआ है और प्रचलन बढ़ा है।

### समापन शब्द

हमारी बहुभाषीय धरोहर, परम्परा व साहित्य का हमें भरपूर लाभ उठाना चाहिए। अंग्रेजी भाषा को हटाने की बात नहीं है— यह बहुत उपयोगी व प्रचलित भाषा है। परन्तु हमें इसको अपने ऊपर हावी नहीं होने देना चाहिये। मातृभाषा हिंदी, अन्य भारतीय भाषाओं तथा अँग्रेजी का सही ढंग से समन्वय हो जाए तो बच्चों का मानसिक, बौद्धिक विकास होगा। साथ-ही-साथ भारतीय भाषाओं एवं देश की भी उन्नति होगी।

### संदर्भ

मोहनती, ए. के. 1994. 'बाइलिंग्वलिज्म इन ए मल्टी लिंगुअल सोसाइटी, साइकोसोशल एंड पैडागोगीकल इम्प्लिकेशन्स'. मैसूर सेंट्रल इन्स्टीट्यूट ऑफ इण्डियन लैंग्वेजेज.

\_\_\_\_\_ 2003. 'मल्टीलिंगुअलिज्म एन्ड मल्टीकल्चरिज्म दि कान्टेक्स्ट ऑफ साइकोलिंग्विस्टिक रिसर्च इन इण्डिया' इन डी. विन्द्या (एड) साइकोलोजी इन इण्डिया, इन्टर सैक्टिंग क्रॉस रोड्स, नई दिल्ली, कान्सेप्टस्, भाटिया, रवि. पी. 2009. 'सुप्रीमकोर्ट रूलिंग ऑन डिफरेंट आसपेक्ट्स ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया : देअर स्कोप एण्ड इम्पैक्ट ऑन सोसाइटी', पर्सपेक्टिव्स इन एजुकेशन. वोल्यूम 25, न.1, पृ 32-40.

बर्क, लॉरा इ 2006 संस्करण 'चाइल्ड डवलपमेंट'. एलन एण्ड बेकन पब्लिशर्स.

## समझ की भाषा

संध्या सिंह\*

---

आजादी के बाद के पिछले सारे शिक्षा संबंधी दस्तावेजों में मातृभाषा को समझ के माध्यम खासतौर से प्राथमिक शिक्षा के रूप में लागू किए जाने की बात कही गई और बच्चों की समझ में सहायक उनकी अपनी भाषा, उनकी स्वतंत्र अभिव्यक्ति को महत्व दिया गया। लेकिन आज लगभग 60 वर्षों बाद भी ऐसा पूरी तरह न हो सका। एक ओर घर की भाषा और स्कूल की भाषा में अंतर बढ़ता चला गया तो दूसरी ओर अँग्रेज़ी सहित भारतीय भाषाओं के बीच सँवाद की अपनी समझ, अपनी अभिव्यक्ति कहीं दब कर रह गई। इसीलिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में इस बात को पुरजोर तरीके से फिर से कहने की ज़रूरत पड़ी कि बच्चों की घर की भाषा स्कूल में भी उनकी समझ का माध्यम बने ताकि बच्चे रटने के बजाय समझकर पढ़ने की दिशा में आगे बढ़ें। शिक्षा उनके लिए बोझ न बनकर एक आनंददायी अनुभव बने।

---

पढ़ने-पढ़ाने की दुनिया में बच्चों के समझ का माध्यम कौन-सी भाषा हो सकती है? आज भी यह बहस का बड़ा मुद्दा है, पर बहस में नहीं। इधर एन.सी.ई.आर.टी ने 'समझ का माध्यम' शृंखला के रूप में देशभर (पटना, वाराणसी, उदयपुर) में संगोष्ठी आयोजित कर बहस चलायी। संभव है, शिक्षा का अधिकार बिल पास हो जाने से यह बहस एक अंजाम ले सके। क्योंकि इसके अध्याय तीन में राज्यों की जिम्मेदारियों में एक बात खुल कर कही गई है कि और बहुत से अवरोधों के साथ-साथ भाषिक अवरोध के कारण किसी भी बच्चे की प्रारम्भिक शिक्षा में रुकावट नहीं आनी चाहिए। पर हैरानी है कि हमारी शिक्षा व्यवस्था आजादी के बासठ वर्षों बाद भी बच्चों को अपनी भाषा में पढ़ने की आजादी नहीं देती। आज भी स्कूलों में बच्चों को ककहरा रटते हुए देखकर नागार्जुन की 'मास्टर' कविता प्रासंगिक हो उठती है।

---

\*प्रवक्ता हिन्दी, भाषा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

घुन-खाए शहतीरों पर की, बाराखड़ी विधाता  
बाँचे  
कटी भीत है, छत चूती है, आले पर  
बिसतुइया नाचे  
बरसाकर बेबस बच्चों पर मिनट-मिनट  
में पाँच तमाचे  
दुखरन मास्टर गढ़ते हैं किसी तरह आदम  
के साँचे

हमारी शिक्षा पद्धति में 'आदम के साँचे' गढ़ने की परम्परा के पीछे रटंत प्रणाली का बड़ा जोर रहा है। जाहिर है, इन साँचों से निकले तोतों के पास न तो अपनी सोच-विचार है और न ही अपनी जुबान।

इसे जानने और सोचने-विचारने के लिए तो थोड़ा ठहरना होगा। अपने अतीत, वर्तमान और आने वाले समय पर एक साथ दृष्टि डालनी होगी। खुद की रफतार को रोककर स्कूलों में झाँकना होगा। बे मकसद होती नई पीढ़ी को टटोलना होगा। इस बात का जायजा लेना होगा कि पढ़ाई का जो ढाँचा औपनिवेशिक शासन में तैयार हुआ आज़ादी के बहुत वर्षों बाद तक बहुत कुछ आज तक क्यों चलता रहा? जाहिर है यह ढाँचा हमारे देश के मध्यवर्गीय और उच्च मध्यवर्गीय समाज को रास भी आया। पर इस ढाँचे ने भाषाई, वैचारिक गुलामी तथा ज़हालत का एक ऐसा पासा फेंका जिसकी चाल हमें आज तक नहीं मिल पा रही है। बहुत थोड़े से लोगों को साथ लेकर चलने वाले इस ढाँचे में आम बच्चों के लिए पढ़ना-लिखना संभव नहीं हुआ। क्यों?

हमारी प्राचीन शिक्षा पद्धति भी इससे भिन्न न थी। उसमें भी थोड़े से उच्च घरानों के लोगों को

ही पढ़ना सुलभ था। आम लोगों की पहुँच वहाँ नहीं थी (पर वहाँ गुरु शिष्य संवाद की अच्छी परंपरा थी)। नतीजा सामने है। बहुत बड़ी तादाद में ऐसे बच्चे बड़े होते रहे जो अपने लिए, अपने देश के लिए अपनी जुबान में अपनी बात कहने से हिचकिचाते हाशिए पर रहे।

समझ और भाषा का सीधा संबंध बनता है। कौन पहले, यह कहना इतना आसान नहीं। आज शायद हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं होगा कि आजादी के पहले यानी औपनिवेशिक शासन हो या उत्तर औपनिवेशिक समय, भाषा और समझ को एक साथ रखकर देखने की कोशिश हमारे सोच के दायरे में कभी नहीं रही। रही भी तो इस तरह नहीं कि यह एक मुहिम का रूप ले सके। हमारी नींद में दस्तक देने लगे। एंगिल्स यह कहता है कि भाषा मनुष्य की व्यावहारिक चेतना है। जरा सोचिए, बच्चे स्कूल में ऐसी भाषा का व्यवहार करने को बाध्य किये जाँएंगे, जो उनके परिवेश की नहीं है तो क्या होगा? यकीनन उनकी चेतना गुलाम होगी और गुलाम चेतना के साथ बड़े होते बच्चे अपने भविष्य और आज़ाद भारत की रक्षा कर सकने में कितना समर्थ होंगे, सोचना होगा।

उस समय में काम मुख्य रूप से दो स्तरों पर हुआ। एक ओर ऐसे स्कूल तैयार हुए जिन तक आम भारतीय आदमी की पहुँच न थी। दूसरे पढ़ाई का माध्यम ऐसी भाषा रही जो बच्चों के स्वतंत्र अभिव्यक्ति में रूकावट बनी और उनके अपने विचार बनाने में बाधक रही। अभिव्यक्ति प्रभावित होती है तो एक ओर बच्चों के व्यक्तित्व का विकास रुकता है और दूसरी ओर देश का

विकास भी निश्चय ही रुकता है (धीरे-धीरे शिक्षा से दूर होते बच्चों के कारण)। अभिव्यक्ति के स्तर पर पहले से ही कमजोर आम जनता को और कमजोर करते जाने की यह साजिश कामयाब रही। इस कदर कामयाब रही कि आज हमारे पास अर्थ, समाज और विज्ञान-जो किसी भी देश के विकसित होने या पिछड़ेपन का पैमाना होता है — के पास अपनी भाषा नहीं है। हमारे देश का वह विज्ञान और अर्थशास्त्र नहीं विकसित हो पाया जो हमारे देश और हमारी ज़रूरत के मुताबिक रचा गया हो। विज्ञान-समाज और अर्थ संबंधी मसलों के लिए उधार ली गई भाषा अपना विचार बना सकने में बाधक रही। यह सब हुआ, और यह जानते और मानते हुए हुआ कि विचार-विमर्श के अभाव में न तो भाषा का विकास हो सकता है और न ही बच्चों का।

आजाद भारत ने ऐसी पीढ़ी को जन्म दिया जिनकी अपनी समझ का विकास करने में हमारे स्कूल भी सहायक नहीं रहे। इसका नतीजा हमारे सामने है। हालाँकि हम बड़ी बेफिक्री से यह मान लेते हैं कि इसका कारण मात्र गरीबी है। यह जानने की कहीं कोशिश भी नहीं की गई कि स्कूल की भाषा और घर की भाषा के बीच संवाद हो रहा है या नहीं? अगर नहीं हो रहा है तो रास्ता क्या है? हैरत है कि संवाद का न होना हमारे देश में कभी वाद-विवाद का मुद्दा नहीं हुआ। कनाडा के मशहूर संचारशास्त्री मार्शल मैकलुहान बार-बार कहते रहे कि 'माध्यम ही संदेश है'। पर हम माध्यम कोई हो संदेश तो हम पहुँचा ही लेंगे कि सोच से रटाते रहे। लेकिन हमने सुना नहीं। कारण और भी हैं। पड़ताल जरूरी है।

इस बात की पड़ताल भी करनी होगी कि भारत जैसे बहुभाषी देश के बच्चों के आपसी संवाद की भाषा क्या होगी? न सोचने का नतीजा यह हुआ कि आज तक हमारी कोई भाषा नीति नहीं बन पाई है। ऐसे में एक ओर ऐसे लोगों की संख्या बढ़ती गई जो यह मानने लगे कि भारतीय भाषाओं का कक्षा की भाषा न बन पाने का कारण कहीं न कहीं अँग्रेज़ी भाषा है। (गाँधी की सोची हुई नई तालीम में भी अँग्रेज़ी का स्थान न था। आगे चलकर बहुत से लोगों का ध्यान भी इस ओर गया)। दूसरी ओर भारत के अन्य भाषा-भाषियों के बीच ऐसा बीज रोपा गया कि हिंदी ही अन्य भाषाओं के विकसित न हो पाने का कारण है। इसका नतीजा यह हुआ कि अँग्रेज़ी का महत्व और बढ़ता चला गया। आज अँग्रेज़ी ज्ञान-विज्ञान की भाषा होने के साथ-साथ हमारे आपसी जुड़ाव का माध्यम भी हो गई है। इसलिए इसे तबतक पूरी तरह खारिज नहीं किया जा सकता, जबतक कि यह भाषा हमारे जुड़ाव का माध्यम है। आज इस बात की भी जरूरत है कि भारतीय भाषाओं के साथ-साथ हिंदी और अँग्रेज़ी के बीच एक संवाद कायम हो। यह संवाद हमारी हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं को सशक्त करने की दिशा में पहल कर सकता है। बच्चे शुरूआती दौर में ही कुछेक भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अँग्रेज़ी भी पढ़ें, पर स्कूलों में शिक्षा का माध्यम बच्चों के घर की भाषा ही हो। इसके लिए दो स्तरों पर काम करना होगा।

एक-अनुवाद के द्वारा, दूसरे मूल हिंदी या भारतीय भाषाओं में लेखन द्वारा। जब एक पुस्तक

हिंदी से अँग्रेजी में अनूदित होगी तो विश्व पटल पर हिंदी भी पहुंचेगी। इसी तरह जब एक पुस्तक अँग्रेजी से हिंदी में अनूदित होकर पहुंचेगी तब भी हिंदी की दुनिया कुछ और समृद्ध होगी। कल्पना कीजिए, टॉलस्टॉय या शेक्सपियर हिंदी और अन्य भाषाओं में न आए होते तो क्या होता? क्या होता, शायद इतना ही कि एक ओर अपराध और दंड, मैकबेथ, अन्नाकेरेनिना जैसी महान रचनाओं से बहुत से पाठकों और विद्यार्थियों का परिचय न होता, तो दूसरी ओर ऑथेलो और अन्ना जैसे चरित्रों से हमारे देश के अन्नाओं और ऑथेलाओ की मुलाकात न हुई होती और हर देश के अन्ना अपने-अपने अकेलेपन में कैद होते। जाहिर है साहित्य का विकसित संसार भी कुछ संकुचित होता और इस मुकाम पर न होता। विचारना यह भी होगा कि प्रेमचन्द जैसे कथाकार अँग्रेजी में पहुँचे तो दुनिया ने यह जाना कि हिंदी ऐसी जमीन की भाषा है जो उर्वर है, जिसे आगे आने से रोका नहीं जा सकता। यह कहने में संकोच नहीं कि रवीन्द्र नाथ टैगोर अँग्रेजी में न पहुँचे होते तो उन्हें नोबेल पुरस्कार भी न मिला होता। बहुत-सा अच्छा लेखन हिंदी और भारतीय भाषाओं में हो रहा है, जिसकी खबर शायद दुनिया को नहीं है तो इसका मतलब यह नहीं है कि हिंदी या भारतीय भाषाएँ कुछ दे सकने में समर्थ नहीं हैं। ऐसी छवि और ऐसी धारणा बनाने के भागीदार हम भारतीय ही हैं। हिंदी में विज्ञान, समाज विज्ञान की तमाम ऐसी पुस्तकें हैं जिनको हिंदी पाठकों तक पहुँचाना होगा। पर यह तभी होगा जब हमारी भाषा समृद्ध होगी और भाषाएँ एक-दूसरे के साथ ही फलती-फूलती हैं।

हमारे देश में लगभग हर भाषा के बहुत अच्छे कवि और लेखक मौजूद हैं। इनकी सहायता से इन नए क्षेत्रों के लिए हर भाषा में बच्चों के लिए किताबें तैयार की जा सकती हैं। इन दिशाओं में अनुवाद की भी खासा गुंजाइश और जरूरत है। अगर यह काम गंभीरता से हुआ तो कई बातें और होंगी। पहली बात यह कि—आधुनिक वैज्ञानिकों की इस धारणा के लिए यह चुनौती होगी कि हिंदी आधुनिक विज्ञान आदि की भाषा नहीं हो सकती। दूसरे— इन क्षेत्रों में अच्छे मौलिक लेखन की दिशा में आने के लिए हिंदी लेखकों को बढ़ावा भी मिलेगा। कुछ लोगों का यह मानना है कि इन विषयों को हर भाषा में नहीं पढ़ाया जा सकता लेकिन बहुत से दार्शनिकों का यह कहना है कि जो यह कहता है वास्तव में उसे इन विषयों की समझ ही नहीं है।) ऐसी धारणाओं का नतीजा यह हुआ कि इस तरह का कोई भी मौलिक चिंतन मूल हिंदी और अन्य भारतीय भाषाओं में नहीं आने पा रहा है। एक तरफ यह भी सच है कि प्राचीन समय में इन विषयों के ग्रंथ मूल हिंदी में लिखे गये ग्रंथ हैं, जिसकी जानकारी भी लोगों को नहीं है। शायद इसका कारण यह भी है कि इनकी उपलब्धता संदिग्ध है। यह घोर उपेक्षा का ही परिणाम था। नतीजा आज अर्थशास्त्र, समाजिक चिंतन और ज्ञान-विज्ञान का क्षेत्र आम जनता की पहुँच से दूर होता चला गया है। तीसरे-हमारे बच्चों को विज्ञान, समाज विज्ञान और अर्थविज्ञान की समझ विकसित करने में मदद मिलेगी। चौथे इसलिए कि भाषा के बिना अर्थतांत्रिक संचालन भी नहीं हो सकता।

इसके लिए जरूरत है कि बच्चों की अपनी भाषा में इन विषयों की शिक्षा मिले। पर यह काम अध्यापकों और लेखकों की सहायता से ही बेहतर तरीके से हो सकता है। क्योंकि इन क्षेत्रों में अच्छा लेखन और पढ़ने-पढ़ाने की प्रक्रिया में बहुभाषिकता का संसाधन के रूप में इस्तेमाल अभी किया जाना है। इधर हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में अच्छा लेखन हो भी रहा है। हिन्दी में गुणाकर मूले, पूरण चंद्रजोशी, अनुपम मिश्र जैसे लेखकों को इसका श्रेय जाता है। जाहिर है हमें यह काम यह ध्यान रखते हुए करना होगा कि हमारे देश का चरित्र मूलतः बहुभाषी है। अगर हिन्दी की बात करें तो पूरे देश में कश्मीर से कन्याकुमारी तक इसके विभिन्न रूप मिलेंगे इसीलिए हरेक बच्चे की अपनी हिन्दी भी होगी। स्कूलों में जो हिन्दी शिक्षा का माध्यम है वह बहुत कुछ बच्चों की अपनी हिन्दी से अलग है। इसीलिए बच्चों की अपनी समझ बनाने और उन्हें स्कूल में आमंत्रित करने के लिए उनकी अपनी भाषा को माध्यम बनाना होगा। स्कूल की हिन्दी को भी भोजपुरी और मैथिली जैसी अनेक क्षेत्रीय भाषाओं को साथ लेकर चलना होगा। यह कक्षा में संवाद का वातावरण तैयार करने में सहायक होगा, जो समझ कर पढ़ने की पहली सीढ़ी है। देखने की बात यह भी है कि अपार लोकप्रिय और भयावह व्यावसायिक बंबड़्या सिनेमा, छोटे अखबारों पत्रिकाओं और रेडियो टीवी के संसार के सबसे बड़े संजाल (नेटवर्क) भी न तो अवधी के तुलसीदास को खत्म कर पायी है, न ही मैथिली के विद्यापति को मिटा पायी है। हम सब जानते हैं कि यह समझ

की ही बात थी कि तुलसीदास को संस्कृत में लिखे 'बाल्मीकि रामायण' की रचना उस समय की जनभाषा अवधी में 'रामचरित मानस' के रूप में करनी पड़ी। भोजपुरी के भिखारी ठाकुर की लोकप्रियता इस मीडिया और बाजार की खड़ी बोली में लिखने वाले किसी भी स्वनाम धन्य आधुनिक कवि-कथाकार से आज भी ज्यादा है।

आज हिन्दी या किसी अन्य भारतीय भाषा में पला-बढ़ा औसत बच्चा एक विभक्त व्यक्तित्व तथा संदिग्ध मनःस्थिति का बनता जा रहा है। वह आश्वस्त न होकर कुठित होने के लिए अभिशप्त है। हिन्दी या उनकी अपनी भाषा में शिक्षा न होने के कारण एक ओर बच्चों के भाषा प्रयोग/अभिव्यक्ति में निखार नहीं आ पाता, तो दूसरी ओर अँग्रेजी भाषा की चकाचौंध जरूर उनके मन पर हावी होने लगती है। उसकी अभिव्यक्ति निरंतर असहज और अस्पष्ट होती जाती है। भाषा के सक्षम प्रयोग से उभरने वाले आत्मविश्वास से भी वह वंचित होता जा रहा है। इसलिए अब हर अध्यापक और स्कूल को बच्चों की अपनी भाषाओं का प्रयोग माध्यम के रूप में करने की छूट देनी होगी। खासतौर से शुरूआती दौर में। इससे बच्चों का आत्मविश्वास बढ़ेगा और विषय की अपनी समझ विकसित होगी जिसे वे इत्मिनान से अपनी जुबान में कह सकेंगे।

हमें आज ईमानदारी के साथ बच्चों की अपनी भाषा के प्रयोग और पढ़ने-पढ़ाने के क्षेत्र में उसके महत्व को स्वीकार करना होगा। देश की प्रतिभा को देश के लिए उपयोगी बनाने के लिए हमारे पास और कोई दूसरा विकल्प नहीं है।

## कृष्णमूर्ति की शिक्षा दृष्टि और उसकी प्रासंगिकता

सुजाता साहा\*

जे. कृष्णमूर्ति गत शताब्दी के महान् चिंतकों में अग्रगण्य हैं। उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में भी विचार किया है। उनके दर्शन पर आधारित कई शिक्षण-संस्थाएँ देश-विदेश में सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। इस लेख में कृष्णमूर्ति के शिक्षा-दर्शन के विविध आयामों की व्यवस्थित विवेचना करने का प्रयास किया गया है। साथ ही इस आधार पर इस बहुमूल्य दर्शन की प्रासंगिकता को भी आलेकित किया गया है।

बीसवीं शताब्दी के सुख्यात दार्शनिक जे. कृष्णमूर्ति (1895-1986) ने अपने मौलिक चिंतन से शिक्षा दर्शन को भी समृद्ध किया है। उन्होंने विश्व के विभिन्न भागों की निरंतर यात्राएँ कीं तथा सत्य के प्रेमी एवं अन्वेषी के रूप में अपने विचारों से जगत् को आंदोलित किया। अपने शैक्षिक विचारों को जीवंत रूप देने हेतु उन्होंने विशिष्ट प्रकार के विद्यालयों की स्थापना की प्रेरणा दी।

### शिक्षा-दर्शन

सूचना-अर्जन व्यक्ति को यांत्रिक बनाता है, जबकि अधिगम मन-मस्तिष्क को ताजगी से भर देता है। जीवन के पाठ की समझ प्राप्त करना ही अधिगम है। परम्परागत शिक्षा राष्ट्रीय, नागरिक

या आर्थिक हितों की पूर्ति करती है। किन्तु वास्तविक शिक्षा शांति, सुख, अभ्यंतर समृद्धि और चतुर्दिक व्याप्त सौन्दर्य के अवलोकन की क्षमता विकसित करती है।

कृष्णमूर्ति के अनुसार, शिक्षा केवल पुस्तकों से सीखना, किन्हीं तथ्यों को कण्ठस्थ करना तथा समाज के प्रवाह में बहना नहीं है। यह केवल मन को प्रशिक्षित करना भी नहीं है। प्रशिक्षण कार्यकुशलता तो उत्पन्न करता है, किन्तु नवीन का आविष्कार नहीं करता। वस्तुतः शिक्षा समग्र मन के विकास में मनुष्यों की सहायता करने का एक महत्त्वपूर्ण, रचनात्मक और सच्चा मार्ग है, जो व्यक्ति को स्पष्ट अवलोकन करने में सक्षम बनाती है। यह मानव-जीवन में

\*वरिष्ठ प्रवक्ता, शिक्षा विभाग, वसन्त महिला महाविद्यालय, कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया राजघाट फोर्ट, वाराणसी-221001(उ.प्र.)

विद्यमान विभिन्न प्रकार के संबंधों की समझ प्रदान करती है।

अर्थात् शिक्षा जीवन के समग्र अर्थ का बोध कराती है। संक्षेप में, शिक्षा जीवन की गतिविधियों से सीखने की कला है। उचित शिक्षा स्वयं अपने परिवर्तन से ही घटित होती है तथा व्यक्तित्व के सभी पक्षों का समन्वित विकास करती है। यह आंतरिक एवं बाह्य बाध्यताओं से स्वतंत्रता प्रदान करती है। ऐसी स्वाधीनता में ही प्रेम और अच्छाई पुष्पित हो सकते हैं और समस्त के साथ सहयोग संभव हो पाता है।

## शिक्षा के उद्देश्य

### 1. सत्य की समझ प्राप्त करना

सत्य तर्क का विषय नहीं, अपितु प्रत्यक्ष प्रत्यक्षीकरण है। यह स्वयं किया गया शुद्ध निरीक्षण तथा चयनरहित सजगता है, जहाँ निरीक्षणकर्ता ही निरीक्षित हो जाता है। यह जीवन में निहित है। जीवन के दुःखों से मुक्ति ही सत्य है। इसे बौद्धिक विश्लेषण द्वारा नहीं, अपितु मन के निरीक्षण द्वारा स्वप्रयास से ही समझा जा सकता है। साथ ही, ब्रह्माण्ड में व्याप्त संबंधों को स्वतंत्र मन से समझना भी अपेक्षित है। स्वतंत्र मन वह है, जहाँ 'मैं' लुप्त हो गया हो। हमारी सभी आकाँक्षाएँ, अस्वीकृतियाँ, अनुभव, मूल्यांकन आदि 'मैं' में ही केन्द्रित होते हैं। इस 'मैं' से मुक्ति के लिए प्रत्येक घटना को उसकी पूर्णता में देखना चाहिए, तभी हम सत्य के निकट पहुँच सकते हैं।

कृष्णमूर्ति इसी संसार की विविध प्राकृतिक सामाजिक और मनोवैज्ञानिक वास्तविकताओं से

विद्यार्थियों को परिचित कराना चाहते हैं। प्रकृति के विभिन्न उपादानों, सामाजिक संघर्षों, मानसिक यथार्थ, जैसे-ईर्ष्या, आकाँक्षाओं, भय, चिन्ताओं इत्यादि को जान-समझकर विद्यार्थी यथार्थ के बीच विकसित होते जगत् की समस्याओं को समझेंगे तथा एक नवीन विश्व का सृजन करने में समर्थ होंगे।

### 2. मनोवैज्ञानिक स्वाधीनता की उपलब्धि

स्वतंत्रता की अनुभूति से प्रत्यक्षीकरण स्पष्ट बनता है, सत्य का बोध होता है, जिससे सूक्ष्म आंतरिक रूपांतरण होता है। शिक्षा में प्रारम्भ से ही पूर्णता का उपागम अपनाना चाहिए, जिसके अन्तर्गत मानव-मन के मूलभूत मनोवैज्ञानिक सृजनात्मक रूपांतरण पर ध्यान देना सम्मिलित है। शिक्षा का कार्य मनोवैज्ञानिक बाधाओं का अन्वेषण करना है, न कि व्यवहार के नवीन प्रारूपों तथा विचार के नवीन स्वरूपों का बालक पर आरोपण करना।

व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक क्षेत्र में अनंत समस्याएँ होती हैं। मनोवैज्ञानिक भय से मुक्ति के लिए शिक्षा द्वारा मनोवैज्ञानिक क्रान्ति उत्पन्न करना आवश्यक है अर्थात् भयमुक्त, बुद्धिमान, संवेदनशील, स्वयं के प्रति पूर्णतः जागरूक, शांत, सहनशील, उत्सुक, अनुबंधन और आसक्ति से मुक्त बालक का ही सुसमन्वित व्यक्ति के रूप में विकास हो सकता है। ऐसे व्यक्ति का मन असाधारण रूप से जीवन्त होगा तथा वह दूसरों में भी ऐसे ही रूपांतरण को प्रोत्साहित करेगा।

### 3. स्पष्ट निरीक्षण की क्षमता विकसित करना

कृष्णमूर्ति के मत में, अधिगम विशुद्ध निरीक्षण है। शिक्षा व्यवहार में परिमार्जन के स्थान पर सुनने



और देखने की कला है ताकि बालक बाह्य जगत् और इच्छाओं और विचारों के आंतरिक जगत् को समझ सके। अतः बालक में स्वयं के बाहर और स्वयं के अन्दर घटित होने वाली घटनाओं के सूक्ष्म निरीक्षण की योग्यता विकसित करना शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य होना चाहिए। इसमें संवेदी अनुभव और मन के अनुभव दोनों की ही भूमिका होती है। अवलोकन और श्रवण निरीक्षण के उपकरण हैं, जो पुस्तकीय ज्ञान से कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। मन का पूर्ण विकास वस्तुनिष्ठ, निर्वैयक्तिक तथा बिना किसी विचार और अनुबंधन के आरोपण के स्पष्ट प्रत्यक्षीकरण द्वारा ही संभव है।

व्यक्ति में वस्तु को उसकी यथास्थिति में समझकर समस्याओं को सुलझाने की तत्परता होनी चाहिए। इसके लिए घटनाओं का स्वयं एवं अन्य सभी के संदर्भ में बिना अवरोध और पूर्वाग्रह के निरीक्षण करना आवश्यक है। तभी स्वयं तथा परिस्थिति की अधिक गहरी समझ प्राप्त होगी। उसे जीवन के सुख और दुःख, क्षुद्रता और व्यापकता सबको समझने की आवश्यकता है।

#### 4. स्थायी जीवन-मूल्यों का अन्वेषण

शिक्षा को स्थायी और प्रासंगिक जीवन-मूल्यों की खोज में हमारी सहायता करनी चाहिए। ये मूल्य पूर्वाग्रह मुक्त अन्वेषण तथा आत्म अवधान से आते हैं। बालक को क्या होना चाहिए, इस आदर्श के आरोपण के बिना बालक द्वारा अध्ययन ही उचित शिक्षा है।

मानव समाज में व्याप्त भेदभाव को समाप्त कर समानता स्थापित करना एक महत्वपूर्ण मूल्य

है। शिक्षा का उद्देश्य यह स्पष्ट करना भी है कि यद्यपि व्यक्तिगत भिन्नता एक सामान्य सार्वभौमिक घटना है, तथापि इसके परिणामस्वरूप मानव-मानव के बीच असमानता नहीं उत्पन्न हो जाती। मनुष्यों के बीच श्रेष्ठता एवं हीनता के भाव को समाप्त कर समन्वित एवं विवेकपूर्ण मनुष्य का निर्माण शिक्षा का ही कार्य है।

#### 5. बौद्धिक विकास

जीवन में क्रमबद्धता बुद्धि से आती है और बुद्धि स्वतंत्रता का उत्पाद है। बुद्धि निरीक्षण तथा आत्मज्ञान की प्रक्रिया से उत्पन्न होती है। व्यक्ति में आंतरिक तथा बाह्य विश्व के प्रति एक प्रबुद्ध और आलोचनात्मक जागरुकता वांछनीय है। तीक्ष्ण और पूर्वाग्रह मुक्त मस्तिष्क के चिन्तन द्वारा ही आलोचनात्मक प्रतिभा का विकास संभव है। किसी बात को स्पष्टतः समझे बिना स्वीकार कर लेना अनुचित है।

प्रत्येक अनुभव, वार्ता तथा पुस्तक में से गूढ़ प्रश्न ढूँढ़ने की योग्यता का विकास अपेक्षित है, क्योंकि ऐसी क्षमता से सम्पन्न व्यक्ति ही समाज के स्वरूप में सकारात्मक बदलाव ला सकते हैं। साथ ही, बौद्धिक प्रतिभा तथा संवेदनशीलता के बीच सामंजस्यपूर्ण सन्तुलन होना चाहिए।

#### 6. अवकाश का उपयोग अधिगम में करना

कृष्णमूर्ति के अनुसार, अवकाश का तात्पर्य पूर्वमान्यताओं, विचारों, ज्ञान तथा इच्छाओं से मुक्त अनासक्त मन से है। ऐसे मन का ही वास्तविक उपयोग सीखने में हो सकता है। बाह्य सत्ता तथा प्रभाव से मुक्त होने के साथ ही हम स्वयं के

विश्वासों, मतों एवं आदर्शों से कैसे बँधे हैं, इसकी समझ भी जरूरी है।

कृष्णमूर्ति ने विद्यालय को अवकाश का केंद्र माना, जहाँ बालक में व्यक्तिगत स्वायत्तता का प्रस्फुटन होता है।

### 7. सौन्दर्य-बोध का विकास करना

जीने का मतलब संबंधित होना है। यदि सौन्दर्य के प्रति उपयुक्त भावना तथा प्रकृति, संगीत एवं कला के प्रति व्यक्ति में अनुक्रिया का अभाव हुआ तो वह किसी अन्य व्यक्ति, विचार या वस्तु के साथ संबंध नहीं बना सकता। अतः मनुष्य में उच्चस्तरीय सौन्दर्य-बोध का विकास करना भी शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।

### 8. पूर्ण एवं उपयोगी मनुष्य का विकास करना

शिक्षा द्वारा ज्ञान और तकनीकी कुशलता के साथ ही बच्चों में मानवता के विकास का भी प्रयास करना चाहिए। अच्छे मनुष्यों के बिना वैसा समाज प्राप्त नहीं हो सकता, जो हिंसा, कुप्रथाओं और सभी प्रकार से भेदभावों से मुक्त हो।

संक्षेप में, वैश्विक दृष्टिकोण एवं अन्वेषण की ललक का विकास तथा मनुष्य मात्र एवं वातावरण की परवाह का विकास शिक्षा के उद्देश्य होने चाहिए।

**पाठ्यक्रम**—कृष्णमूर्ति के अनुसार, आधुनिक विश्व में कुशल निर्वाह के लिए तकनीकी कुशलता, साथ ही पूर्ण मानव के विकास के लिए उपयुक्त वातावरण प्रदान करना शिक्षा का कार्य है। शिक्षा के इन कार्यों तथा उद्देश्यों को पूरा करने हेतु पाठ्य क्रम में बुद्धि और संवेदनशीलता का विकास करने वाली गतिविधियाँ होनी चाहिए।

पाठ्यक्रम ऐसा हो, जो बालक को जीविकोपार्जन के योग्य बनाए। अतीत की अपेक्षा बालक को वर्तमान से जोड़ने वाले विषय पाठ्यक्रम में अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। कृष्णमूर्ति विज्ञान और धर्म दोनों को पाठ्यक्रम में स्थान देते हैं। उनकी दृष्टि में वातावरण और ब्रह्माण्ड को समझने और सराहने हेतु प्राकृतिक विज्ञान, भौतिक विज्ञान, भूगोल और साहित्य जैसे विषयों का भी महत्त्व है।

**शिक्षण विधि**—कृष्णमूर्ति ने शिक्षण हेतु किसी नई विधि या प्रविधि का प्रस्ताव नहीं किया। हालाँकि उन विभिन्न विधियों के उपयुक्त उपयोग पर बल दिया जो विद्यार्थी के अधिगम को अधिकतम बनाने में सहायक होते हैं। उनके अनुसार, विभिन्न प्रकार के प्रश्न उठाना और उनका अपना उत्तर खोजना शिक्षित करने की ही प्रक्रिया है। उन्होंने स्वयं निरीक्षण, विचार-विमर्श या संवाद विधि का प्रयोग किया तथा प्रकृति के सान्निध्य में शिक्षण-अधिगम की प्रक्रिया पर बल दिया। उनके संवादों में 'सुकरात विधि' का विस्तृत प्रयोग हुआ है।

परम्परागत विधियाँ निश्चित विचार-प्रतिरूपों पर आश्रित होने के कारण मानसिक स्वतंत्रता समाप्त कर देती हैं। बालकों में आलोचनात्मक चिन्तन तभी विकसित हो सकता है, जब उन्हें भूल करने से रोका न जाय तथा दण्ड का भय न दिया जाय। ऐसा भय पहल, अन्वेषण और बुद्धि-प्रयोग की क्षमता को कुन्द करता है। अतः उपयुक्त विधि के प्रयोग से बच्चों में लचीलापन तथा विवेक का विकास होगा और वे मत, विश्वास और परम्परा की दासता से मुक्त होंगे।

**विद्यालय**—शिक्षा को आनन्दप्रद होना चाहिए। कृष्णमूर्ति का मानना था कि विद्यालय परिसर में निवास की सुविधा से विद्यार्थियों को भय और तुलना से मुक्त सहज वातावरण में मनोवैज्ञानिक रूपांतरण और स्वयं सीखने के अवसर प्राप्त होते हैं। ऐसे परिवेश में उनमें वांछित मूल्यों का भी संचरण हो सकेगा, जो अंततः समाज को ही लाभान्वित करेगा।

प्रकृति की गोद में शिक्षा अत्यधिक प्रभावकारी होती है। कृष्णमूर्ति का मानना था कि प्रकृति के प्रांगण में ज्ञानेन्द्रियाँ मन को निर्मल करती हैं। उनका विद्यार्थियों के लिए कहना था—

*“तारों, स्वच्छ आकाश, पक्षियों तथा पत्तों के आकार को देखो। छाया को देखो। आकाश में विचरते हुए पक्षी को देखो। वृक्ष के नीचे मौन बैठकर स्वयं के साथ तुम अपने मन की गतिविधियों को समझना आरम्भ करते हो और यह कक्षा में जाने के बराबर ही महत्त्वपूर्ण है।”*

भय से मुक्ति अनुशासन से नहीं अपितु शांत मन द्वारा संभव है। शांत मन ही स्वयं की समझ प्रदान करता है, जो स्वतंत्रता और शांति का आरम्भ है। विद्यालय वह स्थान होना चाहिए, जहाँ विद्यार्थी विचार-विमर्श एवं मौन द्वारा स्वयं को एवं अपनी वास्तविक रुचि को पहचान सकें। वहाँ तुलना और प्रतिस्पर्धा के स्थान पर सहयोग और प्रेम को बढ़ावा मिलना चाहिए।

कृष्णमूर्ति के शिक्षा-दर्शन पर आधारित विद्यालयों में बालकों को परस्पर अंतःक्रिया, निरीक्षण और चिन्तन तथा श्रेष्ठता की भावना से मुक्त शिक्षकों से अंतःक्रिया की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। शिक्षक

और शिक्षार्थी अपने आंतरिक और बाह्य संसार का साथ मिलकर अन्वेषण करते हैं। इस प्रक्रिया में स्वतंत्रता और समानता के भाव मौजूद रहते हैं अर्थात् भावनाओं की स्वतंत्र अभिव्यक्ति होती है। **कक्षा का आकार**—उपयुक्त शिक्षा बड़े समूह में नहीं दी जा सकती। प्रत्येक बालक के अध्ययन के लिए धैर्य, सावधानी तथा सम्यक् बुद्धि की आवश्यकता होती है। अतः कक्षा-समूह का आकार छोटा होना चाहिए।

**शिक्षक**—उचित शिक्षा शिक्षक से ही आरम्भ होती है। सभी प्रकार के पूर्वाग्रह और सत्ता-भाव से मुक्त होकर शिक्षक को सर्वप्रथम प्रत्येक बालक का पूर्ण ध्यान से निरीक्षण करना चाहिए तथा उनकी सहायता करनी चाहिए। जिस क्षण व्यक्ति पद का मद छोड़ देता है, वह साझा जीवन जीने लगता है और तभी सहयोग और प्रेम उत्पन्न होते हैं। विद्यार्थी के साथ शिक्षक को ऐसी ही साझेदारी बनानी चाहिए। बालक अपनी पूर्ण अपूर्वता के साथ शिक्षक के ध्यान की विषयवस्तु होता है।

भय मन और हृदय को कमजोर करता है। अतः यह शिक्षक का दायित्व है कि वह बालक को परिवार, समाज या अध्यापकों के सभी प्रकार के प्रभुत्व के भय से मुक्त होने में सहायता करे। स्वयं का ज्ञान इस प्रकार की मुक्ति की शुरुआत है, जो अंततः शांति को जन्म देता है। यहाँ 'स्वयं' का आशय अन्य लोगों, वस्तुओं, विचारों और प्रकृति के साथ संबंधित 'स्व' से है। शिक्षक को स्वयं को शिक्षित करना चाहिए। उसे चिन्तन द्वारा अपनी अभिवृत्तियों तथा अपने जीवन के भय को समझना चाहिए। भ्रमित और संकीर्ण दृष्टिकोण वाला शिक्षक अपने विद्यार्थियों को भी ऐसा ही बना सकता है।

इस प्रकार, कृष्णमूर्ति ने अपने शिक्षा-दर्शन में मनोवैज्ञानिक रूप से मुक्त और बुद्धिमान तथा वास्तविक अर्थों में शिक्षक को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया है। अध्यापक सम्पूर्ण मानव जाति के लिए उत्तरदायी होता है। शिक्षकों में अपेक्षित समर्पण भाव आ सके, इसके लिए उनका वातावरण ऐसा होना चाहिए, जहाँ वह पारिवारिक या व्यक्तिगत सुरक्षा जैसी चिन्ताओं से मुक्त रह सकें।

**शिक्षक की विशिष्ट योग्यताएँ**—चूँकि शिक्षक का कार्य सूचना देने के अतिरिक्त प्रज्ञा और सत्य के लिए मार्गदर्शन करना भी है। अतः सच्चा शिक्षक अभ्यंतर से सतर्क, समृद्ध और स्फूर्तिवान होता है। वह महत्वाकांक्षी नहीं होता। वह निरंतर स्वयं को उचित प्रकार से शिक्षित करता रहता है, क्योंकि जो कुछ वह स्वयं होता है, वही वह दूसरों को देता है। रुचि न होने पर यह बेहतर है कि व्यक्ति अध्यापन छोड़ दे।

**शिक्षक-सहयोगी संबंध**—प्रधानाध्यापक और अध्यापकों के बीच समानता का वातावरण वांछित है, न कि भय का। आपसी संघर्ष और शिकायत से बचना चाहिए।

**शिक्षक-अभिभावक संबंध** — कृष्णमूर्ति मानते थे कि अभिभावकत्व का भी प्रशिक्षण अपेक्षित है, जिसमें शिक्षकों की भी सहभागिता होनी चाहिए। आज बालकों के व्यक्तित्व की समग्रता में जो कमी शेष रह जाती है, उसमें शिक्षा प्रणाली के साथ ही अभिभावकों का भी दोष है। अभिभावक बच्चों को अपनी इच्छानुरूप ढालने के दबाव में रखते हैं, जिससे व्यक्तित्व और समाज दोनों का विकास बाधित होता है।

शिक्षा सिर्फ आर्थिक सुरक्षा और अच्छे विवाह के लिए नहीं होती, जैसा कि आधुनिक अभिभावक चाहते हैं।

अध्यापक का दायित्व शैक्षिक विषयों और सांसारिक ज्ञान प्रदान करने के अतिरिक्त सामाजिक विकास का भी होता है। अतः उसे अभिभावकों के निरंतर सम्पर्क में रहकर उनका विश्वास प्राप्त करना चाहिए ताकि अभिभावक अपने बच्चों की उपयुक्त शिक्षा हेतु सक्रिय हो सकें।

#### **कृष्णमूर्ति के शिक्षा-दर्शन की प्रासंगिकता**

- (1) अध्यापक-छात्र संबंध में सुधार वर्तमान शिक्षा-प्रणाली हेतु अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। ऐसा संबंध शिक्षण और अधिगम के लिए अनुकूल वातावरण के विकास में सहायक होगा।
- (2) कृष्णमूर्ति ने शिक्षा में अभिभावकों की प्रत्यक्ष सहभागिता की बात की। इससे अभिभावक शिक्षित तो होंगे ही, वे अपने दायित्वों को भी बेहतर ढंग से समझ सकेंगे।
- (3) कृष्णमूर्ति शिक्षा द्वारा मनोवैज्ञानिक क्रान्ति लाने की बात करते हैं, जिसकी आज सर्वाधिक आवश्यकता है।
- (4) कृष्णमूर्ति यह विश्वास करते हैं कि सही शिक्षा द्वारा मानव-समाज में समानता स्थापित की जा सकती है। इस समानता का दूरगामी प्रभाव निश्चय ही अनेक सामाजिक समस्याओं को कम करने में सहायक होगा। मूल्यों के क्षरण के इस युग में शिक्षा प्रणाली द्वारा सामाजिक रूप से महत्त्वपूर्ण ऐसे ही अन्य मूल्यों का संचरण इस संकट को कम करने में सक्षम सिद्ध होगा।

- (5) अन्य शिक्षा-दार्शनिकों की भाँति कृष्णमूर्ति ने भी सुसमन्वित व्यक्तित्व के विकास को शिक्षा का महत्त्वपूर्ण उद्देश्य माना है जिसकी प्रासंगिकता स्वयंसिद्ध है।
- (6) निरीक्षण की योग्यता का उपयुक्त विकास भी बालकों को अच्छाई में पुष्पित होने का अवसर देगा। इससे उनके जीवन का समग्र विकास हो सकेगा।
- (7) आज अधिकांशतः विद्यालयों में बड़े समूह में शिक्षण किया जाता है। इससे व्यक्तिगत भिन्नताएँ प्रायः उपेक्षित रहती हैं। इस शिक्षा दर्शन में छोटे समूह में शिक्षण का प्रस्ताव रखा गया है, जहाँ शिक्षक अपने हर विद्यार्थी पर ध्यान दे सकें।
- (8) विभिन्न शैक्षिक मुद्दों पर नवीन दृष्टिकोण का उन्मेष करने की दृष्टि से भी यह शिक्षा-दर्शन प्रासंगिक है।
- निष्कर्ष**
- आधुनिक तीव्र सामाजिक परिवर्तनों के दौर में मूल्य-चयन का संकट है, जिसने शैक्षिक समस्याओं को भी जन्म दिया है। उचित शिक्षा का उत्स उपयुक्त दार्शनिक दृष्टिकोण में निहित होता है। व्यक्ति के विभिन्न पक्षों में समन्वय लानेवाली शिक्षा एक रचनात्मक प्रक्रिया है। वर्तमान शिक्षा प्रणाली व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं का एक सीमा तक विकास तो करती है, किन्तु एक समग्र व्यक्तित्व के विकास में असफल है। इस दृष्टि से कृष्णमूर्ति का शिक्षा-दर्शन हम सबके ध्यानाकर्षण की अपेक्षा रखता है।
- इस दर्शन की सर्वाधिक समसामयिक प्रासंगिकता इस बात में निहित है कि यह व्यक्तिगत स्तर पर परिवर्तन लाने की बात करता है और व्यक्ति ही मानव जाति का प्रतिनिधि होता है। यह शिक्षा की प्रक्रिया द्वारा ही व्यक्ति का सकारात्मक रूपांतरण संभव मानता है और तभी वर्तमान वैश्विक परिवेश सुखमय और शांतिपूर्ण हो सकता है।

### सन्दर्भ

- कृष्णा, पी. 2000. एजुकेशन, साइंस एण्ड स्पिरिचुएलिटी. द थियोसोफिकल पब्लिशिंग हाउस. चेन्नई.
- कृष्णमूर्ति, जे. 1984. शिक्षा संवाद : छात्रों और शिक्षकों से. कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया. वाराणसी.
- \_\_\_\_\_ 1979. शिक्षा एवं जीवन का महत्त्व, वाराणसी, कृष्णमूर्ति फाउण्डेशन इण्डिया.
- चारी, ए. 1980. जे. कृष्णमूर्ति, फ्रीडम एण्ड एजुकेशन, जर्नल ऑफ इंडियन एजुकेशन, जुलाई, 1980.
- मुखर्जी, जे. 2006. रेलेवेन्स ऑफ जे. कृष्णमूर्ति इन एजुकेशन, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, 25(1).
- शिवपुरी, वी. 2006. जे. कृष्णमूर्ति ऑन एजुकेशन, भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, 25 (1).
- हर्जबर्गर, आर. 2004. कृष्णमूर्ति ऑन एजुकेशन, राजपूत, जे. एस. (सं.), इन्साइक्लोपीडिया ऑफ इंडियन एजुकेशन, वाल्यूम-1, नई दिल्ली : एन. सी. ई. आर. टी.

## वर्तमान शैक्षिक समस्याओं के समाधान हेतु डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शिक्षा चिंतन की उपादेयता

रश्मि श्रीवास्तव\*

आज का भारतीय समाज शिक्षा के क्षेत्र में जिन समस्याओं से जूझ रहा है डॉ. राधाकृष्णन ने उसका अनुमान वर्षों पूर्व लगाया और अपनी दार्शनिक विवेचनाओं द्वारा तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त कमियों को उजागर करने के साथ-साथ भविष्य में हमें जिन कठिनाइयों से जूझना होगा, उसके समाधान के व्यवहारिक उपाय भी प्रस्तुत करते रहे। समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया औद्योगिकीकरण के विस्तार तथा विज्ञान व तकनीकी ज्ञान के विश्लेषण के बीच मानव जीवन का अंतर्भ्रम जिस नीरसता में डूब जाएगा, उसे वह भलीभांति जानते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी दार्शनिक विवेचनाओं में आदर्श चरित्र, नैतिकता, मानवीयता तथा आध्यात्मिकता को सर्वोपरि रखा। हमें अवश्य ही उनके शिक्षा चिंतन से दिशा-निर्देश प्राप्त करने चाहिए। उनके विचार सर्वकालिक एवं व्यवहारिक हैं।

शिक्षा के महत्व से आज सम्पूर्ण विश्व परिचित है। देश के जन-जन में शिक्षा का प्रचार-प्रसार है। इसके लिए विश्व का प्रत्येक राष्ट्र ही नहीं, भारत देश भी प्रयत्नशील है, उसने इस दिशा में बड़े व्यापक प्रयास कर सकारात्मक परिणाम हासिल किए हैं। शिक्षा की सुविधा दूर-दराज के क्षेत्रों तक भी पहुँच सकी है। लेकिन इस तेज गति से की गई

भागम-भाग में बहुत-सी चीजें हमारे हाथों से फिसली भी हैं और हम लम्बी दूरी तय करके भी अपने को ठगा-सा महसूस कर रहे हैं। यह हास है हमारे बालक-बालिकाओं व अध्यापक- अध्यापिकाओं के नैतिक मूल्यों का। शिक्षा के प्रचार प्रसार के बीच हमारी व्यवस्थाओं ने तमाम ऐसे समझौते किए हैं, जिनके परिणाम सुखद नहीं हैं।

\*विभागाध्यक्ष, हीरालाल यादव बालिका डिग्री कॉलेज, सरोजनी नगर, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।

आम समस्या मुख्यतः दो स्तरों पर है, प्रथम शिक्षक वर्ग तथा द्वितीय विद्यार्थी वर्ग के लिए। अपनी आर्थिक सीमाओं व अन्य प्रशासकीय नीतिगत कारणों से भारत सरकार ने शिक्षा का एक बड़ा हिस्सा निजी क्षेत्रों को दिया है। इससे देश में शिक्षा का प्रसार तो तीव्र गति से हुआ किंतु यह प्रसार एक व्यवसाय के फलने-फूलने जैसा है। जिसके अनेक नकारात्मक प्रभाव शिक्षा के क्षेत्र में उभर कर सामने आए हैं। अधिकतम लाभ की आशा में विद्यालयी प्रबंधतंत्र ने योग्य के बजाए कम से कम वेतन पर शिक्षण के लिए तत्पर वर्ग को प्राथमिकता दी है, परिणाम हमारे सामने हैं। रोजगार के अन्य क्षेत्रों में विफल एक बड़े वर्ग ने रोजी-रोटी की मजबूरी में न्यूनतम वेतन में शिक्षण व्यवसाय का चयन किया है। बेमन से अपनाए गए इस व्यवसाय के प्रति वे उचित न्याय कर पाते हों ऐसा कम ही हुआ है और इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ा है विद्यार्थी वर्ग पर। सरकारी संस्थानों में जहाँ शिक्षक के लिए परिस्थितियाँ बेहतर हैं, वहाँ शिक्षण व्यवसाय से जुड़े आकर्षक आर्थिक लाभ ने शिक्षक चयन प्रक्रिया को दूषित कर दिया है। परिणाम सामने है, वहाँ भी योग्यता के बजाए जोड़-तोड़ से एक व्यक्ति शिक्षण के व्यवसाय से जुड़ पाता है। आगे चलकर यह जोड़-तोड़ वह विद्यालयी परिसर में भी बिठाने में गुरेज नहीं करता और अनेक नकारात्मक प्रभाव स्वयं शिक्षक के माध्यम से विद्यालयों में उत्पन्न हो जाते हैं।

कहने का तात्पर्य यह है कि एक शिक्षक जो कि शिक्षा व्यवस्था का प्रमुख आधार है, किन्हीं कारणों से यदि उसका विचार, उसके आचरण व नैतिक मूल्यों में गिरावट आई तो पूरी की पूरी

व्यवस्था बिगड़ जाएगी और इसका सीधा नकारात्मक प्रभाव विद्यार्थियों पर पड़ेगा।

भारत की वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में समस्याएँ यहीं तक सीमित नहीं हैं। समस्याएँ विद्यालयी पाठ्यक्रम तथा शिक्षण पद्धति व शिक्षा के मूलभूत उद्देश्यों में भी निहित हैं। अधिकतम जानकारी विद्यार्थी के मस्तिष्क तक किसी तरह पहुँचा दी जाए तथा विद्यार्थी उन्हें ठीक प्रकार से याद कर परीक्षा में अधिकतम अंक प्राप्त कर सकें, विद्यालय की कार्य पद्धति इसी के इर्द-गिर्द सीमित होकर रह गई है। विद्यार्थी जीवन की बहुमूल्य अवधि इसी रटने-रटाने की प्रक्रिया में कब बीत जाती है, पता ही नहीं चलता और अनेक सकारात्मक पक्षों की स्वतः अनदेखी हो जाती है। विद्यार्थी उन उच्च नैतिक आदर्शों को अपने जीवन में समाहित कर ही नहीं पाता जो उन्हें व्यक्तिगत हितों से ऊपर उठा सामाजिक हितों से जोड़ सकें, जो उन्हें भौतिक उपलब्धता के अतिरिक्त जीवन के अन्य पहलुओं की उपलब्धता के प्रति संवेदनशील कर सकें।

निःसन्देह आगे चलकर इन सब का नकारात्मक प्रभाव देश की सामाजिक, आर्थिक तथा राजनीतिक व्यवस्था पर देखने को मिलता है। इन स्थितियों में आवश्यक प्रतीत होता है कि हम अपनी वर्तमान शिक्षा व्यवस्था पर एक बार पुनः विचार करें और देश के महान शिक्षाविदों के सुझावों का दिशा निर्देश प्राप्त करें। इस दिशा में डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन के शिक्षा चिंतन की महत्ता की अनदेखी नहीं की जा सकती।

डॉ. सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने लिखा था विश्व ने अनेक ऐसी सभ्यताओं को देखा है, जिन पर

युगों की धूल जम चुकी है। हमने मान लिया था कि कैसे भी विकास और परिवर्तन क्यों न हों, पाश्चात्य सभ्यता का ठोस ढाँचा स्वयं में टिकाऊ तथा स्थाई है, किंतु अब हम देख रहे हैं कि वह कितने भयावह रूप में अरक्षित है। ..... अनैतिक होना निरापद नहीं है। बुरी व्यवस्थायें अपने लोभ और अपने अहंकार के कारण अपना विनाश कर लेती हैं। जो विजेता और शोषक नैतिक नियम की चट्टान से टकराते हैं वे अंततोगत्वा अपने विनाश के खड्डे में जा गिरते हैं। अभी जब तक समय है- वैसे अब अधिक समय नहीं रह गया है- हमें चाहिए कि मनुष्य को, जो असहाय की भाँति अपने सर्वनाश की ओर दौड़ा जा रहा है, रोकने का यत्न करें।<sup>1</sup>

हम देखते हैं कि राधाकृष्णन नैतिकता को मानवीय गुणों में बड़ा ऊँचा स्थान देते हैं। धार्मिक निष्ठा तथा मानवतावादी विचारों से ओतप्रोत उनका शिक्षा दर्शन हमें तमाम ऐसे अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर दे सकने में सक्षम है। जिसकी खोज हमारे आज के शिक्षाविद् कर रहे हैं। डॉ. राधाकृष्णन के शिक्षा दर्शन का संक्षिप्त विवेचन निम्नवत् है। हमें अवश्य ही उनके चिंतन में निहित सकारात्मक पक्षों को अपनी शिक्षा व्यवस्था में स्थान देना चाहिए।

### शिक्षा का अर्थ

डॉ. राधाकृष्णन शिक्षा को व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक एवं आत्मिक विकास की

प्रक्रिया मानते हैं तथा शिक्षा को ऐसा साधन मानते हैं जो व्यक्ति व समाज को प्रगति देता है एवं विकास को गति प्रदान करता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात 4 नवंबर सन् 1948 में डॉ. राधाकृष्णन की अध्यक्षता में गठित विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग, जिसका गठन उन्हीं के नाम पर किया गया था, उस आयोग ने शिक्षा के अर्थ एवं उद्देश्य के विषय में कहा था- शिक्षा केवल मस्तिष्क का प्रशिक्षण नहीं, अपितु आत्मा का प्रशिक्षण भी है, इसका उद्देश्य ज्ञान एवं विवेक दोनों प्रदान करना है।<sup>2</sup> आयोग द्वारा प्रस्तुत विचार डॉ. राधाकृष्णन के विचारों से प्रभावित थे।

डॉ. राधाकृष्णन का मानना था कि ज्ञान व्यक्ति के अंदर निहित है, वह स्वभावतः आत्मबोध करने में समर्थ है किंतु बाह्य विषयों की आसक्ति से व्यक्ति का आत्मतत्त्व कलुषित रहता है। यही कारण है कि मनुष्य सर्वदा समीपस्थ होने पर भी उस आत्मतत्त्व का ढके हुए दर्पण के समान दर्शन नहीं कर पाता है। शिक्षा द्वारा जब व्यक्ति के इंद्रिय एवं विषयजन्य रोगादि दोषों के दूर हो जाने पर दर्पण या जल आदि के समान चित्त प्रसन्न व शांत हो जाता है, तब अज्ञान से आवृत्त तथा उसमें विद्यमान यथार्थ तत्व का अनावरण हो जाता है, यही उसकी शिक्षा है। डॉ. राधाकृष्णन ने शिक्षा का महत्वपूर्ण आधार आध्यात्मवाद को माना और बताया कि शिक्षा शाश्वत जीवन की प्राप्ति का माध्यम है। शिक्षा के द्वारा नैतिक विकास संभव है तथा शिक्षा ही आत्मविकास

<sup>1</sup>राधाकृष्णन एस. - एजुकेशन, पॉलिटिक्स एण्ड वार, पृ. 35

<sup>2</sup>विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) - प्रथम खण्ड, भारत सरकार, दिल्ली, पृ. 81



करने का एक सबल साधन है। शिक्षा के द्वारा ही समाज में सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन लाए जा सकते हैं। उन्होंने इस बात पर सदैव जोर दिया कि हमें अपनी नैतिक एवं आध्यात्मिक शक्ति बढ़ानी है, क्योंकि भौतिक तृष्णा पर विजय पाने के लिए यही एक अमोघ शक्ति है।

हमारी आज की समस्या भौतिक तृष्णा की ही तो है। हम अपने विद्यार्थियों को भौतिकता तथा आर्थिक लाभ-हानि की संकीर्ण मानसिकता से तभी निकाल सकते हैं, जब उनमें नैतिकता तथा आध्यात्मिकता की शक्ति का विकास कर सके। डॉ. राधाकृष्णन द्वारा शिक्षा के अर्थ संबंधी विवेचना इन्हीं तथ्यों पर जोर देती है। हमें उनके निर्देश का आश्रय लेते हुए अवश्य ऐसे व्यवस्थापन पर जोर देना चाहिए, जिससे उनका आचरण, विचार तथा व्यवहार सुसंस्कृत हो सकें।

### शिक्षा के उद्देश्य

डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति की विशिष्टता का विकास करना है और एक वर्ग रहित समाज का निर्माण करना है। व्यक्ति की विशिष्टता के विकास के क्रम में उन्होंने स्वीकार किया कि शिक्षा ज्ञान प्राप्ति का माध्यम बने। ज्ञान के बिना आध्यात्मिकता का विकास संभव नहीं है, और ना ही विवेक की प्राप्ति। उनका मानना था कि इसी ज्ञान के लिए विभिन्न विज्ञानों, कला, साहित्य, दर्शन आदि का अध्ययन किया जाता है। वह शिक्षा के माध्यम से एक बालक में जिज्ञासा पैदा करना भी चाहते थे, उन्होंने

कहा था- “हमें उनके अंदर ज्ञान के संवर्धन के लिए उत्साह पैदा करना चाहिए।”<sup>3</sup>

वह एक बालक के विकास में दैहिक तत्वों की अपेक्षा आध्यात्मिक तत्वों को अधिक महत्त्व देते थे। उनका मानना था कि शिक्षा द्वारा इन आध्यात्मिक तत्वों का उचित प्रकाशन हो, जिससे कि वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान सकें, आत्मानुभूति कर सकें व अपने अंदर निहित विज्ञान को जान सकें।

डॉ. राधाकृष्णन ने ज्ञान के तीन स्तर बताए -

1. प्रत्यक्षात्मक ज्ञान (Perceptual Knowledge),
2. प्रत्ययात्मक ज्ञान (Conceptual Knowledge),
3. अंतः प्रज्ञात्मक ज्ञान (Intuitive Knowledge)

इन तीनों प्रकार के ज्ञान प्राप्ति के साधन क्रमशः इंद्रिय बुद्धि एवं आत्मा हैं। उनका मानना था कि आधुनिक शिक्षा प्रायः एक व्यक्ति को ज्यादा से ज्यादा प्रत्ययात्मक स्तर का ज्ञान दे पाती है। किंतु शिक्षा का वास्तविक लक्ष्य तो यह है कि वह व्यक्ति को अंतः प्रज्ञात्मक ज्ञान के स्तर तक पहुँचाए। इसी से वास्तविक शांति मिलेगी और व्यक्ति पूर्णता को प्राप्त हो सकेगा।

यहाँ यह ध्यान देना होगा कि वह शिक्षा के व्यावहारिक उद्देश्यों की अनदेखी भी नहीं करते, वह शिक्षा के द्वारा बालक-बालिकाओं को जीने की कला का प्रशिक्षण भी देना चाहते हैं। उन्होंने कहा भी था-

“हमें अपने युवकों को व्यक्तिगत और स्वस्थ सामाजिक जीवन का प्रशिक्षण देना चाहिए।... ..उन्हें अच्छाई और सम्मान के उन अलिखित

<sup>3</sup>राधाकृष्णन सर्वपल्ली - अकेजनल स्पीचेज़ एण्ड राइटिंग्स, थर्ड सीरीज़, पृ. 85

*नियमों का सम्भवतः निरीक्षण करना चाहिए, जिनको सदैव अच्छे लोगों ने महसूस किया है। यद्यपि उन्हें किसी विधान द्वारा लागू नहीं किया जाता।*<sup>14</sup>

उनका मानना था कि देश के नागरिकों के चरित्र के द्वारा एक राष्ट्र के भाग्य का निर्माण होता है, यदि हम एक महान राष्ट्र का निर्माण चाहते हैं तो हमें युवक एवं युवतियों को इस प्रकार प्रशिक्षित करना होगा कि उनमें चरित्रबल हो। चरित्रबल के विकास में विभिन्न उपायों के साथ उन्होंने एक बालक में आध्यात्मिकता के विकास को सर्वोपरि माना।

डॉ. राधाकृष्णन ने यह भी स्वीकार किया कि शिक्षा को एक माध्यम अवश्य होना चाहिए, जिससे व्यक्ति में अपनी बात कहने, अपने विश्वासों को व्यक्त करने, अपनी आस्थाओं के अनुसार जीने की क्षमता विकसित हो सकें। भाषा का ज्ञान इस दिशा में प्रथम प्रयास होता है। उनकी अध्यक्षता में नियुक्त विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग की रिपोर्ट में कहा गया कि विश्वविद्यालयों को ऐसे व्यक्तियों का निर्माण करना चाहिए जो कि राजनैतिक, व्यावसायिक, औद्योगिक आदि क्षेत्रों का नेतृत्व कर सकें। डॉ. राधाकृष्णन इस बात के भी समर्थक थे कि शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य लोकतंत्र का संरक्षण एवं पोषण भी है। वह एक देशभक्त थे तथा देश के बालक-बालिकाओं में देश-प्रेम की भावना के विकास हेतु शिक्षा को एक उपयुक्त माध्यम मानते थे। वेदान्त की अवधारणा की स्वीकृति ने उन्हें संकीर्ण राष्ट्रीयता

से ऊपर उठा विश्व बंधुत्व का समर्थक बना दिया था। उनका मानना था कि भारतीय संस्कृति विश्व बंधुत्व की भावना के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। अतः शिक्षा द्वारा इस संस्कृति का संरक्षण एवं पोषण कर विश्व बंधुत्व की भावना का भी विकास किया जाना चाहिए।

शिक्षा के उद्देश्य संबंधी उपरोक्त विचार शिक्षा के विस्तृत उद्देश्यों की ओर संकेत करते हैं और शिक्षार्थी को रटने-रटाने की प्रक्रिया के बीच जीवन के महत्वपूर्ण वर्षों के बीत जाने की जटिलता से बचा रख पाते हैं। एक बालक में आत्माभिव्यक्ति तथा अंतर्दीप्ति के विकास की महत्ता को रेखांकित कर वह शिक्षा के उद्देश्यों को मानव जीवन के उद्देश्यों के साथ जोड़ सकने में सफल रहे। डॉ. राधाकृष्णन ने हमें बताया कि वास्तविक शिक्षा वह है जो मस्तिष्क को उन्मुक्त करें, चरित्र का विकास करें, मुक्ति दे और विश्वबंधुत्व की ओर ले जाए।

### पाठ्यक्रम

एक शिक्षक होने के नाते डॉ. राधाकृष्णन ने भारत की शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त कमियों को बड़े करीब से देखा था। वह जीवन के उद्देश्यों को शिक्षा के साथ जोड़ते हुए ऐसे पाठ्यक्रम की कल्पना करते हैं जो बालक का सर्वांगीण विकास कर सके। उसे नैतिक, आदर्श चरित्र का स्वामी बना सके। विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के माध्यम से भी पाठ्यक्रम के संबंध में उनके विचारों का विस्तृत प्रारूप हमें प्राप्त हो सका है।

<sup>14</sup>राधाकृष्णन सर्वपल्ली - अकेजनल स्पीचेज एण्ड राइटिंग्स, फर्स्ट सीरीज, पृ. 91

भारत की सामाजिक, आर्थिक आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम में उन्होंने निम्नलिखित विषयों को समाहित किए जाने का समर्थन किया—

(अ) **भाषा**—राष्ट्रभाषा हिंदी, मातृभाषा एवं प्रादेशिक भाषा, संस्कृत।

(ब) **कला, विज्ञान एवं तकनीकी विषय**— इतिहास भूगोल, मानव और सामान्य विज्ञान, गणित, राजनीति, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, नीतिशास्त्र, साहित्य और दर्शन।

(स) **नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा**—डॉ. राधाकृष्णन का मानना था कि धार्मिक शिक्षा विश्वशांति, सुरक्षा एवं आत्मबोध के लिए अति आवश्यक है। अतः नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा को पाठ्यक्रम का अभिन्न अंग बनाया जाए। यहाँ वे किसी वर्ग विशेष की शिक्षा दिए जाने की बात नहीं करते बल्कि मौन प्रार्थनाओं, धार्मिक व्यक्तियों के जीवन, धार्मिक ग्रंथों से सार्वभौमिक महत्व के अंश और धर्म दर्शन की समस्याओं के अध्ययन को महत्वपूर्ण मानते हैं।

(द) **वैज्ञानिक एवं व्यावसायिक विषय**— आधुनिक युग की आवश्यकताओं तथा देश की भौतिक समृद्धि के लिए पाठ्यक्रम में वैज्ञानिक, व्यवसायिक एवं औद्योगिक विषयों को अवश्य स्थान दिया जाए।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) की रिपोर्ट में उल्लेख किया गया था, हम अपनी सूचना और अनुभव के आधार पर सोचते, निर्णय और

कार्य करते हैं। अगर ये सीमित हो जाए तो हमारा विश्व बहुत छोटा हो जाएगा। विद्यार्थी को सफल बनाना और प्रोत्साहित करना यथार्थता और सिद्धांतों का विद्वतापूर्ण उत्तम सूचना देना यह सब सामान्य शिक्षा का कार्य है, जिससे कि विद्यार्थी को प्रतिनिधि और उपयोगी तत्व मिल सकें, जिस पर विद्यार्थी अपने विचार, निर्णय और कार्य आधारित कर सकें, रुचि और महत्व के क्षेत्र में सचेत हो सकें।<sup>5</sup>

### शिक्षण विधि

डॉ. राधाकृष्णन ने मानव प्रकृति के अनुसार बालक-बालिकाओं को मुख्यतः तीन वर्गों में विभक्त किया। 1. ज्ञान प्रधान प्रकृतियुक्त, 2. भावना प्रधान प्रकृतियुक्त, 3. कार्य प्रधान प्रकृतियुक्त। उनका मानना था कि ज्ञान प्रधान प्रकृति वाले विद्यार्थियों को भारत की परंपरागत शिक्षण पद्धतियों जैसे श्रवण, मनन, निदिध्यासन के द्वारा शिक्षा दी जानी चाहिए। भावना प्रधान प्रकृति के विद्यार्थियों के लिए उन्होंने साहित्य एवं ललित कलाओं इत्यादि के माध्यम से उल्लेखित कर सिखाए जाने का समर्थन किया। इसी प्रकार कार्य प्रधान प्रकृति के विद्यार्थियों को उन्होंने क्रियाविधि द्वारा सिखाए जाने की बात कही।<sup>6</sup>

डॉ. राधाकृष्णन के इन विचारों में हमें आधुनिक मनोविज्ञान के तत्व देखने को मिलते हैं। विद्यालयों में प्रयुक्त शिक्षण विधियों में बालक के मनोवैज्ञानिक पक्ष पर अवश्य बल दिया जाना चाहिए। डॉ. राधाकृष्णन ने इस संदर्भ में भारत की परंपरागत

<sup>5</sup>विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948-49) - पूर्व संदर्भित, पृ. 75

<sup>6</sup>शुक्ला, रमा (2000) - शिक्षा के दार्शनिक आधार, आलोक प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ. 280

शिक्षण विधाओं की महत्ता को भी हमारे समक्ष प्रस्तुत किया।

### अनुशासन

डॉ. राधाकृष्णन विद्यार्थियों में बढ़ती हुई अनुशासनहीनता की प्रवृत्ति से अत्यंत दुखी थे। वे इसे सामाजिक ह्रास मानते थे। उनका मानना था कि किसी भी समाज को कल्याण मार्ग पर अग्रसर होने के लिए अनुशासित होना आवश्यक है। मनुष्य की मौलिक अच्छाई पर उनका विश्वास था, अतः वे यह मानते थे कि स्वयं आदर्श प्रस्तुत कर माता-पिता, अभिभावक तथा शिक्षक एक बालक को अनुशासन का पाठ सिखा सकते हैं। यहाँ यह भी ध्यान देना होगा कि उत्तम चरित्र को उन्होंने अनुशासन का मूल आधार माना था।

विभिन्न शिक्षाविदों ने अपने अनुभव के द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि अनुशासन को एक बालक के ऊपर से थोपा जाना संभव नहीं है। लेकिन आज भी विद्यालयों में शिक्षक शिक्षिकाएँ बालकों को अनुशासित आचरण सिखाने के लिए दबावपूर्ण स्थितियाँ बनाने में संकोच नहीं करते। क्या ही अच्छा हो कि एक शिक्षक स्वयं अपने आचरण से विद्यार्थियों के लिए एक उदाहरण बने और वे उसकी पुनरावृत्ति कर स्वयं एक अनुशासित छात्र बन सकें।

### शिक्षक शिक्षार्थी संबंध

प्राचीन भारतीय परंपरा में शिक्षक का स्थान बड़ा ही सम्मानपूर्ण था। अपने शिष्य के उसका संबंध

पुत्रवत होता था। वर्तमान परिस्थितियों में जब शिक्षण कार्य एक व्यवसाय मात्र होकर रह गया है, इस व्यवसायीकरण का प्रभाव गुरु शिष्य संबंध के इस पवित्र भाव पर भी पड़ा है। डॉ. राधाकृष्णन ने शिक्षा के क्षेत्र में हुई इस क्षति की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया, उन्होंने समग्र मानव के विकास के लिए श्रद्धा, संयम और समर्पण के गुणों को आवश्यक माना था। अतः शिक्षक में भी वह इन गुणों को आवश्यक मानते थे। उन्होंने एक शिक्षक में निम्नलिखित गुण आवश्यक बताए—

- (क) शांत स्वभाव एवं हँसमुख
- (ख) निर्मल बुद्धि
- (ग) विषय का ज्ञाता
- (घ) नैतिक चरित्र
- (ङ) नागरिक अधिकारों एवं कर्तव्यों के प्रति जागरूक

एक आदर्श शिक्षक के लिए विद्या के प्रति प्रतिबद्धता की अनिवार्यता को प्रमाणित करते हुए उन्होंने आदर्श शिक्षक को मानव जाति के प्रति उत्तरदायी बताया। मानव मात्र के मानस को नैतिकता के मूल्यों तक ले जाना आचार्य का कार्य है।<sup>7</sup> एक विद्यार्थी का कर्तव्य है कि वह इस कार्य में आचार्य का सहभागी बने।

शिक्षक शिक्षार्थी संबंध की दृष्टि से डॉ. राधाकृष्णन भारत की पारम्परिक व्यवस्था के समर्थक थे। उनका कहना था कि गुरु, छात्र (शिष्य) के अज्ञान का आवरण हटाकर उसे ज्ञान की प्राप्ति कराता है और शिष्य अपने प्रयासों के द्वारा गुरु से ज्ञानोपार्जन कर अपने जीवन के परम

<sup>7</sup> पाण्डे रामशकल (2002) - विश्व के श्रेष्ठ शिक्षाशास्त्री, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, पृ. 399

लक्ष्य मुक्ति को प्राप्त करता है। अतः अध्यापक तथा विद्यार्थी, ये शिक्षा के दो प्रमुख अंग हैं और इन दोनों के मध्य सम्पन्न होने वाली अंतःक्रिया शिक्षा है। उन्होंने शिक्षण को शिक्षक का व्यवसाय मात्र न मानकर उसका धर्म माना था। उनका कहना था कि शिक्षक छात्र का पथ प्रदर्शक है। एक शिक्षक को अपने शिष्य को उन सभी उपायों का सुझाव देना चाहिए जिनका अवलंबन करके शिष्य आत्मकल्याण की प्राप्ति कर लेता है। वह शिक्षण संस्थाओं को राष्ट्र का निर्माता मानते थे और इन बातों की उन्होंने पुरजोर वकालत की थी कि समाज के भविष्य का निर्माण करने वाले अध्यापकों को समुचित सम्मान दिया जाए।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आज का भारतीय समाज शिक्षा के क्षेत्र में जिन समस्याओं से जूझ रहा है, डॉ. राधाकृष्णन ने उसका अनुमान वर्षों पूर्व लगाया और अपनी दार्शनिक विवेचनाओं द्वारा तत्कालीन शिक्षा व्यवस्था में व्याप्त कमियों को उजागर करने के साथ-साथ भविष्य में हमें जिन कठिनाइयों से जूझना होगा, उसके समाधान के व्यवहारिक उपाय भी प्रस्तुत करते रहे। समाज में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया, औद्योगिकीकरण के विस्तार तथा विज्ञान व तकनीकी ज्ञान के विश्लेषण के बीच मानव जीवन का अंतर्मन जिस नीरसता में डूब जाएगा, उसे वह भलीभाँति जानते थे। यही कारण है कि उन्होंने अपनी दार्शनिक व्याख्याओं में आदर्श चरित्र, नैतिकता, मानवीयता तथा आध्यात्मिकता को सर्वोपरि रखा। वह इस बात को भलीभाँति मानते थे कि मानव जीवन के लक्ष्य व्यक्तिगत हितों से ऊपर, अति व्यापक है। शिक्षा को इन उद्देश्यों की प्राप्ति का एक साधन

अवश्य होना चाहिए। इस आधार पर उन्होंने शिक्षा की उपयोगिता को व्यक्ति एवं समाज दोनों के संदर्भ में बताया। व्यक्ति के लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण मानते हुए उन्होंने बताया कि शिक्षा से व्यक्ति को मोक्ष प्राप्त होता है। अतः शिक्षा प्राप्त व्यक्ति का आचरण, विचार व व्यवहार सुसंस्कृत हो जाता है। उसका जीवन उत्कृष्ट हो जाता है। निःसंदेह इससे श्रेष्ठ समाज के निर्माण को बल मिलता है। श्रेष्ठ मानव समाज में ही एक उन्नत राष्ट्र एवं समृद्ध तथा शांतिमय विश्व की कल्पना निहित है।

धार्मिक शिक्षा की उनकी अवधारणा की भी वर्तमान संदर्भों में अपनी महत्ता है। इस शब्द के माध्यम से ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म की शिक्षा दी जाए। यहाँ ध्यान देना होगा कि डॉ. राधाकृष्णन के अनुसार धर्म कोई विशेष मत नहीं वरन् सत्य का बोध है। उनका यह विश्वास कि शिक्षण संस्थाओं में धार्मिक ग्रंथों के माध्यम से ईश्वर की आस्था और जीवन में नैतिक नियमों का पालन अवश्य सिखाया जाए, वास्तव में बालक में अनुशासित आचरण व नैतिक मूल्यों के विकास का आधार है। सभी संप्रदायों में ऐसे अवतारी पुरुष हुए हैं, जिनकी गौरव गाथा सम्पूर्ण विश्व को प्रेरित कर सकती है। बच्चों के कोमल मस्तिष्क पर चरित्र के ऐसे गुणों के विकास हेतु धर्म की शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है। इस पर प्रश्नचिन्ह क्यों? वास्तविकता यह है कि डॉ. राधाकृष्णन ने हिन्दुत्व में निहित भारत के आध्यात्मिक आदर्शों और आकाँक्षाओं का ओजस्वी शब्दों में वर्णन किया है। उन्होंने इन श्रेष्ठ आदर्शों को भारत की शिक्षा व्यवस्था में समाहित करने की वकालत

की। श्रेष्ठ नैतिक, चारित्रिक मूल्यों की प्राप्ति हेतु संपूर्ण मानव जाति संघर्षरत है। अतः इस पर प्रश्नचिन्ह की कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। डॉ. राधाकृष्णन ने पूर्व तथा पश्चिम के शैक्षिक विचारों के श्रेष्ठ तथ्यों का समन्वय कर एक उत्कृष्ट शिक्षा व्यवस्था का प्रारूप हमारे सामने रखा था। इस दिशा में वह बाल मनोविज्ञान की भी अनदेखी नहीं करते। पश्चिमी मानवतावाद तथा भारतीय आध्यात्मवाद में समन्वय स्थापित कर वह एक ऐसे विश्व दर्शन को क्रियावित होते देखना चाहते थे जिसमें विभिन्न मानव जाति के मध्य कोई दूरी न रहे। सभी सुख शांति और समृद्धि का जीवन जी सकें। अपने इस जीवन दर्शन के क्रियान्वयन हेतु उनके द्वारा प्रस्तुत शिक्षा दर्शन में भारतीय संस्कृति के प्रति सम्मान का भाव, धार्मिकता, नैतिकता तथा लोक कल्याण के विचारों के सामंजस्य एवं विश्व बंधुत्व का भाव निहित है। हिन्दू धर्म एवं उसकी उदारमयी मान्यताओं के प्रति स्नेह हमें तमाम ऐसी समस्याओं का हल स्वतः उपलब्ध करा देता है, जिसके लिए हमारे आज के शिक्षाविद् प्रयत्नशील हैं। समाज में शिक्षक के स्तर तथा उसके व्यक्तित्व के संबंध में भारत की परंपरागत अवधारणा का समर्थन कर उन्होंने हमें वह मार्ग दिखाया है जिससे शिक्षा के सबसे मजबूत स्तंभ को सही आधार मिल सकता है। शिक्षक पद का समाज में सम्मानपूर्ण स्थान

तथा एक शिक्षक का आदर्श व्यक्तित्व ये दोनों बातें एक दूसरे की पूरक हैं। एक को स्थापित कर हम द्वितीय को स्वतः प्राप्त कर सकेंगे। आज यदि शिक्षक पद को सम्मानपूर्ण दर्जा प्रदान किया जाए, निःसंदेह परिवर्तित सामाजिक परिवेश में यहाँ हम आर्थिक लाभ की अनदेखी नहीं कर सकते, यहाँ उनके पद हेतु चयन की प्रक्रिया की निष्पक्षता भी आवश्यक होगी। आप देखें समाज का शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग स्वतः इस पद को प्राप्त करने का गौरव पाना चाहेगा। शिक्षित बुद्धिजीवी वर्ग के इस पद से जुड़ते ही उनके व्यक्तित्व का तेज इस व्यवसाय को सम्माननीय बना देगा। हमारे विद्यालय प्रशिक्षण केंद्र के साथ-साथ ज्ञान का मन्दिर बन सकेंगे। दूसरा पक्ष शिक्षक के आदर्श व्यक्तित्व का है, एक शिक्षक यदि अपने व्यक्तित्व में राधाकृष्णन द्वारा पोषित 'सादा जीवन उच्च विचार' की गरिमा को अपना सका, स्वयं के व्यक्तित्व में एक आदर्श शिक्षक के गुण समाहित कर सका तो शिक्षक के व्यक्तित्व के प्रभाव मात्र से यह पद समाज में सम्माननीय दर्जा प्राप्त कर लेगा। स्पष्ट है कि डॉ. राधाकृष्णन द्वारा प्राप्त दिशानिर्देश से वर्तमान भारतीय समाज की शिक्षा व्यवस्था में निहित तमाम समस्याओं का समाधान बड़ी सहजता से हो सकता है। उनके द्वारा प्रस्तुत शिक्षा चिंतन सर्वकालिक तथा व्यवहारिक है।

## स्वामी विवेकानंद के शैक्षिक चिंतन की प्रासंगिकता

भवेश कुमार\*

स्वामी विवेकानंद ने भारतीय शिक्षा दर्शन को एक नई दिशा देने का प्रयास किया है। उनका शिक्षा दर्शन अद्वैतवाद से अनुप्राणित है। अद्वैतवेदान्त के अनुसार प्रत्येक जीव में ईश्वरीय सत्ता विद्यमान है। वे आत्मज्ञान को विशेष महत्व देते हैं। उनके अनुसार शिक्षा का मूल तत्व ज्ञान को आत्मसात् कर जीवन में प्रयोग करना है। वे मानव के समग्र विकास के लिए वेदान्तयुक्त आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा व्यवस्था का क्रियान्वयन चाहते थे। स्वामी जी ने शिक्षा के पाठ्यक्रम में प्राच्य एवं पाश्चात्य, धर्म और विज्ञान, वर्तमान और अतीत का समन्वय किया है। वे चाहते थे कि सीखने की प्रक्रिया सहज, स्वाभाविक और बिना किसी दबाव के होनी चाहिए और शिक्षक का कार्य सीखने की प्रक्रिया में आने वाली बाधाओं को दूर कर उचित वातावरण का सृजन करना है। स्वामी विवेकानंद की शिक्षा की संकल्पना और उनके द्वारा सुझाए गए विकल्पों को साकार रूप देकर शिक्षा के क्षेत्र में बदलाव लाने की ज़रूरत है।

बहुआयामी प्रतिभा के धनी, अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिलब्ध आध्यात्मिक संत, मानव कल्याणोंमुखी भारतीय दर्शन के प्रचारक, राष्ट्र के नवनिर्माण हेतु विशुद्ध अंतःकरण से दृढ़ संकल्पित, व्यापक मानवीय संवेदना से युक्त, युवाओं के ऊर्जा के अजस्र स्रोत, राष्ट्रीय चेतना के अभिप्रेरक, दीन दुःखियों के मसीहा, आधुनिक भारत के महान् मानवतावादी संत स्वामी विवेकानंद का जन्म 12 जनवरी,

1863 को कोलकाता के शिमलापाली के एक समृद्ध परिवार में हुआ था। स्वामी जी के पूर्वाश्रम का नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। इनके पिता श्री विश्वनाथ दत्त कोलकाता उच्च न्यायालय के प्रख्यात अधिवक्ता तथा अँग्रेजी और फ़ारसी के विद्वान थे। इनकी माता श्रीमती भुवनेश्वरी देवी धर्मिक गृहणी थीं। इनके पितामह श्री दुर्गाचरण दत्त फ़ारसी, संस्कृत तथा कानून के विशेषज्ञ थे,

\*बी-454, एन. एच. 5, एन.टी.पी.सी. कम्पाउण्ड, रिहन्द नगर, सोनभद्रा-231223

किंतु उन्होंने जीवन के पूर्वाह्न में ही 25 वर्ष की अल्पायु में संसार से विरक्त होकर सन्यास ग्रहण कर लिया था।

ज्ञान एवं अध्यात्म की पारिवारिक विरासत, गुरु श्री राम कृष्ण परमहंस का पवित्र सान्निध्य एवं असीम अनुकंपा, प्राच्य एवं पाश्चात्य दर्शन का प्रभूत ज्ञान, स्वयं की आध्यात्मिक अनुभूति, भारत का गौरवमय अतीत, पिता की मृत्यु के पश्चात् पारिवारिक दारिद्र्य की सहानुभूति, परिव्राहजक रूप में भारत तथा विश्व के अनेक देशों के भ्रमण के समय प्रत्यक्षतः अनुभूत भारत की सामाजिक, आर्थिक एवं शैक्षिक विपन्नता, जापान की औद्योगिक प्रगति, उच्च जीवन स्तर, शिकागो का विपुल ऐश्वर्य एवं अन्य पाश्चात्य देशों की गवेषणात्मक प्रतिभा आदि समवेत रूप से स्वामी जी के समग्र चिंतन के प्रमुख अभिप्रेरक तत्व रहे हैं।<sup>1</sup> स्वामी जी ने स्वयं भारत-भ्रमण के समय अपनी आँखों से भयानक निर्धनता, अज्ञानता, बुभुक्षित नग्नबच्चे, अर्द्धनग्न स्त्री-पुरुष, निर्धन एवं निरक्षर ग्रामीण, अवैज्ञानिक खेती, सिंचाई के साधनों का अभाव, गाँवों में अस्वच्छता, अत्यंत निम्न जीवन स्तर, धार्मिक आडंबर, अंधविश्वास, सामाजिक कुरीतियाँ आदि के रूप में विपन्न भारत का दर्शन किया। लोग निर्धनता तथा अज्ञानता के कारण पशुवत् जीवन व्यतीत कर रहे थे।<sup>2</sup> इस अमानवीय स्थिति को देखकर मानवीय संवेदना से युक्त स्वामी जी का हृदय अत्यंत द्रवित हुआ। उन्होंने अपनी अंतःप्रेरणा से आत्ममुक्ति के स्थान

पर राष्ट्रमुक्ति-राष्ट्र को निर्धनता एवं अज्ञानता से मुक्ति दिलाने, दीन-दुःखियों के उद्धार हेतु कार्य करने तथा राष्ट्र के पुनर्निर्माण में संलग्न होने का संकल्प लिया और आजीवन मानवता की सेवा ही अपने जीवन का लक्ष्य निर्धारित किया। स्वामी जी का शैक्षिक दर्शन भी प्रमुखतः इसी बिंदु से अभिप्रेरित है। उनका शैक्षिक चिंतन पूर्ण मानव के निर्माण हेतु व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास की अवधारणा पर आधारित है जिससे मनुष्य जीवन में अभ्युदय (लौकिक अभ्युत्थान) एवं निःश्रेयस (आध्यात्मिक प्रगति) की सिद्धि कर आत्मोन्नति के साथ समृद्ध राष्ट्र के निर्माण में सहभागी बन सकें।

स्वामी जी का शैक्षिक दर्शन मूलतः अद्वैत वेदांत से अनुप्राणित है। अद्वैत वेदांत के अनुसार प्रत्येक जीव में ईश्वरीय सत्ता विद्यमान है। प्रत्येक प्राणी दैवीय है। इस धरा पर ईश्वर जीव रूप में ही अस्तित्वमान है। इसके अतिरिक्त ईश्वर का कोई दूसरा रूप नहीं है। जीवन का लक्ष्य इस दिव्यता या ब्रह्म भाव का प्रकाशन है।<sup>3</sup> कर्म और ज्ञान (शिक्षा) इस दिव्यता या पूर्णत्व की अभिव्यक्ति के प्रमुख साधन हैं। स्वामी जी ने पाश्चात्य देशों के भ्रमण में जीवनोपयोगी वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा की भौतिक उपलब्धियों, लोगों के उच्च जीवन स्तर पर साधारण से साधारण व्यक्तियों के सुखमय जीवन को देखा था। उन्होंने भारत की निर्धनता व पिछड़ेपन का मूल कारण यहाँ विद्यमान व्यापक अज्ञानता को स्वीकार किया। वह भारत में प्रचलित तत्कालीन शिक्षा प्रणाली से दुःखी थे। क्योंकि वह देशवासियों

<sup>1</sup>स्वामी निखिलानन्द, *विवेकानंद ए बायोग्राफी*, पृ. 89, 110.

<sup>2</sup>तदैव पृष्ठ 79-96.

<sup>3</sup>दि मेसेज आफ विवेकानंद अद्वैत आश्रम 5, डेही इण्टैली रोड कोलकाता, ग्यारहवाँ संस्करण, अगस्त 2002 पृ. 35.



को आत्मनिर्भर बनाने में असफल थी। लोगों के चरित्र निर्माण एवं मानवीय मूल्यों के विकास में सहायक नहीं थी। देश के शिक्षण संस्थान विद्यार्थियों के मस्तिष्क में पुस्तकीय ज्ञान के तथ्यों को भर रहे थे और उनमें विषयों के रटने की प्रवृत्ति में अभिवृद्धि कर रहे थे। शिक्षण संस्थान रटे हुए विषयों के परीक्षण के मात्र संस्थान बने हुए थे। स्वामी जी के अनुसार शिक्षा का सार मन की एकाग्रता प्राप्त करना है, तथ्यों का संकलन नहीं। शिक्षा का मूल तत्व ज्ञान को आत्मसात् कर जीवन में प्रयोग करना है। मन की एकाग्रता से विषयों को समझने और उसे आत्मसात् करने में सरलता होती है। स्वामी जी मानसिक एकाग्रता के लिए छात्र जीवन में ब्रह्मचर्य जीवन का पालन अनिवार्य मानते हैं क्योंकि ब्रह्मचर्य से बौद्धिक व आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है। मन तथा इंद्रियाँ नियंत्रित होती हैं। स्मृति शक्ति का विकास होता है। प्रबल कार्यशक्ति की अभिवृद्धि होती है। मानसिक एकाग्रता बढ़ती है। मन की एकाग्रता के विकास से विद्यार्थी अतिशीघ्र विषय वस्तु को ग्रहण कर लेता है। प्राचीन गुरुकुलों में ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए सर्व शास्त्रविद्, धर्मज्ञ, सच्चरित्र, सद्गुरु के सान्निध्य में रहते हुए विद्या विनय संपन्न, चरित्रवान, श्रमशील भावपूर्ण आदर्श नागरिक के रूप में उद्भूत होते थे। स्वामी जी के अनुसार आदर्श शिक्षा वह है जिससे हम जीवन का निर्माण कर सकें, पूर्ण मानव बन सकें और ज्ञान को आत्मसात् कर जीवन में प्रयोग कर सकें। उनकी प्रसिद्ध उक्ति है—

“यदि हम मूल्यवान पाँच ही भावों को आत्मसात् कर अपने जीवन और चरित्र का निर्माण कर सकें तो हमारी वह शिक्षा उस व्यक्ति की शिक्षा की अपेक्षा बहुत अधिक है जिसने पूरे पुस्तकालय को ही कण्ठस्थ कर लिया है।”<sup>4</sup>

शिक्षा को परिभाषित करते हुए स्वामी जी कहते हैं—“शिक्षा का अर्थ है, उस पूर्णता को व्यक्त करना जो सब मनुष्यों में पहले से विद्यमान है।”<sup>5</sup> ज्ञान मनुष्य में अंतर्निहित है। कोई भी ज्ञान बाहर से नहीं आता, सब अंदर ही है। विश्व का असीम पुस्तकालय हमारे मन में ही विद्यमान है। संसार ने जो कुछ ज्ञान प्राप्त किया है वह मन से ही निसृत है। एक अबोध बालक में भी ज्ञान का समस्त भण्डार निहित है। उस प्रच्छन्न ज्ञान को अनावृत करना है। बालक को स्वयं अपने अंदर निहित ज्ञान का अन्वेषण करना है। आचार्य का कार्य छात्र को जागृत करना है, प्रबोधित करना है। आचार्य ज्ञान के अन्वेषण में उद्दीपन का कार्य करता है, छात्र को प्रेरणा प्रदान करता है, शैक्षिक वातावरण का सृजन करता है, ज्ञानार्जन में आने वाली बाधाओं का निवारण करता है।

स्वामी जी शिक्षा के उद्देश्य को रेखांकित करते हुए कहते हैं कि शिक्षा जीवन का निर्माण करने वाली (Life Building), मनुष्य बनाने वाली (Man Making), चरित्र गठन करने वाली (Character Making) तथा विचारों को आत्मसात्

<sup>4</sup>स्वामी विवेकानंद, शिक्षा (हिन्दी अनुवाद) श्री रामकृष्ण आश्रम, नागपुर, पृ. 5.

<sup>5</sup>स्वामी विवेकानंद, शिक्षा पृ. 6

कर जीवनोपयोगी बनाने वाली होनी चाहिए।<sup>6</sup> शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे चरित्र निर्माण हो, जीवन में मानवीय मूल्यों का समावेश हो, मानसिक शक्ति बढ़े, बुद्धि विकसित हो, मनुष्य आत्म निर्भर बने और उसमें अपने पैरों पर खड़ा होने की सामर्थ्य उत्पन्न हो सके। वह शिक्षा जो व्यक्ति को जीवन संग्राम में समर्थ नहीं बना सकती, मनुष्य में चरित्रबल, परहित भावना, मानव सेवाभाव तथा परिस्थितियों का सामना करने के लिए अदम्य साहस और आत्म विश्वास उत्पन्न नहीं कर सकती, वह शिक्षा नहीं है।<sup>7</sup> स्वामी जी मानव के समग्र विकास के लिए वेदांतयुक्त आधुनिक ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा व्यवस्था का क्रियान्वयन चाहते थे।<sup>8</sup>

स्वामी जी स्त्रियों एवं जनसामान्य विशेषतः दीन-दुःखियों, निर्धनों, असहायों एवं समाज के निचले पयदान पर खड़े व्यक्तियों की शिक्षा के प्रति विशिष्ट संवेदनशील थे। उनके अनुसार देश के पतन तथा पिछड़ेपन का प्रमुख कारण स्त्रियों की अशिक्षा है। वर्तमान समाज में स्त्रियों को सम्मान प्राप्त नहीं है। उन्हें पुरुषों के समान शिक्षा प्राप्त करने का अवसर सुलभ नहीं है। परिवार में बालक की शिक्षा के प्रति लोग सचेत होते हैं किंतु बालिका की शिक्षा को महत्व नहीं देते। यह देश के लिए अत्यंत दुर्भाग्य का विषय है। समाज स्त्री-पुरुष दोनों से मिलकर बना है। दोनों की

शिक्षा पर ही देश का पूर्ण विकास संभव है। पक्षी आकाश में मात्र एक पंख से उड़ नहीं सकते। उसी प्रकार देश का सम्यक् उत्थान मात्र पुरुषों की शिक्षा से संभव नहीं है। स्त्रियों को पुरुषों के समान ही शिक्षा प्राप्त करने का सुअवसर सुलभ होना चाहिए। प्राचीन भारत में स्त्रियों को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था। ज्ञान के सर्वोच्च स्रोत वेद मंत्रों के दर्शन में ऋषि पत्नियाँ भी सहभागी होती थीं। ऋषि वशिष्ठ की पत्नी अरुंधती, सीता, सावित्री, माँ शारदा देवी (श्री रामकृष्ण परमहंस की आध्यात्मिक सहधर्मिणी) जैसी-विदुषी स्त्रियों का पुनरोदय आवश्यक है। यह स्त्रियों को पुरुषों के समान शिक्षा के अवसर प्रदान करने पर ही संभव है। इस प्रकार स्वामी जी महिलाओं के सशक्तिकरण की आधुनिक अवधारणा के जनक हैं। स्वामी जी जनसाधारण प्रमुखतः निर्धन अपवर्चित एवं पिछड़े वर्ग में व्याप्त निरक्षरता से बहुत द्रवित थे। उनके अनुसार सभी प्राणी ईश्वर की संतान हैं। समाज में समृद्ध एवं उच्च वर्ग का ही शिक्षा पर आधिपत्य नहीं होना चाहिए। बिना इसके राष्ट्र का पुनर्निर्माण असंभव है। यदि निर्धनता के कारण निर्धनों के बच्चे रोजी-रोटी के कार्य में संलग्न होने के कारण विद्यालय नहीं जा सकते तो विद्यालय को स्वयं उनके पास जाना होगा। उनकी प्रसिद्ध उक्ति है-“यदि पहाड़ मुहम्मद के पास नहीं जा सकता तो मुहम्मद को ही पहाड़ के पास जाना होगा।”<sup>9</sup>

<sup>6</sup>स्वामी भास्करेश्वरानन्द (प्रकाशक) : *विवेकानंद संचयन* द्वितीय संस्करण पृ. 184, एवं प. रामचन्द्रन, बसन्त राम कुमार, *एजुकेशन इन इण्डिया* पृ. 112, नेशनल बुक ट्रस्ट भारत 2005.

<sup>7</sup>*विवेकानंद*, राष्ट्र को आह्वान पृ. 33

<sup>8</sup>तदैव पृष्ठ 35.

<sup>9</sup>स्वामी विवेकानंद, शिक्षा, श्री रामकृष्ण आश्रम नागपुर पृ. 50 एवं विवेकानन्द, राष्ट्र को आह्वान पृ. 35.

स्वामी जी की यह अवधारणा सर्वशिक्षा अभियान, सबके लिए शिक्षा, अनौपचारिक शिक्षा, वयस्क शिक्षा आदि की मूल स्रोत कही जा सकती हैं।

स्वामी विवेकानन्द ने एक शिक्षा शास्त्री की दृष्टि से शिक्षा के पाठ्यक्रम पर क्रमबद्ध रूप से विचार नहीं किया है। वस्तुतः स्वामी जी महान मानवतावादी आध्यात्मिक संत थे। मानव का कल्याण ही उनके जीवन का लक्ष्य था। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मानव के पूर्ण व्यक्तित्व का विकास था। उनके समग्र चिंतन, लेखों, प्रवचनों, सदेशों, उद्बोधनों एवं ग्रंथों में जीवन के समग्र विकास से संबंधित अनेक विषय शिक्षा के पाठ्यक्रम के रूप में गृहीत किए जाते हैं। स्वामी जी में प्राच्य एवं पाश्चात्य विद्या का अद्भुत समन्वय था। जहाँ वह समृद्ध भारतीय धर्म-दर्शन आध्यात्म, ज्ञान-विज्ञान एवं मूल्यपरक उदारमना भारतीय संस्कृति की संवाहिता प्राच्य विद्या के उत्पाद थे वहीं उनमें पाश्चात्य दर्शन, इतिहास आदि का प्रभूत ज्ञान तथा भौतिक सुख प्रदान करने वाली यूरोपीय देशों के आधुनिक ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा के उत्कर्ष की पर्याप्त अनुभूति थी। अतः वह मानव के पूर्ण विकास के लिए प्राच्य विद्या तथा पाश्चात्य आधुनिक ज्ञान-विज्ञान का समन्वय चाहते थे। उनकी शिक्षा के पाठ्यक्रम में जीवन के निर्माण से संबंधित सभी विषय समाहित थे। वह भारतीय संस्कृति के 'वसुधैव कुटुंबकम्', मानवीय मूल्यों, वैश्विक मानव धर्म, आध्यात्मिक चेतना, देशभक्ति आदि से संबंधित वेद मंत्रों, उपनिषदों, वेदांतों के व्यावहारिक तत्वों,

धार्मिक शिक्षा के अंतर्गत धर्म के मानवीय तत्वों, धर्म के क्रियात्मक स्वरूप, महापुरुषों के चरित्र निर्माणक उदात्त प्रेरणादायक प्रसंगों, भाषा के अंतर्गत संस्कृत वाङ्मय, मातृभाषा, मातृभाषा में दक्षता के बाद विदेशी भाषा, प्राचीन और आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, कृषि, पशुपालन, उद्योग, संगीत, कला, योगासन, प्राणायाम, खेल-कूद आदि विषयों का अध्ययन - अध्यापन विद्यालयों में चाहते थे। वह स्त्रियों की शिक्षा के पाठ्यक्रम के अंतर्गत धार्मिक शिक्षा चरित्र गठन, ब्रह्मचर्य पालन, इतिहास और पुराण, गृह व्यवस्था, कला-कौशल, गृह विज्ञान, शिशु पालन, शिशु शिक्षा आदि विषयों का समावेश चाहते थे।<sup>10</sup> इसके अतिरिक्त वह समय-समय पर व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुरूप पाठ्यक्रम में परिवर्तन भी चाहते थे। श्री सुभाष चंद बोस के शब्दों में -

*“स्वामी जी ने अपने शिक्षा के पाठ्यक्रम में प्राच्य एवं पाश्चात्य, धर्म और विज्ञान, वर्तमान और अतीत का समन्वय किया है।”*

स्वामी जी के अनुसार मनुष्य में पहले से ही विद्यमान पूर्णता की अभिव्यक्ति ही शिक्षा है। बालक में ज्ञान अंतर्निहित है। उसमें ज्ञान के स्वतः विकास की शक्ति विद्यमान है। अतः शिक्षण विधि के अंतर्गत शिक्षा का कार्य एक सहायक का है। जिस प्रकार किसी वृक्ष या पौधे के लघुबीज में स्वतः विकास के तत्व विद्यमान होते हैं। कृषक मात्र उचित भूमि तैयार कर बीजारोपण करता है, उचित उर्वरक, जल, वायु, प्रकाश आदि की व्यवस्था करता है। पौधे की

<sup>10</sup>स्वामी विवेकानन्द, शिक्षा, श्री रामकृष्ण आश्रम नागपुर पृ. 43.

सुरक्षा के लिए उसके, चारों ओर सुरक्षा का घेरा तैयार करता है, पौधा स्वयं अपने अंतर्निहित विकास तत्व से विकसित होता है। यही कार्य बालक की शिक्षा में आचार्य का है क्योंकि बालक में ज्ञान स्वयं अंतर्निहित है। अतः सीखने की प्रक्रिया सहज स्वाभाविक और बिना किसी दबाव के होनी चाहिए। ज्ञानार्जन में बालक को पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की जानी चाहिए। आचार्य का कार्य सीखने की प्रक्रिया में आने वाली बाधाओं को दूर करना है। वातावरण का सृजन करना है, सीखने के लिए प्रेरित करना है।<sup>11</sup> शिक्षक को विषय का उत्कृष्ट ज्ञान, पवित्र जीवन, आदर्श चरित्र छात्र के प्रति सहानुभूति, शिक्षण के प्रति समर्पण, सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरक होता है। अतः शिक्षक का उच्चतम आदर्श सीखने की प्रक्रिया का एक आवश्यक तत्व है।

स्वामी जी कालजयी महापुरुष हैं। कालजयी महापुरुषों के चिंतन पुराने नहीं पड़ते। सतत् प्रासंगिक एवं मार्गदर्शी बने रहते हैं। राष्ट्र के पुनर्निर्माण एवं देशवासियों के समग्र कल्याण हेतु स्वामी जी के शिक्षा विषयक विविध चिंतन-पूर्णमानव बनाने वाली शिक्षा की अवधारणा, जीवन के निर्माण हेतु व्यापक पाठ्यक्रम, प्रभावी ज्ञानार्जन के लिए मानसिक एकाग्रता का विकास, सीखने की प्रक्रिया में बालक की स्वतंत्रता एवं सहभागिता, ज्ञानार्जन में बालक की सहज स्वाभाविक प्रवृत्ति, अनुचित दबाव का अभाव, स्वानुशासन का विकास, शिक्षण में प्रजातांत्रिक पद्धति का प्रयोग, शिक्षक का उच्चतम आदर्श, पुरुषों के समान स्त्रियों के लिए शिक्षा प्राप्ति के

अवसर की उपलब्धता, समाज के निर्धन, अपवर्चित एवं पिछड़े वर्ग की शिक्षा के प्रति विशेष संवेदनशीलता, आज भी शिक्षाविदों के चिंतन के विषय हैं। महात्मा गाँधी की 'बालक एवं मानव के शरीर' मन एवं आत्मा का सर्वोत्तम विकास' पेस्टालॉजी की मनुष्य की अंतर्निहित शक्तियों का स्वाभाविक सामंजस्यपूर्ण एवं प्रगतिशील उत्थान विषयक शिक्षा की अवधारणाएँ स्वामी जी की मानव की पूर्णता की अभिव्यक्ति वाली शिक्षा की अवधारणा से प्रायः साम्यता रखती हैं। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा उद्घोषित शिक्षा के उद्देश्य विषयक बिंदु- विषय का ज्ञान (Learning to Know), प्राप्त ज्ञान को क्रियान्वित करना (Learning to do), आत्मसात् ज्ञान के अनुसार आचरण करना (Learning to be) एवं मानवीय मूल्यों से सम्पृक्त होना (Learning to live together)। स्वामी जी की जीवन में आत्मसात् करने वाली शिक्षा, जीवन निर्माण करने वाली शिक्षा, चरित्र गठन करने वाली शिक्षा, मानवीय गुणों का विकास करने वाली शिक्षा की अवधारणा के तद्रूप ही हैं। कदाचित जीवन का निर्माण करने वाली, पूर्ण मानव बनाने वाली, चरित्र उत्पन्न करने वाली, व्यक्ति की दिव्यता की अनुभूति कराने वाली, मानव मूल्यों का जीवन में समावेश कराने वाली, मनुष्य को आत्मनिर्भर बनाने वाली स्वामी जी की शिक्षा की संकल्पना को आज भी हम साकार नहीं कर सके हैं। उनका शिक्षा दर्शन आज एक शताब्दी के बाद भी हमारे लिए आदर्श और प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है और उसे मूर्तरूप देने के लिए हम सतत् प्रयत्नशील हैं।

<sup>11</sup> स्वामी विवेकानंद, शिक्षा, श्री रामकृष्ण आश्रम नागपुर पृ. 10-11.

## जयप्रकाश नारायण का समाजवादी चिंतन एक मूल्य शिक्षा

पंकज कुमार दूबे\*

जयप्रकाश नारायण का समाजवादी चिंतन अन्य समाजवादी चिंतकों से कुछ अलग एवं अनोखा रहा है। जहाँ इनके विचारों पर मार्क्सवाद का प्रभाव पड़ा वहीं अहिंसक आंदोलन के समर्थक महात्मा गाँधी के विचारों का भी प्रभाव पड़ा। इन्होंने सिर्फ विचार ही व्यक्त नहीं किया अपितु उन विचारों को प्रयोगात्मक रूप में समाज के समक्ष प्रस्तुत भी किया। जैसे स्वतंत्रता उपरांत समाज सुधार से संबंधित भूदान ग्रामदान आंदोलन से जुड़े रहे और लोकतांत्रिक मूल्यों की रक्षा हेतु अहिंसक आंदोलन का नेतृत्व भी किया एवं समग्र क्रांति का बिगुल फूँका। इन्हें इन कार्यों को मूर्त रूप देने की प्रेरणा स्वयं के समाजवादी विचारों से मिलती रही, जिनमें पर्याप्त मूल्य शिक्षा के तत्व समाहित हैं। आज के वर्तमान परिप्रेक्ष्य में समाज को इन मूल्यों की शिक्षा की नितांत आवश्यकता है, जिससे यह समाज एक सभ्य एवं सुसंस्कृत समाज बन सके जहाँ न हिंसा हो, न भ्रष्टाचार हो और ना ही शोषण हो एवं प्रत्येक व्यक्ति स्वयं को एक अच्छा मानव कहलाने का अधिकारी बन सके। प्रस्तुत लेख जयप्रकाश नारायण के समाजवादी चिंतन में सन्निहित इन्हीं मूल्य शिक्षा के तत्वों पर प्रकाश डालने का एक प्रयास है।

भारतीय समाज जहाँ बहुत ज्यादा विषमता है, कोई निम्न-आय वर्ग का है तो कोई उच्च-आय वर्ग का है, कोई मालिक है तो कोई नौकर है। लक्ष्य है इस देश को समाजवादी करने के बजाए तात्कालिक हल के रूप में बल प्रयोग किया जा रहा है। न तो मूल कारणों को गणराज्य के रूप में विकसित करना परंतु

इस देश का ज्यादातर मुनष्य पूँजीवादी मानसिकता का है बस समाजवाद नारों तक रह गया है। इन परिस्थितियों में जो गरीब है वह और ज्यादा गरीब होता जा रहा है, जो दबा कुचला है उसकी स्थिति भी वैसी ही है बल्कि उससे भी बदतर है, लोग इनका अपने फायदे के लिए प्रयोग कर रहे हैं।

\*प्रवक्ता, सीतापुर शिक्षा संस्थान, सीतापुर, उ.प्र.

इन समस्याओं के कारण अन्य बड़ी समस्याएँ खड़ी होती जा रही हैं जैसे आतंकवाद, उग्रवाद, नक्सलवाद इत्यादि। इन समस्याओं से निजात पाने हेतु हिंसक आंदोलन जारी हैं। सबसे बड़ी कमी है व्यवस्था में, जो कि उन समस्याओं का मूल कारण जाने बिना उन्हें हल कर पाने की कोशिश कर रही है। आज भी शोषण जारी है, सिर्फ स्वरूप बदला है। क्योंकि पूँजीवादी व्यवस्था की तरफ़ भारत बढ़ा चला जा रहा है। जहाँ सिर्फ़ दो वर्ग हैं एक नौकरी देने वाला दूसरा नौकरी करने वाला, एक शोषण करने वाला दूसरा जिसका शोषण हो रहा है। भारतीय समाज जहाँ ज्यादातर लोग गाँव में रहते हैं, गरीब हैं, वहाँ के लिए पूँजीवादी व्यवस्था तो ठीक हो ही नहीं सकती। इस लिए हमारे देश के कुछ महान व्यक्तियों ने इस देश को समाजवादी गणराज्य के रूप में स्थापित करने का लक्ष्य रखा, जिसका भारतीय संविधान में भी उल्लेख किया गया है। यदि अपने देश में फैली इन समस्याओं से निजात पाना है तो आवश्यकता है एक वैचारिक आंदोलन की, जिसे समाजवाद कहते हैं और जिसका उत्कृष्ट रूप है सर्वोदय अर्थात् सबका उदय हो, सबका उत्थान हो।

भारतीय संविधान की उद्देशिका में वर्णित है कि “हम भारत के लोग, भारत को एक संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न, समाजवादी, पंथनिरपेक्ष, लोकतंत्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को-

“सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय, विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतंत्रता प्रतिष्ठा और अवसर की समता

प्राप्त कराने के लिए, तथा उन सब में व्यक्ति की गरिमा और राष्ट्र की एकता और अखंडता सुनिश्चित करने वाली बंधुता बढ़ाने के लिए दृढ़ संकल्प होकर अपनी इस संविधान सभा में आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. को एतद्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मर्पित करते हैं।”

उपर्युक्त पंक्तियों से यह परिलक्षित होता है कि हमारे देश के महापुरुषों ने भारत के लिए एक सुनहरा स्वप्न देखा, एक लक्ष्य निर्धारित किया इस देश को समाजवादी देश के रूप में विकसित करने का। परंतु क्या समाजवाद के बिना वास्तव में प्रजातंत्र आएगा? सामाजिक समता एवं बंधुता स्थापित होगी? क्या जो उपर्युक्त उद्देश्य भारत के लिए रखे गए वे पूर्ण हो पाएंगे? नहीं, फिर तो वह भारतीय संविधान की पुस्तक एवं नारों तक ही सीमित हो जाएगा। बिना समाजवाद न तो वास्तविक प्रजातंत्र होगा और न ही सामाजिक समता व बंधुता स्थापित होगी, पर यह समाजवाद है क्या, इसका क्या अर्थ है?

### समाजवाद

समाजवाद समकालीन युग की सर्वाधिक लोकप्रिय व महत्वपूर्ण विचारधारा है जिसकी लोकप्रियता ने इसे अत्यधिक प्रचलित विचारधारा बना दिया।

सर्वप्रथम अपने महान ग्रंथ ‘रिपब्लिक’ में प्लेटो (417-347 बी. सी.) ने आदर्श राज्य का जो चित्रण किया उसमें समाजवाद के बीज निहित हैं। आदर्श राज्य के दो प्रथम वर्गों - शासक एवं सैनिक वर्ग के लिए वह निजी संपत्ति एवं परिवार का निषेध करता है। प्लेटो के अनुसार निजी

संपत्ति का मोह भ्रष्टाचार, दुराचार तथा अत्याचार का प्रमुख कारण है।

भारतवर्ष में भी इस समाजवादी चिंतन को विशेष महत्व दिया गया एवं पसंद किया गया। यहाँ तक कि स्वतंत्रता उपरांत भारत के विकास का जो प्रारूप तय हुआ वह समाजवादी व्यवस्था पर आधारित था।

भारत में सर्वाधिक लोकप्रिय रहे समाजवादी विचारक जयप्रकाश नारायण के अनुसार,

*“समाजवादी समाज एक ऐसा वर्गहीन समाज होगा जिसमें सब श्रमजीवी होंगे। इस समाज में वैयक्तिक संपत्ति के हित के लिए मनुष्य के श्रम का शोषण नहीं होगा। इस समाज की सारी संपत्ति सच्चे अर्थों में राष्ट्रीय अथवा सार्वजनिक संपत्ति होगी तथा अनार्जित आय और आय संबंधी भीषण असमानताएँ सदैव के लिए समाप्त हो जाएंगी। ऐसे समाज में मानव जीवन तथा इसकी प्रगति योजनाबद्ध होगी और सब लोग सबके हित के लिए जिएँगे।”*

जयप्रकाश नारायण ने समाजवाद के तीन स्वरूप बताए—

1. जो समाजवाद हिंसा से, बलपूर्वक स्थापित किया गया हो, वह तामसिक यानी 'साम्यवाद' है।
2. जो समाजवाद कानून से राज्य-शक्ति द्वारा स्थापित किया गया हो, वह राजसिक समाजवाद यानी 'लोकतांत्रिक समाजवाद' है।
3. और जो समाजवाद स्वेच्छा पूर्वक जनता के विचारों तथा व्यवहारों में परिवर्तन लाकर स्थापित होता है, वह सात्विक समाजवाद यानी 'सर्वोदय' है।

**जयप्रकाश का समाजवादी चिंतन** — भारत के समाजवादी चिंतकों में जयप्रकाश नारायण का नाम प्रमुख रूप से आता है। इनका चिंतन अन्य समाजवादी चिंतकों से कुछ अलग रहा है क्योंकि यह प्रारंभ में कार्लमार्क्स के समाजवादी विचारों से प्रभावित होते हुए समाजवाद के उत्कृष्ट रूप सर्वोदय को आत्मसात करते हैं। जयप्रकाश नारायण का समाजवाद सिर्फ व्यवस्था परिवर्तन की बात नहीं करता बल्कि यह वैचारिक आंदोलन की बात करता है।

जयप्रकाश की विचारधारा में हमेशा सकारात्मक दिशा में परिवर्तन होता रहा और यह परिवर्तन था समाजवाद से सर्वोदय। उनके विचारों को हम दो सोपान में वर्गीकृत कर सकते हैं—

1. स्वतंत्रता पूर्व समाजवादी विचारधारा
2. स्वतंत्रता उपरान्त सर्वोदय विचारधारा

**(1) स्वतंत्रता पूर्व समाजवादी विचारधारा—**

जयप्रकाश नारायण जब उच्च शिक्षा हेतु अमेरिका गए तो वहाँ वह कार्लमार्क्स के समाजवादी विचारों से बहुत प्रभावित हुए। वह हिंसक आंदोलन द्वारा व्यवस्था परिवर्तन करने में विश्वास करने लगे, और वह स्वतंत्रता तक इन्हीं विचारों से प्रभावित रहे।

**(2) स्वतंत्रता उपरांत समाजवादी विचारधारा—**

स्वतंत्रता के उपरान्त महात्मा गाँधी के मृत्यु के बाद उनका हिंसा से मोह भंग हो गया और उन्होंने सर्वोदय की विचारधारा को आत्मसात कर लिया जो समता लाने हेतु वैचारिक आंदोलन पर बल देता है। उन्होंने कहा कि यह आंदोलन अहिंसक होना चाहिए, लोगों के विचारों में परिवर्तन ला कर ही समता स्थापित हो सकती है।

जय प्रकाश के विचारों में कभी भी कट्टरता नहीं रही, वह हमेशा प्रयोगवादी रहे। वह उन्हीं विचारों को ठीक मानते थे जो व्यक्ति व समाज को सही दिशा प्रदान कर सकें। उनके विचारों में भी सकारात्मक परिवर्तन आते रहे। शिक्षा ग्रहण करने के दौरान वह मार्क्सवाद से प्रभावित हुए तो महात्मा गाँधी की मृत्यु के उपरांत गाँधी के विचारों से। पहले वह हिंसक समाजवाद के समर्थक रहे तो बाद में अहिंसक समाजवाद (सर्वोदय) के समर्थक हो गए।

मुख्यतः जयप्रकाश नारायण के चिंतन पर मार्क्सवाद एवं सर्वोदय विचारधारा का प्रभाव पड़ा। **मार्क्सवाद का प्रभाव** – सन् 1924-25 में जब जयप्रकाश विस्कासिन विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे, तभी वे मार्क्सवादी साहित्य के और मार्क्सवादी विचारधारा के सम्पर्क में आए। उन्होंने आगे चलकर लिखा भी था,

“मार्क्सवाद ने समानता और बंधुता की एक और ज्योति मेरे लिए जला दी। केवल स्वतंत्रता पर्याप्त नहीं थी। उसका अर्थ होना चाहिए, सबकी जो लोग सबसे नीचे के स्तर पर हैं, और सबसे पीछे हैं, उनकी भी स्वतंत्रता। और इस स्वतंत्रता में शोषण, भुखमरी और दरिद्रता से मुक्ति का भी समावेश होना चाहिए।”

जयप्रकाश की आँखों के सामने मार्क्सवादी समाजवाद का सपना था परंतु वह मार्क्सवाद को ऐसा स्वरूप देना चाहते थे, जो हिंदुस्तान की परिस्थिति के अनुरूप हो। वे कहते थे

“मैं मार्क्स को मानता हूँ। मैं स्टालिन से और दूसरे कड़ियों से अधिक अच्छा मार्क्सवादी हूँ। मार्क्सवाद मेरे विचारों का आधार है। लेकिन

मैं मार्क्सवाद को एक विज्ञान मानता हूँ। विज्ञान सत्य की खोज करता है, और सत्य तो सापेक्ष वस्तु है। उसमें कट्टरता की कोई गुंजाइश नहीं। मनुष्य के ज्ञान भण्डार में से मिथ्या ज्ञान को उत्तरोत्तर दूर करते रहने से विज्ञान की प्रगति होती है। यदि मार्क्सवाद एक विज्ञान है, तो मार्क्स ने जो कहा वही अंतिम सत्य है, इस तरह की कट्टरता उसमें चल नहीं सकेगी। देशकाल के अनुसार उसमें आवश्यक सुधार और घटा बढ़ी करते रहना चाहिए। इसलिए हमें हिंदुस्तान की आज की परिस्थिति के अनुरूप मार्क्सवाद के स्वरूप को विकसित करना चाहिए।”

**मार्क्सवाद का त्याग** – महात्मा गाँधी की मृत्यु के उपरांत जयप्रकाश के विचारों में परिवर्तन होने लगा, वह मार्क्सवाद से सर्वोदय की तरफ बढ़ने लगे। तीव्र मनोमंथन और चिंतन के अंत में जयप्रकाश इस निश्चय पर पहुँचे कि मार्क्स का द्वंद्वत्मक भौतिकवाद मनुष्य को भलाई की और अच्छा बनने की प्रेरणा नहीं दे सकता। उन्होंने कहा,

“बहुत वर्षों तक मैंने द्वंद्वत्मक भौतिकवाद की देवी की पूजा की है। दूसरी किसी भी फिलॉसफी की तुलना में द्वंद्वत्मक भौतिकवाद की फिलॉसफी बौद्धिक दृष्टि से मुझे अधिक संतोषकारक लगी थी। यद्यपि फिलासफी की मेरी मुख्य खोज अभी भी अधूरी और अतृप्तकारक रही है, फिर भी एक बात मेरे सामने दीये की तरह स्पष्ट हो चुकी है कि किसी भी प्रकार का भौतिकवाद सच्चे अर्थ में मनुष्य को मनुष्य बनने के साधनों से ही बिल्कुल वंचित कर देता है। भौतिक संस्कृति में



मनुष्य के लिए अच्छा मनुष्य बनने की कोई बुद्धिगम्य प्रेरणा रहती ही नहीं। इसलिए मुझे पक्का विश्वास हो चुका है कि भलाई की और अच्छा बनने की प्रेरणा के लिए मनुष्य को भौतिकवाद से ऊपर उठना पड़ेगा। इसका अर्थ यह हुआ कि सामाजिक नवनिर्माण का काम भौतिकवादी फिलासफी के अंतर्गत कभी सफल नहीं हो सकेगा।”

**सर्वोदय का प्रभाव** — सन् 1952 के पश्चात जब जयप्रकाश विनोबा भावे के सम्पर्क में आए तब उनके विचारों पर सर्वोदय का बहुत ही गहरा प्रभाव पड़ा। अब वह हिंसक आंदोलन के द्वारा समाजवाद स्थापित करने के स्थान पर वैचारिक आंदोलन के माध्यम से लोगों के विचारों, व्यवहारों में परिवर्तन लाकर समाजवाद की स्थापना पर जोर देने लगे।

**मूल्य शिक्षा** — जयप्रकाश जिस सर्वोदय की स्थापना करना चाहते थे वह किसी राजशक्ति द्वारा नहीं हो सकती थी, बल्कि इसके लिए वह प्रत्येक व्यक्ति के नैतिक, वैचारिक एवं जीवन मूल्यों में बदलाव कर उसे समाजवादी विचारों वाला मानव बनाना चाहते थे। उन्होंने कहा, “समाजवादी और आदर्शवादी युग-युगांतरों से जिस नवसमाज की रचना करने का सुनहरा सपना देखते रहे हैं, वह तो जब तक स्वयं मनुष्य में परिवर्तन नहीं आएगा, तब तक किसी काल में भी सिद्ध नहीं होगा। केवल एक आर्थिक और राजनीतिक तंत्र का ही नाम समाजवाद नहीं। समाजवाद का संबंध समाजवादी सभ्यता और समाजवादी मनुष्य से है। मेरे मन में यह बात दृढ़ है कि यदि समाजवादी संस्कृति का निर्माण करना

है, समाजवादी मानव का निर्माण करना है, तो यह काम कानून के जरिए नहीं हो सकता। ..... मुझे विश्वास हुआ कि समाजवाद का सही उद्देश्य और सही दर्शन सर्वोदय में है। सर्वोदय की स्थापना राजशक्ति द्वारा नहीं हो सकेगी, बल्कि भूदान-ग्रामदान-आंदोलन तथा उसी प्रकार की दूसरी प्रक्रियाओं द्वारा नैतिक, वैचारिक एवं जीवन मूल्यों में क्रान्ति करके ही हो सकेगी।”

जयप्रकाश के समाजवादी चिंतन में एक अनोखापन रहा। उनका कहना था कि मनुष्य की भौतिक आवश्यकताओं की यथोचित पूर्ति होनी चाहिए। वह व्यक्ति और समाज की भौतिक समृद्धि तो चाहते थे, परंतु इस भौतिक समृद्धि को ही अपना परम लक्ष्य माना जाए इसका विरोध करते थे। वह यह बिल्कुल नहीं चाहते थे कि मनुष्य भौतिक समृद्धि को ही अपना आराध्य देव बना ले और भौतिक पदार्थों की अतृप्त भूख को ही पूरा करने में हमेशा लगा रहे। वह चाहते थे कि भौतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा के मध्य समुचित समन्वय होना चाहिए। अर्थात् वह यह चाहते थे कि मनुष्य को जो भौतिक शिक्षा मिले उस पर अध्यात्म का अंकुश हो, अन्यथा वह समाज के लिए हितकर होने के बजाए अहितकर हो जाएगी। सोखदेवरा-आश्रम के लिए जो ग्राम निर्माण मण्डल बनाया गया था, उसके उद्देश्यों में उन्होंने लिखा था,

“मानव के जीवन मूल्यों में ऐसा परिवर्तन लाने का प्रयत्न करना, जिससे व्यक्ति-हित लोक-हित से और भौतिक आकाँक्षा आध्यात्मिक प्रेरणाओं से पोषित हों।”

जयप्रकाश नारायण के समाजवादी चिंतन में

निम्नलिखित मूल्य शिक्षा के तत्व प्रमुख रूप से मिलते हैं—

(क) भौतिकवाद से ऊपर उठ कर मानवीय मूल्यों को संरक्षण।

(ख) आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

(ग) **भौतिकवाद का निषेध एवं मानवीय मूल्यों की शिक्षा** — जयप्रकाश जी सामाजिक नव निर्माण हेतु प्रत्येक मनुष्य को भौतिकवाद से ऊपर उठाकर उसे मानवता की शिक्षा देना चाहते थे। प्रत्येक मनुष्य को दूसरे मनुष्य के लिए कुछ अच्छा करना चाहिए। उसे परोपकारी होना चाहिए। भौतिकता मनुष्य को निजी स्वार्थ की तरफ ले जाती है, भौतिकवाद ही सारी बुराइयों की जड़ हैं, इसी कारण हिंसा है, भ्रष्टाचार है, अलगाव है, पूँजीवाद का बोलबाला है। इसलिए इनसे मनुष्य को दूर कर मानवता की शिक्षा, आत्मबोध की शिक्षा देनी चाहिए।

उन्होंने कहा “अगर सब कहीं भौतिकवाद का ही बोलबाला हो, तो मनुष्य अच्छा किसलिए बने? वह दूसरों के लिए क्यों खपे और खटे? नैतिक आचरण क्यों करें? न कोई ईश्वर है, न आत्मा है, न नीतिमत्ता है, और न इस जीवन से परे दूसरी कोई चीज़ है। मनुष्य जड़ द्रव्यों का एक समुच्चय मात्र है। आकस्मिक रीति से वह अस्तित्व में आ गया है, और वापस फिर जड़ द्रव्यों के अनंत महोदधि में समा जाने वाला है। ऐसी भौतिकवादी फिलासफी की नींव पर सामाजिक नवनिर्माण संभव नहीं है। एक अंतिम सत्य के रूप में जड़ भौतिकवाद का निषेध करके ही हम मनुष्य का नैतिक स्तर पर ऊँचा

उठा सकते हैं, और उसे अपना सर्वोच्च विकास करने की प्रेरणा दे सकते हैं। भौतिकवाद से ऊपर उठकर ही मनुष्य स्वयं अपना नियंता बन सकता है और पूर्ण मानवता की साधना कर सकता है। इस प्रकार के मानवों के नवनिर्माण के बिना समाज का नवनिर्माण करना असंभव है। मैं केवल शरीर नहीं हूँ, चैतन्य हूँ, चारों ओर व्याप्त चैतन्य का अंश हूँ। इस चैतन्य की परिपूर्णता के लिए मुझे अच्छा बनना चाहिए।”

**आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा** — जयप्रकाश नारायण अहिंसा के माध्यम से व्यक्ति के विचारों में परिवर्तन कर समाजवाद स्थापित करना चाहते थे, जिसके लिए उन्होंने आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा पर बल दिया। इनके अनुसार आध्यात्मिक शिक्षा का अर्थ धार्मिक शिक्षा नहीं थी, बल्कि आत्मबोध की शिक्षा थी। ऐसी शिक्षा जो मनुष्यों में यह भाव उत्पन्न करे कि जो हम हैं, वही आप हैं, हम सब एक ही हैं तभी सबमें समान भाव उत्पन्न होगा, समता का भाव विकसित होगा, समाजवाद स्थापित होगा। इन आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा पर अहिंसा ही आधारित हो सकती है। जब यह भाव उत्पन्न हो जाए कि हम और तुम दोनों एक ही हैं, हम सब एक ही चैतन्य के अंश हैं तो ना शोषण होगा, न हिंसा होगी, बल्कि अहिंसा, प्रेम, दया, करूँगा इत्यादि मूल्य मानव में उत्पन्न होंगे।

उनके अनुसार—

“आध्यात्मवादी बने बिना अहिंसा टिक नहीं सकेंगी बिना इस भावना के कि मैं और आप दोनों एक हैं, समाजवाद, सर्वोदय आदि किस तरह स्थापित हो सकेंगे? अतएव अध्यात्म तो अहिंसा और सर्वोदय की नींव है।”

परंतु इस अध्यात्म को वह बुढ़ापे का विषय नहीं मानते थे बल्कि उनका विचार था कि व्यवस्था परिवर्तन करना जवानों का उत्तरदायित्व है, सर्वोदय स्थापित करना इन जवानों का कार्य है, इसलिए इन अध्यात्मिक मूल्यों की भी इन्हीं को ज्यादा आवश्यकता है क्योंकि वह जानते थे कि इन मूल्यों के अभाव में आंदोलन हिंसक हो जाएगा और स्वेच्छा से वैचारिक परिवर्तन कर समाजवाद स्थापित करने के बजाए बल प्रयोग कर समाजवाद स्थापित करने का प्रयास किया जाएगा।

जयप्रकाश जी ने कहा,

“अब बात रही बुढ़ापे की और अध्यात्म की। इस देश का अध्यात्म बूढ़ों की वस्तु नहीं, जवानों की वस्तु रही है। जब हृषिकेश ने जीवन के कुरुक्षेत्र में अपूर्ण अध्यात्म का पाँचजन्य फूँका था, तब वे वृद्ध नहीं, बल्कि युवा थे। उस समय वे भारत की उत्कृष्ट तरुणाई के रथ के सारथी थे जब अपनी प्रिया की गोद में नवजात राहुल को सोता हुआ छोड़कर सिद्धार्थ अपनी अद्वितीय सांस्कृतिक क्रांति के पथ पर चल पड़े थे, तो वे वृद्ध नहीं युवा थे। अद्वैत के अनन्यतम शोधक शंकर ने जब अपनी दिग्विजय-यात्रा की थी, तब वे वृद्ध नहीं युवा ही थे जब विवेकानन्द ने शिकागो के मंच से वेदांत के सार्वभौम धर्म का उद्घोष किया था, तब वे वृद्ध नहीं युवा थे। दक्षिण अफ्रीका के रंगभेद के दावानल में कूद कर जब गाँधी ने अध्यात्म के आग्नेय शास्त्र का प्रयोग किया था, तब वे वृद्ध नहीं युवा थे। नहीं मित्रों ! अध्यात्म बुढ़ापे की बुढ़ाई नहीं है, वह तो तरुणाई

की उत्तुंगतम उड़ान है। जिस सांस्कृतिक क्रांति के बिना भारत की और भारतीयता की रक्षा करना कठिन मालूम होता है, उसके सैनिक और सेनापति तरुण ही हो सकते हैं। और, ऐसी मानवीय क्रांति अवश्य होगी। ऐसी एक क्रांति, जिसमें भारत का अध्यात्म व्यक्ति-व्यक्ति के जीवन में उतर आएगा। तब व्यक्ति समाज के हित में अपना हित देखेगा। ऐसी क्रांति के बिना न तो समाजवाद आएगा और न साम्यवाद। सर्वोदय तो इस क्रांति का दूसरा नाम ही है।”

अतः जयप्रकाश के समाजवादी चिंतन में निम्नलिखित मूल्य शिक्षा के तत्वों का समावेश मिलता है—

- (i) भौतिकवाद का निषेध
- (ii) मानवता
- (iii) निजी स्वार्थ का त्याग
- (iv) परोपकार
- (v) अहिंसा
- (vi) प्रेम
- (vii) करुणा
- (viii) समता

उपर्युक्त सभी मूल्यों को मनुष्य में उतारने हेतु, एक वैचारिक परिवर्तन करने हेतु आवश्यक है — अध्यात्म। अर्थात् सभी में आत्मबोध हो, और सभी को यह ज्ञान हो कि सब जीवधारी भी वही हैं।

### निष्कर्ष

इस प्रकार हम देखते हैं कि जयप्रकाश नारायण के समाजवादी चिंतन में विभिन्न मूल्य शिक्षा के तत्व

मिलते हैं जो किसी भी सभ्य समाज के लिए आवश्यक हैं। यह मूल्य-शिक्षा निम्नलिखित हैं—

- (i) भौतिकवाद का निषेध कर मानवता की शिक्षा देना, निजी स्वार्थ छोड़कर सभी मनुष्यों के भले की सोचें ऐसी शिक्षा देना।
- (ii) सभी आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा देना जिसमें प्रमुख हैं— अहिंसा, प्रेम, दया, करुणा, समता इत्यादि। और यह शिक्षा तरुणों हेतु आवश्यक होनी चाहिए क्योंकि उन्हीं के ऊपर व्यवस्था परिवर्तन एवं समाजवाद स्थापित करने का उत्तरदायित्व है।

जयप्रकाश ने जिस अध्यात्म की बात की उनके अनुसार उस अध्यात्म का अर्थ है आत्मबोध अर्थात् जो हम हैं वही तुम हो, और अन्य सभी भी

वही हैं। यदि ऐसा वैचारिक परिवर्तन होगा तभी व्यक्ति के मन में अहिंसा, प्रेम, दया, करुणा एवं समता का भाव टिका रहेगा।

आज की वर्तमान परिस्थिति में जहाँ एक तरफ़ मनुष्य अपने निजी स्वार्थ में भौतिकवाद को महत्व देता हुआ भ्रष्टाचार में लिप्त है, निजी संपत्ति को बढ़ाने में लगा हुआ है, प्रेम, दया, करुणा से दूर होता जा रहा है। वहीं दूसरी तरफ़ अन्य इस समस्या से निकलने हेतु हिंसा का रास्ता अपना रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में जयप्रकाश नारायण के इन मूल्य-शिक्षा के तत्वों को प्रभावी विधि द्वारा लोगों को देने की आवश्यकता है जिससे वास्तव में समाजवाद अर्थात् सर्वोदय की स्थापना हो सकें।

## संदर्भ

- नारायण, जयप्रकाश, 2002. *समाजवाद से सर्वोदय की ओर*, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी.
- 1966. *शिक्षण और शांति*, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी.
- 1974. *देश की तरुणाई को आह्वान*, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी.
- 1974. *संपूर्ण क्रांति के लिए आह्वान*, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी.
- 1978. *टूवर्ड्स टोटल रिवोलूशन -सर्च फार एन आइडियोलजी*, पापुलर प्रकाशन, बाम्बे.
- 2001. *मेरी विचार यात्रा-भाग I*, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी,
- 1997. *मेरी विचार यात्रा-भाग II*, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी.
- 2002. *कारावास की कहानी*, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी.
- शाह, कान्ति, जयप्रकाश की जीवन यात्रा, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी.

## शिक्षण-अधिगम प्रक्रियाएँ और निर्मितीवाद

संदीप कुमार\*

कक्षा में शिक्षण हेतु पाठ योजनाओं के निर्माण के संदर्भ में विभिन्न उपागम भिन्न-भिन्न तरह की समझ प्रस्तुत करते हैं। इन उपागमों में निर्मितीवाद भी एक है। प्रस्तुत लेख में पाठ योजना निर्माण के निर्मितीवादी उपागम को स्पष्ट किया गया है। विद्यार्थियों के सीखने के स्वरूप को लेकर लेख की शुरुआत की गई है। जिसके तहत स्पष्ट किया गया है कि विद्यार्थी किस प्रकार ज्ञान का निर्माण करते हैं। इसके बाद लेख निर्मितीवादी कक्षा में ज्ञान का स्वरूप क्या होगा की चर्चा करता है। साथ ही निर्मितीवादी कक्षा में अध्यापक की भूमिका की भी चर्चा की गई है। निर्मितीवादी उपागम के अनुसार पाठ योजना के निर्माण हेतु समझ को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है जिसके तहत कक्षा में विद्यार्थियों की सलग्नता, संप्रत्ययों का खुलासा करना, व्याख्या करना आदि को पाठ योजना के निर्माण के संदर्भ में स्पष्ट किया गया है।

निर्मितीवाद एक ऐसा उपागम है जिसका आधार अवलोकन तथा वैज्ञानिक अध्ययन करना है..... कि हम कैसे सीखते हैं? इसका मानना है कि लोग अपने जगत का ज्ञान तथा समझ स्वयं ही सृजित करते हैं, तथा इस ज्ञान तथा समझ को सृजित करने का आधार उनके अनुभव तथा उन अनुभवों पर किया जाने वाला आत्मलोचन (रिलेक्शन) है। जे.एस.चॉल (2000) के अनुसार जब हम किसी नए ज्ञान के संपर्क में आते हैं तो हम उसे अपने पूर्व सृजित विचारों तथा अनुभवों के साथ जोड़ने का प्रयास करते हैं। इस प्रयास में हम उस सूचना को अपना भी सकते हैं और औचित्यहीन कहकर उसे अस्वीकृत भी कर सकते हैं। लेकिन किसी भी परिस्थिति में हम अपने ज्ञान के स्वयं ही सक्रिय निर्माता हैं। ऐसा करने हेतु हमें प्रश्न उठाना होगा, खोज (एक्सप्लोर) करनी होगी तथा मूल्यांकित करना होगा कि हम क्या जानते हैं?

\*प्रवक्ता, शिक्षा संकाय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली- 110007

अधिगम का निर्मितीवादी दृष्टिकोण कक्षा के दौरान विभिन्न गतिविधियों की बात को उठाता है। इसका सामान्यतः अर्थ है कि यह विद्यार्थियों को विभिन्न सहायताओं तथा अवसरों के द्वारा ज्ञान निर्माण की बात करता है। तथा उस ज्ञान पर आत्मलोचन करने तथा यह बात करने की, कि वह क्या कर रहा है? और कैसे उसकी समझ में बदलाव आ रहा है। जे. एस. चॉल के मतानुसार अध्यापक के लिए भी आवश्यक है कि वह विद्यार्थियों की पूर्व सृजित समझ को जाने तथा उसे शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया का हिस्सा बनाए।

निर्मितीवादी अध्यापक लगातार विद्यार्थियों को इस बात के लिए प्रोत्साहित करता है कि किस प्रकार अमुक गतिविधि उन्हें अपनी समझ को निर्मित करने में सहायता कर रही है। विद्यार्थियों की चिंतन प्रक्रिया तथा पद्धतियों पर प्रश्न उठाकर निर्मितीवादी कक्षा का विद्यार्थी एक कुशल अधिगमकर्ता बन जाता है। ऐसा करना उसको अधिगम प्रक्रिया का हिस्सा बनाता है। अतः यथोचित रूप से नियोजित कक्षा का वातावरण विद्यार्थियों को यह सीखने का अवसर देता है कि अधिगम कैसे होता है?

जब विद्यार्थी लगातार अपने अनुभवों पर आत्मलोचन करता है तो वह अपने विचारों में एक जटिलता पाता है और यही जटिलता उस नए ज्ञान को पूर्व सृजित ज्ञान के साथ समाहित करने की योग्यता प्रदान करती है। इसी कारण अध्यापक की एक महत्वपूर्ण भूमिका विद्यार्थियों को आत्मलोचन के लिए प्रोत्साहित करना है।

कुछ आलोचनाओं का जवाब देते हुए कहा जा सकता है कि निर्मितीवाद अध्यापक तथा

अनुभवी के ज्ञान के मूल्य को नकारता नहीं है बल्कि वह उसमें कुछ परिवर्तन करता है ताकि अध्यापक विद्यार्थियों की ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया में मदद कर सके। सामाजिक निर्मितीवादी अध्यापक विद्यार्थियों को सामूहिक अधिगम की प्रक्रियाओं द्वारा अपने विचारों, समझ तथा ज्ञान को सृजित करने के अवसर समस्या समाधान पद्धति, अन्वेषण पद्धति आदि के माध्यम से उपलब्ध कराता है। सामाजिक निर्मितीवाद एक विद्यार्थी को निष्क्रिय रूप से ग्रहण करने वाले के स्थान पर अधिगम प्रक्रिया का सक्रिय भागीदार बनाता है। अतः वे अपने दैनिक जीवन के अनुभवों तथा पूर्व सृजित ज्ञान को आधार बनाकर स्वयं को अधिगम प्रक्रिया का हिस्सा बनाते हैं।

निर्मितीवादी कक्षा में ध्यान केंद्रण अध्यापक से विद्यार्थी पर चला जाता है। कक्षा का स्वरूप वह नहीं रह जाता जहाँ एक अध्यापक विद्यार्थी को सूचनाओं का हस्तांतरण ऐसे करता है जैसे— विद्यार्थी बस इसी की प्रतिक्षा में थे। निर्मितीवादी कक्षा में विद्यार्थियों को अधिगम प्रक्रिया का हिस्सा बनने के लिए तथा स्वयं अपने ज्ञान को बनाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। भारती बवेजा (2005) के अनुसार अध्यापक की भूमिका एक सहायक के समान होती है जो चल रही शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को सहायता प्रदान करता है।

तब प्रश्न उठता है कि निर्मितीवादी कक्षा में अधिगम क्या है? यहाँ अधिगम को इस प्रकार समझें—

- विद्यार्थी खाली स्लेट नहीं जिस पर ज्ञान लिखा जाए। वे अपने पूर्व निर्मित ज्ञान, विचारों

- तथा समझ के साथ अधिगम परिस्थितियों में आते हैं। यह निर्मित ज्ञान कच्ची सामग्री है जिस पर वे नए ज्ञान का निर्माण करेंगे।
- विद्यार्थी वह व्यक्ति है जो अपने लिए नई समझ तथा अर्थ सृजित करता है तथा अधिगम गतिविधियाँ विद्यार्थी की सहभागिता को महत्त्व देती हैं।
  - विद्यार्थी अपने अनुभवों पर आत्मलोचन करके, अपने ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया को नियंत्रित करता है। यह प्रक्रिया उन्हें अपने ही अधिगम के संदर्भ में विशेषज्ञ बना देती है। अध्यापक एक ऐसे वातावरण का निर्माण करता है जिसमें विद्यार्थियों को प्रश्न करने तथा अपने विचारों की प्रक्रिया पर आत्मलोचन करने का अवसर मिले। ऐसे अवसर व्यक्तिगत भी हो सकते हैं और सामूहिक भी। अध्यापक को ऐसी गतिविधियों को बनाना होता है जिसके द्वारा विद्यार्थी अपने पूर्व ज्ञान पर आत्मलोचन तथा आत्म मूल्यांकन कर सके।
  - निर्मितीवादी कक्षा विद्यार्थियों के मध्य होने वाले सहयोग पर काफी हद तक निर्भर करती है। कई कारण हैं जो सहयोग की भूमिका को अधिगम प्रक्रिया में महत्त्व देते हैं। एक तो यही है कि इससे विद्यार्थी केवल स्वयं से ही नहीं बल्कि अपने साथी समूह से भी सीखते हैं। जब विद्यार्थी अपनी अधिगम प्रक्रियाओं पर आत्मलोचन करते हैं तो वे एक दूसरे से सहायता ले सकते हैं।
- इससे पूर्व की हम पाठ योजना के प्रारूप को समझे हम जान ले कि एक निर्मितीवादी अध्यापक की क्या विशेषताएँ होती हैं—
- उसे उन स्रोतों में से एक स्रोत बनना है जिनसे विद्यार्थी सीखते हैं, नाकि ज्ञान का प्राथमिक स्रोत।
  - विद्यार्थियों को उनके अनुभवों के साथ जोड़ना तथा व्यस्त करना ताकि उनके पूर्व सृजित ज्ञान के संदर्भ में बनी समझ को चुनौती दी जा सके।
  - विद्यार्थियों को ही पाठ को बढ़ाने का मौका तथा अवसर देना।
  - विचारपूर्ण तथा खुले प्रश्न पूछकर विद्यार्थियों को प्रश्न करने की योग्यता को विकसित करने के अवसर देना।
  - कार्य को देते समय संज्ञानात्मक पदों का प्रयोग करना। जैसे ' वर्गीकृत', 'विश्लेषित' 'सृजित'।
  - विद्यार्थियों की स्वतंत्रता तथा पहल को स्वीकार करना आदि।
- अब एक महत्वपूर्ण प्रश्न उठता है कि हम निर्मितीवादी प्रारूप को व्यवहार में कैसे लाएँ, तो इसके लिए हमें निम्नलिखित बिंदुओं को ध्यान रखना होगा।
- संपूर्ण पाठ तथा अनुदेशात्मक इकाई को विद्यार्थियों के प्रश्नों को आधार बनाकर संचालित किया जाए।
  - विद्यार्थियों के विचारों को स्वीकार तथा प्रोत्साहित करें।
  - प्रभावी अधिगम के लिए विद्यार्थियों को नेतृत्वपूर्ण, सहयोगात्मक (ढंग से) कार्य करने के अवसर को उपलब्ध कराया जाए।
  - पाठ के संचालन में विद्यार्थियों के अनुभवों, रुचियों तथा चिंतन को आधार बनाया जाए।

- विद्यार्थियों को ही प्रदान की गई समस्या के कारणों तथा समाधानों को ढूँढने का अवसर दें।
- अध्यापक को कोई भी विचार प्रकट करने से पहले विद्यार्थियों के विचारों को जान लेना चाहिए।
- विद्यार्थियों को एक दूसरे की समझ तथा सम्प्रत्ययीकरण को चुनौती देने के अवसर उपलब्ध कराएँ।
- निर्मित विचारों तथा समझ पर आत्मलोचन (रिफ्लेक्शन) तथा विश्लेषण के लिए पर्याप्त समय दें।
- आत्म विश्लेषण को प्रोत्साहित करें ताकि विद्यार्थी इसकी रोशनी में नए ज्ञान को निर्मित कर सकें।
- जहाँ तक संभव हो स्थानीय स्रोतों का प्रयोग करें।
- शिक्षण अधिगम प्रक्रिया को दैनिक जीवन की जटिलताओं के साथ जोड़ने का प्रयास करें आदि।

उपर्युक्त समस्त चर्चा ने हमें एक ऐसी पृष्ठभूमि प्रदान की है जिसके चलते हम सामाजिक निर्मितीवाद के आधार पर कक्षागत प्रक्रियाओं को समझ सकें। आइए इसी समझ के साथ सामाजिक निर्मितीवादी पाठ योजना के प्रारूप की चर्चा करें। सामाजिक निर्मितीवादी उपागम विशेष रूप से इस बात पर बल डालता है कि किस प्रकार विद्यार्थियों को ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया का हिस्सा बनाया जाए। इसी विचार तथा उपर्युक्त समझ के आधार पर आइए पाठ योजना का प्रारूप पर चर्चा करें।

**विद्यार्थियों को संलग्न करना** — इसके दौरान होने वाली प्रक्रिया विद्यार्थियों को दिए गए प्रश्न

या घटना (ईवेंट) में संलग्न करती है। संलग्नता (एंगेजमेंट) के दौरान होने वाली गतिविधियाँ विद्यार्थी की रुचि को बनाए रखती हैं तथा इस बात का अवसर भी उपलब्ध कराती हैं कि विद्यार्थी क्या जानते हैं तथा क्या और जानने के लिए क्या कर सकते हैं? इस प्रक्रिया की शुरुआत आप कैसे भी करें, निर्देशित या कम निर्देशित लेकिन इसका संचालन संप्रत्यय की जटिलता तथा विद्यार्थी की पृष्ठभूमि पर निर्भर करेगा। जब भी आप विद्यार्थियों को संलग्न करने का प्रयास करेंगे वह इस बात पर निर्भर करेगा कि विद्यार्थियों की कितनी रुचि उस कक्षा में उत्पन्न हो पाई है।

विद्यार्थियों की पाठ के साथ संलग्नता ही उसके सफल संचालन का साधन है। संलग्नता एक प्रारंभिक कार्य है जिसके माध्यम से विद्यार्थियों को कक्षागत गतिविधियों से जोड़ा जा सकता है। यहीं से विद्यार्थियों को अपने गत अनुभवों तथा पूर्व सृजित ज्ञान को विश्लेषित करने का अवसर मिलता है। अतः पाठ योजना में विद्यार्थियों को सहभागी बनाने के लिए संलग्नता प्रथम कदम है।

**सम्प्रत्यय का खुलासा (एक्सप्लोर) करना** — इसके बाद विद्यार्थियों को अपने कुछ और अनुभवों को व्यक्त करके विषयवस्तु का खुलासा करने का अवसर दिया जाना चाहिए। इस प्रक्रिया का उद्देश्य विद्यार्थियों को एक दूसरे के अनुभवों से परिचित कराके संप्रत्ययात्मक समझ तक पहुँचाने में सहायता करना है। खुलासा करते समय विद्यार्थियों को यथोचित समय मिलना चाहिए। यहाँ विद्यार्थी एक दूसरे के विचारों को भी विस्तारित कराने में सहायक होते हैं। अध्यापक यहाँ कुछ महत्वपूर्ण प्रश्नों या बिंदुओं को उठा सकता है जिससे



विद्यार्थियों की महत्वपूर्ण संप्रत्ययों के प्रति समझ को विकसित कर सके। अध्यापक की भूमिका एक सहायक की है जो कक्षागत चर्चा तथा गतिविधियों के संचालन में सहायता करेगा। आवश्यकता पड़ने पर कुछ अतिरिक्त प्रश्न गहन संप्रत्ययात्मक समझ को विकसित करने के अवसर उपलब्ध कराने हेतु पूछे जा सकते हैं।

**व्याख्या करना** — जब विद्यार्थी संप्रत्यय का खुलासा कर ले तभी उन पदों की वैज्ञानिक व्याख्या की जानी चाहिए जिन्हें वे पढ़ रहे हैं। अध्यापक किसी भी पद्धति से संप्रत्ययों को विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध करा सकते हैं लेकिन समस्त प्रक्रिया में विद्यार्थियों की भूमिका महत्वपूर्ण है। इसके उपरांत विद्यार्थियों को भी अवसर दिया जाना चाहिए कि उन्होंने अमुक संप्रत्यय के संदर्भ में क्या अनुभव किया तथा कैसे वे इसको अपने पूर्व सृजित ज्ञान का हिस्सा बना सकते हैं? पाठ के संचालन के दौरान यही वह समय है जब आप अधिगम संप्रत्ययों को एक क्रम में विद्यार्थियों के लिए उपलब्ध करा सकते हैं। यही वह स्थान है जब आपके अधिगम सिद्धांतों का प्रयोग होता है। यही वह स्थान है जहाँ विद्यार्थियों को ऐसे अवसर उपलब्ध होते हैं कि वे ठोस से अमूर्त तथा पूर्व सृजित ज्ञान से नए ज्ञान की ओर बढ़ें। एक अध्यापक की यहाँ भूमिका फीडबैक देने की तथा चर्चा को निर्देशित करने की है।

पाठ के विकास के दौरान एक अध्यापक ही ऐसा व्यक्ति है जो अपेक्षाकृत अधिक जानने के कारण समुचित अधिगम प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अध्यापक की भूमिका विद्यार्थियों के चिंतन की प्रक्रिया को सहायता पहुँचाना है।

हालाँकि यह सब करना शिक्षक के समक्ष चुनौती तथा कठिनाइयाँ अवश्य लाता है।

**विस्तारण करना** — अगला चरण विद्यार्थियों को संप्रत्ययों की समझ में विस्तार करने में सहायता करता है। विस्तारण विद्यार्थियों को नई परिस्थितियों में संप्रत्ययों के अनुप्रयोग को स्थान देता है। साथ ही इस बात के अवसर भी उपलब्ध कराता है, कि विद्यार्थियों ने जो अभी तक सृजित किया है, उसका प्रयोग वे नई संप्रत्ययात्मक समझ को विकसित करने में करें। विद्यार्थियों के मध्य अंतः क्रिया, विस्तारण की प्रक्रिया के लिए आवश्यक है। अपने विचारों की दूसरों के साथ चर्चा करके विद्यार्थी गहन संप्रत्ययात्मक समझ को विकसित कर पाएँगे।

विस्तारण करते समय अध्यापक का फीडबैक देना तथा चर्चा का हिस्सा बनना आवश्यक है। ताकि बिंदुओं पर सही दिशा में चर्चा को प्रोत्साहित किया जा सके। विस्तारण के साथ ही कक्षा चर्चा को समापन की ओर ले जाया जा सकता है। विस्तारण की प्रक्रिया विद्यार्थियों को अधिगम के अन्य अनेक अवसर देता है। जिसके कारण विद्यार्थी स्वयं को मूल्यांकित भी करते हैं कि उन्होंने क्या कुछ सृजित किया?

अतः उपर्युक्त चर्चा स्पष्ट करती है कि निर्मितीवाद कक्षा में प्रयोग होने वाली पाठ योजनाओं का निर्माण करते समय किन पहलुओं का और क्यों ध्यान रखना चाहिए। यह समझना आवश्यक है कि पाठ योजना निर्माण का केंद्रिय तत्व विद्यार्थी ही होगा। पर यह पाठ योजना एक सहायिका की तरह प्रयुक्त होती है जो पाठ को शुरू करने में तो मदद करती है परंतु कक्षागत

परिस्थितियों के अनुसार इसका प्रारूप प्रयोगात्मक अवस्था में लगातार बदलता रहता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम पाठ योजना निर्माण करते समय प्रक्रियाओं पर बल डालें

नाकि केवल परिणामों पर। उचित प्रक्रिया स्वाभाविक रूप से उचित परिणामों की घोटक है।

**नोट - प्रस्तुत लेख में निर्मितीवाद शब्द Constructivism के लिए प्रयोग हुआ है।**

### संदर्भ

- बांदूरा, ए. 1996. *सोशल फाउंडेशनस ऑफ थॉट एंड एक्शन — ए सोशल कॉग्निटिव थ्योरी*, एन.जे. प्रेंटिस हॉल. इंग्लेवुड क्लिफ़स.
- बाउंडरीडिस, ए. मोसिस 1998, *कंसट्रक्टिविज़म एंड एजुकेशन*, कंट्रीब्यूटेड पेपर एट एन इंटरनेशनल कॉफ्रेंस इन ग्रीस.
- बोमैन जे.के. 1994, 'द यूज़ ऑफ निमोनिक्स इन कंसट्रक्टिविस्ट टीचिंग.' डिस्टरेशन एबस्ट्रैक्ट्स इंटरनेशनल ह्यूमैनिटीज़ एण्ड सोशल साइंस, (वॉल्यूम 55).
- ब्रोफी 2002, *सोशल कंसट्रक्टिविस्ट टीचिंग — एफॉडेंस एंड कंसट्रेंट्स*, एल्संवियर, न्यूयार्क.
- ब्रूनर जे.एस. 1986, *एक्चुअल माइंड्स, पोसीबल वर्ल्ड्स*, कैंब्रिज, एम.ए. हारवर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस.
- \_\_\_\_\_ 1990, *एक्ट्स ऑफ मीनिंग*, कैंब्रिज एम.ए. हारवर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस.
- डेनियल्स एच. 2001, *वाइगोट्स्की एंड पेडगोगी, राउलेज फाल्मस 29 वेस्ट 35 स्ट्रीट, न्यू यार्क, न्यूयार्क 10001.*
- डीवी, जे. 1938, *एक्सपीरियंस एण्ड एजुकेशन*, न्यू यार्क, कोलियर-मैकमिलन.
- ड्रिस्कॉल 2000, *साइकोलोजी ऑफ लर्निंग फॉर इंस्ट्रक्शन बोस्टर*, एलिन एंड बेकन.
- फ्रांसिस, बेकन 1954, *एलीमेंट ऑफ एजुकेशनल रिसर्च*, न्यूयार्क, प्रेंटिस हाल.
- फ्रीडम, जे. एण्ड जी. कूबस 1996, *नेरेटिव थैरेपी; द सोशल कंसट्रक्शन ऑफ प्रेफरड रिएलिटीज़*, न्यूयार्क, नार्टन.
- गीट्ज़ सी. 1973, *द इंटरप्रेटेशन ऑफ कल्चर्स*, न्यूयार्क, बेसिक बुक्स.
- ग्रेडलर, एम. ई. 1997, *लर्निंग एंड इंस्ट्रक्शनस : थ्योरी इंटू प्रैक्टिस (थर्ड एडिशन)* अपर सैडल रीवर, एनजे, प्रेंटिस हाल
- ग्रीनफैल्ड, पी. एम. एण्ड ब्रमनर 1996, 'कल्चर एंड कॉग्निटिव ग्रोथ', इंटरनेशनल जर्नल ऑफ साइकोलोजी, वॉल्यूम 44.
- कफई, वाई., एण्ड एम., रेस्नीक 1996, *कंसट्रक्टिनीज़म — इन प्रैक्टिस — डेजिगनींग थिंकिंग एण्ड लर्निंग इन ए डीजिटल वर्ड* महवाह, एन.जे., लवनेस एरबूम एसोसियट.
- लावे जे. एण्ड इ. वेंगर 1991, *सिचुएटेड लर्निंग — लैजिटीमेट पेरीफरल पार्टीसिपेशन*, कैंब्रिज इंगलैंड, कैंब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस.

- लावे, जे. 1998, *कॉग्नीशन इन प्रेक्टिस — माइंड मैथेमेटिक्स एंड कल्चर इन एवरी डे लाइफ*, कैंब्रिज यूनीवर्सिटी प्रेस, कैंब्रिज.
- मीड, जी. एच. 1934, *माइंड सैल्फ सोसायटी*, यूनीवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रैस.
- मिशलर, इ. जी. 1979, *मीनिंग इन कॉन्टेक्ट — इज देयर एनी अदर काइंड?* हार्वर्ड एजुकेशनल रिव्यू, वॉल्यूम 49
- एन.सी.ई.आर.टी. *नैशनल करीकुलम फ्रेमवर्क (2005)*. श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली
- नूथल. 2002. *सोशल कंस्ट्रक्टिविस्ट टीचिंग एंड द शोपिंग ऑफ स्टूडेंट्स नॉलेज एंड थिंकिंग*, एलसेवियर, न्यूयार्क
- पाटनरी डब्ल्यू 2002, *ए वीजन ऑफ वाइगोट्स्की, ऐलन एंड बेकन, 75 आरलिंगटन स्टेट बोस्टन*, एम.ए. रोगोफ. बी. 1990, *एप्रेटेंसशिप इन थिंकिंग — कॉग्निटिव डेवलपमेंट इन सोशल कॉन्टेक्ट*, न्यूयार्क : ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस.
- स्टाफ एंड गेल 1995, *कंस्ट्रक्टिविज्म इन एजुकेशन*, न्यू जर्सी, लारेंस, एरीब्लौम एसोसिएट्स.
- टॉपिन, के. 1993, *द प्रेक्टिस ऑफ कंस्ट्रक्टिविज्म इन एजुकेशन*, लारेंस एरीबलम एसोसिएट्स, 365 ब्रॉडवे हिलीसडेल, न्यू जर्सी 07642.

## भारतीय परिप्रेक्ष्य में शांति शिक्षा

नृपेंद्र वीर सिंह\*

रेनु राय\*\*

---

आज की तालीम में दिमाग को जरूर तरजीह दी जा रही है लेकिन समाज के लिए सर्वाधिक आवश्यक हृदय के विकास की घोर उपेक्षा हो रही है। ऐसे में सामाजिक अंतर्विरोधों, आपसी द्वन्द्वों व अन्य विखण्डनकारी प्रवृत्तियों के रूप में वर्तमान सहस्राब्दी की प्रमुख चुनौतियों का सामना करने के लिए शांति शिक्षा अनिवार्य है। इसे एक विषय के रूप में नहीं वरन् सभी विषयों में अंतर्निहित सूक्ष्म व गुप्त पाठ्यक्रम के रूप में नयी पीढ़ी के समक्ष प्रस्तुत किया जाए तथा इसके लिए आवश्यक शिक्षण योजनाओं, व्यूहरचनाओं, तकनीकियों व युक्तियों का भरपूर प्रयोग किया जाए ताकि हमारा भविष्य सुरक्षित व सुखमय हो सके।

---

सूचना प्रौद्योगिकी तथा ज्ञान क्षेत्र में हुई क्रांति ने मानव को विकास और समृद्धि के अप्रतिम युग में पहुँचा दिया है। इस युग में चातुर्दिक विकास और समृद्धि के नित्य नए कीर्तिमान स्थापित हो रहे हैं। परंतु आवश्यकता से अधिक भौतिकता, अभिलाषा व अमानवीय कामनाओं के कारण आज मानव नित्य नैतिक, सामाजिक व मानवीय वर्जनाओं को भंग कर रहा है। मानव के इन कृत्यों ने उसे पुनः असभ्य और बर्बर की श्रेणी में लाकर खड़ा कर दिया है। इसका स्पष्ट चित्रण समाचार पत्रों तथा

समाचार चैनलों की खबरों में देखने को मिलता है जिसमें आतंकवादी घटनाओं एवं गुटीय दंगों, चोरी, हत्या, लूट, बलात्कार, जातिगत व वर्गगत उन्माद, नस्लवाद, सांप्रदायिकता आदि की बहुलता रहती हैं। ये खबरें हमें निरंतर याद दिलाती हैं कि हम अशांति युग में रहते हैं। अशांति की समस्या संभवतः अनादि काल से चली आ रही है जिसने वर्तमान युग में अत्यंत विकराल रूप धारण कर लिया है। प्रारंभ में शिक्षा प्रसार के अभाव को अशांति का जनक माना जाता था किंतु आज तो

---

\*शोधार्थी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

\*\*शोधार्थी, काशी हिंदू विश्वविद्यालय, वाराणसी, उत्तर प्रदेश

शिक्षा का प्रसार न केवल शहरों अपितु छोटे-छोटे गाँवों तक हो चुका है। (फिर भी अशांति में कमी की बजाउ वृद्धि ही हो रही है। जिस शिक्षा पद्धति से सभ्य सुसंस्कृत एवं मानवीय गुणों से सुशोभित नागरिकों का विकास होना चाहिए उसी के द्वारा असभ्य, अपराधी, स्वार्थी व अमानवीय दुर्गुणों से युक्त नागरिक तैयार हो रहे हैं। वर्तमान सामाजिक परिदृश्य इस बात/तथ्य का सूचक है कि सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा पद्धति व पाठ्यक्रम में परिवर्तन आवश्यक है। परिवर्तन की यह आवश्यकता शांति शिक्षा को पाठ्यक्रम में सम्मिलित किए जाने पर बल देती है। शांति शिक्षा की विषयवस्तु एवं सहगामी क्रियाओं का क्रियान्वयन ही नागरिकों में मानवता के प्रति प्रेम, अहिंसा, स्नेह, दया, करुणा, विश्वास, सहयोग, आदर, भाईचारा, सहनशीलता आदि गुणों का विकास कर सकता है।

अशांति की समस्या न केवल भारतीय सीमाओं तक सीमित है अपितु इसका स्वरूप वैश्विक है। आज प्रत्येक राष्ट्र शांति शिक्षा की आवश्यकता महसूस कर रहा है तथा इस ओर प्रयासरत भी है।

### विश्वस्तर पर शांति शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे प्रयास

विश्व स्तर पर विभिन्न देशों में शांति शिक्षा के पाठ्यक्रम का विकास किया गया है। विभिन्न देशों में शांति शिक्षा का पाठ्यक्रम मुख्यतः तीन पक्षों पर केंद्रित है संचार, सहयोग व समस्या समाधान। बुरुडी (1994), क्रोशिया व लाइबेरिया (1993) में इन पाठ्यक्रमों के क्रियान्वयन व शिक्षकों को प्रशिक्षित करने के लिए निर्देशन

पुस्तिकाओं (Manual) को तैयार किया गया है। इसी प्रकार की निर्देशन पुस्तिकाओं का उपयोग श्रीलंका में किया जा रहा है जो इस बात पर बल देता है कि विद्यालयों के मूल विषयों के साथ शांति शिक्षा को समंनित करके शिक्षण कार्यक्रम हो। सुडान में खेलकूद, कला व विज्ञान प्रोजेक्ट के माध्यम से विद्यार्थियों में सहयोग व सम्मान की भावना का विकास किया गया है। रवांडा, इजिप्ट, ब्रिटेन, आस्ट्रेलिया, लेबनान, श्रीलंका व अन्य कई देशों में शांति के संदर्भ में द्वंद्व वियोजन क्रियाओं व सामुदायिक सेवाओं आदि कार्यक्रमों को चलाया जा रहा है।

### भारत में शांति शिक्षा का विकास

यूनेस्को की 'Word Directory of Peace Research and Training Institutions (1994) की रिपोर्ट के अनुसार भारत में शांति शिक्षा के क्षेत्र में 25 ऐसे संस्थान हैं जो शांति शिक्षा से संबंधित शोध कार्य व शैक्षणिक कार्यक्रमों का क्रियान्वयन कर रहे हैं।

इस क्रम में सबसे पहले 1959 में गाँधी शांति प्रतिष्ठान की स्थापना नई दिल्ली में की गई। इसी तरह के कई अन्य संस्थान जैसे Gandhi Institute of Studies, वाराणसी (1961), The Center for Gandhian Studies and Peace Research, दिल्ली विश्वविद्यालय, Institute for Defence Studies & Analysis, Peace Research (1971), गुजरात विद्यापीठ और हाल ही में मालवीय सेंटर फॉर पीस रिसर्च (2009) की स्थापना बी. एच. यू., वाराणसी में की गई है। इसी क्रम में राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-

2005 के विकास की प्रक्रिया के दौरान शांति के लिए शिक्षा नामक राष्ट्रीय फोकस समूह की स्थापना की गई थी। इस समूह द्वारा तैयार किए गए आधार पत्र में स्कूलों में शांति के लिए शिक्षा हेतु कई संस्तुतियों के आधार पर राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 सुझाव देती है कि,

“शांति की शिक्षा एक ऐसे सरोकार के रूप में विकसित हो जो समूचे स्कूली जीवन पर छा जाए— पाठ्यचर्या, कक्षा का वातावरण, स्कूल प्रबंधन, शिक्षक-विद्यार्थी संबंध, और स्कूल से जुड़ी तमाम गतिविधियाँ। अतः यह आवश्यक है कि पाठ्यचर्या और परीक्षा का इस दृष्टि से मूल्यांकन हो कि कहीं ये विद्यार्थियों में अपर्याप्तता, निराशा, धीरज और असुरक्षा आदि के भावों को बढ़ावा तो नहीं दे रहे हैं। साथ ही, आसपास और मीडिया द्वारा प्रचारित हिंसा का बच्चों के मन पर जो नकारात्मक प्रभाव पड़ रहा है उसे सायास दूर कर नैतिक एवं शांतिपूर्ण जीवन के उद्देश्यों के गहरे अर्थों को विकसित किया जाए। शिक्षा सच्चे अर्थ में व्यक्तियों के अपने मूल्यों को स्पष्ट कर पाने में सहायक हो। उनको सजग निर्णय की दिशा में प्रेरित करें, हिंसा के स्थान पर शांति को चुनने के लिए प्रेरित करें, शांति निर्माण की प्रक्रिया से उन्हें जोड़े न कि केवल शांति के उपभोक्ता बने रहे।”

अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या शांति शिक्षा एक अलग विषय के रूप में लागू हो? या सभी विषयों में शांति शिक्षा का एक-एक अध्याय जोड़ दिया जाए? या सभी विषयों में समाहित विषय-वस्तु का शिक्षण शांति शिक्षा के

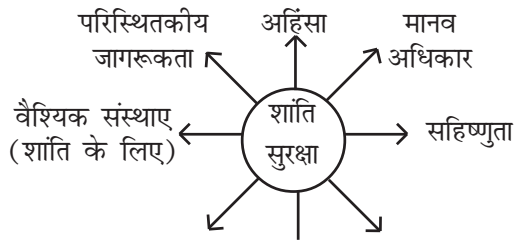
परिप्रेक्ष्य में हो? जहाँ तक शांति शिक्षा को अलग विषय के रूप में लागू करने का प्रश्न है यह किसी भी दृष्टिकोण से व्यावहारिक व तार्किक नहीं है क्योंकि विद्यालयों में पूर्व से ही विषयों की संख्या की अधिकता है। दूसरी बात शांति शिक्षा को अलग विषय के रूप में लागू कर देने मात्र से समस्या का समाधान नहीं हो सकता है। इसका सबसे अच्छा उदाहरण पर्यावरण शिक्षा हो सकता है।

शांति शिक्षा का सभी विद्यालयी विषयों में एक-एक अध्याय जोड़ना कुछ सीमा तक व्यावहारिक प्रतीत होता है किंतु सभी विषयों में एक-एक अध्याय की वृद्धि शिक्षकों और विद्यार्थियों के लिए अधिभार ही होगी। दूसरी बात एक-एक अध्याय के अध्ययन मात्र से विद्यार्थियों के व्यवहार तथा कृत्यों में आपेक्षित परिवर्तन प्राप्त कर पाना संभव नहीं है। हमारी दृष्टि से सबसे तार्किक व उपयुक्त समाधान यह होगा कि सभी विद्यालयी विषयों में समाहित विषय-सामग्री/वस्तु का अध्ययन-अध्यापन शांति शिक्षा के संदर्भ में हों। इससे विद्यालयी समय-सारणी, शिक्षकों व विद्यार्थियों के ऊपर कोई अतिरिक्त भार नहीं पड़ेगा। पर प्रश्न यह उठता है कि सभी विद्यालयी विषयों में समाहित विषय-सामग्री/वस्तु का शिक्षण शांति शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में कैसे होगा तथा शांति शिक्षा का स्वरूप/प्रारूप कैसा होगा?

### शांति शिक्षा का स्वरूप

सामान्यतः किसी भी विषय को दो भागों में तैयार किया जाता है। एक सैद्धांतिक भाग तथा दूसरा व्यावहारिक/प्रायोगिक भाग। शांति शिक्षा

के सैद्धांतिक और व्यावहारिक भाग में किस प्रकार के ज्ञान व क्रियाओं को शामिल किया जाए? इसके लिए सीमा निर्धारक बिंदुओं का होना आवश्यक है। शांति शिक्षा के ज्ञान व क्रियाओं के निर्धारण के लिए यूनिसेफ द्वारा निर्धारित किए गए सीमा निर्धारक बिंदु सबसे उपयुक्त होंगे। इन्हें निम्न चित्र के माध्यम से प्रदर्शित किया जा सकता है—



यूनिसेफ द्वारा निर्धारित किए गए इन सीमा निर्धारकों को ध्यान में रखते हुए शांति शिक्षा के सैद्धांतिक तथा व्यावहारिक पक्ष में निम्न ज्ञान व क्रियाओं को सम्मिलित किया जा सकता है।

शांति शिक्षा के सैद्धांतिक पक्ष में निम्न विषयवस्तु को समाहित किया जा सकता है।

- शांति दूत के रूप में प्रसिद्ध महापुरुषों के जीवन-चरित्र व शांति तथा मानवता के लिए किए गए कार्यों का विवरण। जैसे- जीसस क्राइस्ट, गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, मोहम्मद साहब, गुरु नानक, संत कबीर, महात्मा गाँधी, मदर टेरेसा, नेल्सन मंडेला, आँग शान सू की आदि।
- वैश्विक शांति स्थापना हेतु प्रयासरत विभिन्न संस्थाओं के ऐतिहासिक उद्भवों के कारणों व कार्यों का तार्किक विवरण। जैसे- संयुक्त राष्ट्र संघ, यूनिसेफ आदि।

- अंतर्राष्ट्रीय अवबोध व अंतर सांस्कृतिक विविधता व समझ को बढ़ावा देने वाली संस्थाओं की महत्ता एवं कार्यों का विवरण। जैसे- यूनेस्को, यूनिसेफ आदि।
  - मानव अधिकारों एवं कर्तव्यों की समझ से संबंधित विषय।
  - सामाजिक उत्तरदायित्वों से संबंधित विषय एवं सामाजिक समस्याओं के उद्भव के कारणों व उनके समाधान में मानव की भूमिका के महत्व संबंधित विषय जैसे- नस्लवाद, क्षेत्रवाद, जातिवाद, सांप्रदायिकता आदि।
  - अहिंसा, सहिष्णुता व जीवन की महत्ता से संबंधित विषय।
  - पारिस्थितकीय जागरूकता से संबंधित विषय, जैसे पर्यावरण प्रदूषण आदि।
- शांति शिक्षा के व्यावहारिक/प्रायोगिक भाग के अंतर्गत निम्न क्रियाएँ समाहित की जा सकती हैं-
- प्रत्येक विद्यालय में शांति क्लब बनाया जाए। इसके अंतर्गत शांति डायरी, शांति पत्रिका का प्रकाशन, शांति जागरूकता संबंधी कार्यक्रम, महत्वपूर्ण व्यक्तियों से अंतःक्रिया कार्यक्रम, सामाजिक समस्याओं पर स्वस्थ वार्ताओ आदि कार्यक्रमों को करवाया जा सकता है।
  - रोल प्लेइंग गेम इसके अंतर्गत महापुरुषों के जीवन-चरित्र पर आधारित अभिनय कार्यक्रम करवाए जा सकते हैं।
  - ध्यान, योग व प्राणायाम संबंधी कार्यक्रम का आयोजन विषय विशेषज्ञों द्वारा करवाया जा सकता है।

- सामुदायिक सेवाओं का आयोजन करवाया जा सकता है।
- मनोवैज्ञानिक कार्यशालाओं व निर्देशन संबंधी कार्यक्रमों का आयोजन।
- अब यहाँ पर प्रश्न उठता है कि शांति शिक्षा के अमुख प्रारूप को किस स्तर से लागू किया जाए एवं शांति शिक्षा के प्रारूप को कैसे विद्यालय विषयों व पाठ-सहगामी क्रियाओं के साथ समाहित किया जाए? हमारे दृष्टिकोण में प्राथमिक पाठशाला से ही शांति शिक्षा लागू की जानी चाहिए। क्योंकि प्रारंभिक काल में दी गई शिक्षा व संस्कारों का विद्यार्थियों के जीवन में अमिट प्रभाव रहता है। अब प्रश्न आता है शांति शिक्षा को विद्यालय विषयों व पाठ-सहगामी क्रियाओं के साथ समाहित करने का। यह सर्वविदित है कि शांति के सैद्धांतिक पक्ष में समाहित विषय-सामग्री प्रत्यक्षतः विद्यालयी विषयों से सहसंबंधित है। केवल शिक्षकों को शिक्षण कला एवं शिक्षण शैली में अपेक्षित परिवर्तन करने की आवश्यकता है। शांति शिक्षा के सैद्धांतिक पक्ष को निम्न प्रकार से विद्यालयी विषयों से संबंधित करके अध्ययन-अध्यापन किया जा सकता है-
  - शांति दूत के रूप में स्थापित महापुरुषों का जीवन चरित्र व कार्यों का विवरण इतिहास विषय में समाहित रहता है। इन महापुरुषों के विषय में शिक्षण करते समय शिक्षक इनके कार्यों व संदेशों को तार्किक व प्रासंगिकता उस कसौटी में बाँधे जो विद्यार्थियों में शांति, सहिष्णुता, समभाव, सहयोग व भाईचारा आदि के गुणों का संचार कर सके। विद्यार्थियों में यह भावना जाग्रत की जाए कि वह महापुरुषों की शिक्षा व संदेशों को अपने आचरण में उतार कर ही मानवता का कल्याण कर सकते हैं। इन विषयों पर किये जाने वाले शिक्षण का स्तर चिंतन स्तर का होना चाहिए।
  - राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति स्थापना हेतु प्रयासरत विभिन्न संस्थाओं जैसे संयुक्त राष्ट्र संघ, यूनिसेफ, न्यायपालिका आदि विषय नागरिकशास्त्र में समाहित रहते हैं। इन संस्थाओं पर शिक्षण करते समय इनके उद्भव के कारणों, कार्यों व वर्तमान में इनकी प्रासंगिकता का तार्किक व व्यवहारिक विवेचन किया जाए। साथ ही साथ अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध तथा अंतर-सांस्कृतिक विविधता व समझ को बढ़ावा देने वाली संस्थाओं (यूनेस्को आदि) के महत्व व कार्यों का शिक्षण इनके उल्लेखनीय योगदानों व भूमिकाओं के संदर्भ में किया जाना चाहिए।
  - नागरिकशास्त्र विषय में मानव अधिकार व कर्तव्य एवं जीवन के प्रति सम्मान की भावना आदि से संबंधित विषय समाहित रहते हैं। इन विषयों पर शिक्षण करते समय विद्यार्थियों में इस मनोवृत्ति का विकास किया जाना चाहिए कि वह अपने अधिकारों के प्रति सजग व कर्तव्यों के प्रति निष्ठावान हो सकें तथा दूसरे के अधिकारों का सम्मान कर सकें। साथ ही साथ विद्यार्थियों को प्राकृतिक अधिकारों के प्रति सजग निष्ठावान बनाने का प्रयत्न किया जाए।
  - सामाजिक विज्ञान विषय के अंतर्गत सामाजिक समस्याओं जैसे- क्षेत्रवाद, संप्रदायवाद जातिवाद



आदि को रखा जा सकता है। इन सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति कारणों व समाधानों का शिक्षण शांति स्थापना के परिप्रेक्ष्य में किया जाए। विद्यार्थियों को उन तथ्यों से अवगत कराया जाए जो मानव से संबंधित व सामाजिक समस्याओं की उत्पत्ति के कारक हैं। शिक्षण के द्वारा विद्यार्थियों में इस मनोभावना का विकास किया जाए, कि वे प्रत्येक सामाजिक समस्या का समाधान करने में सक्षम हैं। यदि वह प्रयास न्यायोचित व मानवतावादी दृष्टिकोण पर आधारित है।

- विज्ञान और भूगोल विषय के अंतर्गत जैविकीय विविधता तथा पारिस्थितिकीय जागरूकता से संबंधित विषयों का अध्यापन किया जा सकता है। पर्यावरणीय प्रदूषण और पारिस्थितिकीय असंतुलन से जुड़े मानवीय कारकों से विद्यार्थियों को अवश्य अवगत कराया जाए। उन्हें यह भी बताया जाए कि मानव की स्वार्थवादी मानसिकता व अमानवीय लोलुपता से जैव विविधता तथा पर्यावरण को क्या हानि हुई और क्या और होने की संभावना है एवं इसका मानव जीवन पर क्या दुष्परिणाम हो सकता है? विद्यार्थियों को उन क्रियाओं व कार्यों के प्रति अवश्य सजग किया जाए, जोकि उनकी अनभिज्ञता के कारण पर्यावरण के लिए क्षतिकारक होते हैं। शिक्षण के द्वारा विद्यार्थियों में इस भावना का संचार किया जाए कि वह इन समस्याओं का समाधान करने में वह सक्षम है।
- भाषा में समाहित कविताओं व कहानियों का शिक्षण सामाजिक वास्तविकता के धरातल

पर किया जाए। कविताओं व कहानियों में समाहित शांति, भाईचारा, समरसता आदि के प्रसंगों का भावप्रधान व अर्थपूर्ण चित्रण प्रस्तुत किया जाए।

यह सर्वविदित है कि प्रत्येक विद्यालय में पाठ्य-सहगामी क्रियाओं का आयोजन होता है। शांति शिक्षा के व्यावहारिक पक्ष से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों तथा क्रियाओं को सरलता से विद्यालय की पाठ्य-सहगामी क्रियाओं में समन्वित किया जा सकता है। इन्हें विद्यालयीय समय-सारणी में निम्न प्रकार से लागू किया जा सकता है—

- विद्यालयों में प्रतिदिन प्रार्थना सभा होती है। प्रार्थना सभा में प्रतिदिन अलग-अलग धर्मों की कोई एक प्रार्थना होनी चाहिए। विद्यार्थियों से प्रार्थना सभा में प्रत्येक धर्म से जुड़े नीति वाक्यों व प्रेरक प्रसंगों को बुलवाया जाए। शिक्षक प्रतिदिन किसी एक समसामयिक घटना के संदर्भ में विद्यार्थियों के विचारों को सुनें। यदि नकारात्मकता के भाव विद्यार्थियों के विचारों में समाहित हो तो उसका तत्काल सकारात्मक व मानवीय समाधान शिक्षक द्वारा बताया जाए। इस कार्यक्रम द्वारा विद्यार्थियों में सर्वधर्म समभाव, भाईचारा, सहिष्णुता व मानवीय नैतिकता का विकास होगा।
- प्रत्येक विद्यालय में शांति क्लब बनाया जाए। इसके अंतर्गत एक शांति डायरी बनवाई जाए। जिसमें विभिन्न धर्मों के पवित्र कथनों, शांति स्थापना से जुड़े किसी एक विषय का विवरण, सम-सामायिक घटनाओं पर उनके विचार तथा शांति के लिए उनके द्वारा किए गए प्रयास आदि का विवरण समय और दिनांक

के साथ नोट करवाया जाए। इससे विद्यार्थियों में शांति के प्रति जागरूकता, समभाव व कर्तव्यनिष्ठा के गुणों का विकास होगा।

- शिक्षक विद्यार्थियों के सहयोग से वर्ष में एक बार प्रत्येक कक्षा से शांति पत्रिका का प्रकाशन करवाए। शिक्षक शांति स्थापना से जुड़े सम-सामायिक विषयों का निर्धारण कर विद्यार्थियों को लेख व कहानी लिख कर लाने को कहें। यह प्रत्येक विद्यार्थी के लिए अनिवार्य हो। पत्रिका के निर्देशक-मण्डल में विद्यार्थियों की सहभागिता अवश्य रखी जाए। इसके द्वारा विद्यार्थियों में आत्मनिर्भरता सहयोग, जागरूकता (शांति के संदर्भ) आदि गुणों का विकास होगा।
- सामुदायिक सेवाओं एवं जागरूकता रैलियों का आयोजन समय-समय पर विद्यालय में करवाया जाना चाहिए। इन कार्यक्रमों में समाज सेवी व प्रतिष्ठित व्यक्तियों को आमंत्रित किया जाय। सामुदायिक सेवाओं व जागरूकता कार्यक्रम के विषय व आयोजन की तैयारी विद्यार्थियों से ही करवाई जाए। इससे उनमें समुदायिकता, सहयोग, आत्मनिर्भरता आदि गुणों का विकास होगा।
- विद्यालयों में रोल प्लेइंग गेम का आयोजन सांस्कृतिक कार्यक्रमों के साथ करवाया जाय। इसके अंतर्गत महापुरुषों के जीवन चरित्रों पर आधारित अभिनय कार्यक्रम आयोजित किए जा सकते हैं। इससे विद्यार्थियों में नैतिक एवं चारित्रिक गुणों का विकास होगा।
- विद्यालय ध्यान योग व प्राणायाम संबंधी कार्यक्रमों का आयोजन विषय विशेषज्ञों द्वारा

करवा सकता है। इन कार्यक्रमों के द्वारा मानसिक आध्यात्मिक शांति के गुणों का विकास होगा। ये सभी क्रियाएँ मन को नियंत्रित करने में सहायक होती हैं। इस संदर्भ में गौतम बुद्ध के निम्न विचार महत्वपूर्ण है—  
“सभी दुष्कर्म मन के कारण उपजते हैं। यदि मन रूपांतरित हो जाए, तो क्या दुष्कर्म बने रह सकते हैं?”

- विद्यालयों में मनोवैज्ञानिकों के सहयोग से कार्यशालाओं व निर्देशन कार्यक्रमों का आयोजन करवाया जाए। कार्यशालाओं में द्वंद्व वियोजन संबंधी कार्यक्रम व द्वंदात्मक परिस्थितियों में निर्णय लेने की क्षमता का विकास करने संबंधी कार्यक्रम करवाये जाए। इन कार्यक्रमों द्वारा विद्यार्थियों में यह क्षमता विकसित की जाए कि वह विषय परिस्थितियों में लिए गए निर्णयों को शांति के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित कर सके। इन कार्यक्रमों के माध्यम से विद्यार्थी द्वंद्व को वियोजित कर सकेंगे व विषय परिस्थितियों में उचित, सकारात्मक व शांतिमय निर्णय लेने की क्षमता विकसित कर सकेंगे। शांति शिक्षा के सफल क्रियान्वयन हेतु शिक्षकों को प्रशिक्षण देने एवं शिक्षकों, विद्यार्थियों व अभिभावकों के लिए निर्देशन पुस्तिका (Manuals) तैयार करने की आवश्यकता है। इन निर्देशन पुस्तिकाओं के माध्यम से शांति की सैद्धांतिक जानकारी को व्यावहारिक रूप के क्रियाकलापों में एकीकृत करने में सहायता मिल सकेंगी। इसके लिए प्रशिक्षण कार्यक्रम, गोष्ठियों व कार्यशालाओं आदि के आयोजन के साथ-साथ ई-लर्निंग व संचार के अन्य माध्यमों का भी उपयोग किया जा

सकता है। शांति शिक्षा विशेषज्ञों, अनुसंधानकर्ताओं और शिक्षकों के सहयोग से शांति शिक्षा का संदेश देने वाले कार्यक्रमों का विकास किया जाए और इनका प्रसारण दूरदर्शन और रेडियों जैसे संचार माध्यमों से किया जाये।

### निष्कर्ष

शांति शिक्षा लंबे समय से विद्वानों और शैक्षिक संस्थाओं में परिचर्चा का विषय रहा है। इस क्रम में एन.सी.ई.आर.टी. ने राष्ट्रीय पाठ्यचर्चा की रूपरेखा-2005 शांति शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया एवं इस संदर्भ में कुछ क्रियाओं का उल्लेख भी किया है किन्तु इसका आधारभूत स्वरूप अभी तक निर्धारित नहीं हो सका। प्रस्तुत पत्र शांति शिक्षा के स्वरूप और इसको विद्यालयीय

विषयों में समावेशित करने के आधार बिंदुओं पर केंद्रित है। शांति शिक्षा का उपरोक्त प्रारूप अर्थात् सैद्धांतिक तथा प्रायोगिक पक्ष वर्तमान सामाजिक परिदृश्य में परिलक्षित एवं व्याप्त मानव कर्मजनित समस्याओं का समाधान करने में सक्षम है। शांति शिक्षा के इस प्रारूप में अंतर्निहित शांति के क्रियाकलापों में सद्भावनापूर्ण सामाजिक संबंधों के सृजन और संवर्द्धन के अविचल प्रयास शामिल हैं, जो मानव कल्याण और सामाजिक खुशहाली से संबंधित है। शांति शिक्षा द्वारा यद्यपि अशांति की समस्या का पूर्ण समाधान संभव नहीं है, किंतु इसके द्वारा मानव आचरण व प्रवृत्ति में सामाजिक सद्भाव व भाईचारा सहिष्णुता, अहिंसा आदि मानवीय गुणों का अवश्य पल्लवन किया जा सकता है।

### संदर्भ

- चतुर्वेदी, देवदत्त (स.) 1989. *कृष्ण यजुर्वेदीय, तैत्तिरीय संहिता (श्रीमत् सायणाचार्य - विरचितभाट्य-समेता हिन्दुनुवाद-टिप्पण्यादि-समन्विता च)*, नई दिल्ली, श्री लालबहादुर शास्त्री केंद्रीय संस्कृत विद्यापीठम.
- हैरिस ईआन, मारिसन मैरी 2003. 'पीस एजुकेशन, लंदन, मैकफारलैंड.
- गाल्टुंग जोहान 1996. 'पीस बाई पीसफुल मींस' लंदन-नई दिल्ली, सेज पब्लिकेशन.
- हेंडरसन जार्ज 2006. 'एजुकेशन फार पीस : फोकस आन मैनकाइंड' एसोसिएशन फार सुपरवीशन एण्ड करिकुलम डेवलेपमेंट, मीचिंगन.
- नेशनल कॅरीकुलम फ्रेमवर्क 2005. नई दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी.
- सोलोमन और नेवो 2002, पीस एजुकेशन, द कानसेप्ट प्रिंसिपल्स एण्ड प्रेक्टिस एराउण्ड द वर्ल्ड, लंदन, लॉरिडंस ईरलबम एसोसिएटस.
- मारिया मोनटोसरी 1972. *एजुकेशन एण्ड पीस*, रेजेन्सी. यूनिवर्सिटी ऑफ मिसिगन डिजीटाइज्ड.
- उप्पल, श्वेता 2007. *राजनीतिक सिद्धांत*. नई दिल्ली, एन.सी.ई.आर.टी..
- गुप्ता, एस.पी. और अलका गुप्ता 2008. 'भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ' इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन.

## एक रास्ता यह भी

साधना देवेश\*

शिक्षा सभी बालकों का अधिकार है तथा सभी को शिक्षा के समान अवसर प्राप्त होने चाहिए। आज भारत में भी इस बात से कोई इंकार नहीं कर सकता। 6 से 14 वर्ष तक के बालकों के लिए 86वें संविधान संशोधन द्वारा शिक्षा को एक मौलिक अधिकार बनाया गया। गाँधी जी ने 'नई तालिम' के दूसरे सोपान पर 7 से 15 वर्ष के बालक-बालिकाओं के लिए बुनियादी शिक्षा बुनियादी तालीम की व्यवस्था दी। गाँधी जी ने 'नई तालिम' को 'जीवन-भर के लिए तालिम' माना। बापू के अनुसार शिक्षा बेरोज़गारी के विरुद्ध एक प्रकार का बीमा होना चाहिए। बेकारी की जड़ काटते हुए शिक्षा दी जानी चाहिए। विद्या तो मुक्ति के लिए है। मोक्ष यानी स्वावलंबन/स्वावलंबन प्रधान शिक्षा का प्रावधान रखती हुई बुनियादी शिक्षा हिंदुस्तान के व्यक्ति की भौतिक आवश्यकताएँ पूरी करती है तथा सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के साथ स्वावलम्बी व्यक्ति को औद्योगिक प्रक्रिया के माध्यम से बौद्धिक, साँस्कृतिक विकास द्वारा सुविकसित, स्वतंत्र नागरिक भी बनाती है। 7 से 15 वर्ष के बालक-बालिकाओं के शिक्षा के मौलिक अधिकार की पैरवी करती बुनियादी शिक्षा की महती आवश्यकता पर यह लेख प्रस्तुत है।

रोज़ी-रोटी की व्यस्तता में डूबे माता-पिता अपने बच्चों को स्कूल भेजकर उनकी ओर से निश्चित हो जाते हैं। उम्मीद करते हैं कि शिक्षक अपनी जिम्मेदारी से उन्हें 'व्यक्ति' बना लेगा। जबकि सोलह वर्ष की खर्चीली तपस्या के बाद का वह व्यक्ति जीविकोपार्जन के उचित जरिए की तलाश में खुद को समायोजित नहीं पाता और एक मानसिक टूटन उसमें घर कर जाती है। मनोवैज्ञानिकों, शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षक पर तमाम अपेक्षाएँ डालकर उसे खुद में इतनी क्षमता लाने के लिए तैयार करवाया है ताकि बालक के विकास में शिक्षक की कोई खामी

\*रीडर (एम.एड. विभाग) मातृश्री अहिल्या देवी टीचर्स एज्युकेशन इंस्टीट्यूट, इंदौर (म.प्र.)

आड़े न आए। मनोवैज्ञानिक शिक्षक को बालक के अक्षर ज्ञान से चलकर उसकी प्रवृत्तियों तक को सुधारने का जिम्मेदार ठहराते हैं। उम्मीद करते हैं कि शिक्षक बालक को खुली किताब की तरह आद्योपांत जानें। शिक्षक अपने घंटों में जितना भरसक प्रयास कर सकता है। परंतु बालक फिर भी ऐसा क्यों नहीं करता जिसकी हम अपेक्षा रखते हैं। यहाँ कई दूसरे कारण भी हैं। आइए जाने। परिवार अपनी जिम्मेदारी कितनी याद रखते हैं? सर्वेक्षणों से ज्ञात होता है कि सर्वाधिक प्रयुक्त मनोरंजन का साधन टी.वी. या सिनेमा है और वह जिस ढंग की सामग्री दे रहा है उसे प्रदर्शित करने के बाद हम अपेक्षा रखते हैं कि जो विकृतियाँ बालकों में आएँ शिक्षक उन्हें सुधारें और जहाँ शिक्षक नहीं है वहाँ ...?

वे व्यक्ति जो बाल्यावस्था से ही मेहनत, मजदूरी में जुट जाते हैं पूरी उम्र अंगीठियों के सामने सिकते हैं, झूठे प्याले, तश्तरियाँ धोते हुए कान फोड़नेवाला संगीत सुनते हैं, कई किशोर होते ही कारखानों में कामगार हो जाते हैं, फुटपाथ और सड़कों पर वे अखबार रिसाले बेचते नंगे पैरों फिरते हैं, जिन्हें वे खुद नहीं पढ़ पाते। फेरी लगाते समाज की विसंगतियों का सामना करते हैं उन्हें कौन-सा शिक्षक मानसिक रूप से स्वस्थ बनाए?

शारीरिक स्वास्थ्य का प्रश्न हम नहीं उठा सकते। संतुलित आहार का सरोकार उनसे नहीं है। वे पर्याप्त आहार भी मयस्सर नहीं कर पाते। पेट भरने के लिए उन्हें संघर्ष और प्रयास करने पड़ते हैं। महँगी शुल्क वाले धनाढ्य प्राइवेट स्कूल तथा सरकारी शालाएँ (मिड डे मील) मध्याह्नकालीन अल्पाहार का प्रावधान रखती हैं।

निरक्षर बच्चों के लिए जो सुबह की रोटी के लिए, रात को ओढ़ने के लिए पढ़ने आने की बजाए नौकरी, मजदूरी में जुटे हैं, उत्पादनमुखी स्वावलंबी शिक्षा का सरंजाम क्यों नहीं किया जाता जो इनके भरण-पोषण के साथ-साथ उन्हें जीविकोपार्जन का रास्ता भी दे। कार्यानुभव के उनके कौशलों को प्रोत्साहन मिलें।

राष्ट्र के नैतिक उत्थान का प्रश्न उठाते हुए बाल-अपराधियों के बढ़ते आँकड़े हमें चौंकाते नहीं। इनकी प्रवृत्तियों के स्वस्थ या अस्वस्थ होने की कोई समस्या हमें सालती क्यों नहीं? अपराध के पीछे अभाव को कारण मानते हुए भी चोरी करने वाले को दयादृष्टि नज़रअंदाज़ कर देती है। अपराधवृत्तियाँ बढ़ती जा रही हैं। समाजिक वातावरण का प्रदूषण भी इसके लिए जिम्मेदार है। सांवेगिक सुरक्षा, प्यार का अभाव, परिवार में बच्चे की उपेक्षा, नौकरों पर बालक की निर्भरता, अत्याधिक अकेला रहना आदि परिस्थितियाँ आगे चलकर उसे अपराध की ओर प्रवृत्त करती हैं क्योंकि इस तरह वह स्वयं को ध्यानाकर्षण का केंद्रबिंदु बना लेता है। अनाथ बच्चे पेशेवर अपराधियों के प्रश्रय में कुटते-पिटते हुए पनप ही जाते हैं। भूख और बेगारी के कारण होने वाले अपराधों का पलड़ा और भी भारी है। बूट पॉलिश करने वाला लड़का यदि चवन्नी की अठन्नी माँगे तो गालियों के साथ उसे तमाचा मिल सकता है लेकिन हिंसा और बलात्कारयुक्त सिनेमा देखने की खातिर जेब से चाहे जितना पैसा निकाला जा सकता है। हमारे देश में दरहकीकत तमाम श्रमिक कानूनों के बावजूद खरीदे गए गुलामों की तरह खासा शोषण आज बाल-वर्ग का हो रहा है। पिता के साथ खेत

में जुटे, वर्कशाप की कालिख में लिपटे बालक इस अनौपचारिक कार्य-प्रक्रिया में आगामी जीवन के लिए सही शिक्षा पा रहे हैं। हमारा सारा आग्रह उनके प्रति है जिनका अपना पुश्तैनी धंधा नहीं है और मौकापरस्त मालिकों के मनचाहे रवैये में उन्हें रौंदा जा रहा है। शिक्षालय में उनके लिए उसे शिक्षा योजना की दरकार है जो उन्हें कार्यानुभव के साथ-साथ उनके द्वारा निर्मित वस्तुओं के विक्रय, उपभोग द्वारा उचित मूल्य प्रदान करवाए यानी सीखना भी और कमाई भी।

कृषि प्रधान, कर्म प्रधान भारत के लिए उद्योग के माध्यम से शिक्षा का प्रारूप गाँधी जी ने रखा। उस समय (1937) सम्मेलन में आए देश के शिक्षाशास्त्रियों की अस्वीकृति इस कारण से थी कि “इससे बच्चों की गुलामी बढ़ेगी और उन पर उत्पादन का बोझ लद जाएगा।” देश गरीब है, गरीबी होते हुए भी सार्वजनिक शिक्षण आवश्यक है इत्यादि दलीलों को वे मानते थे लेकिन गरीबी के कारण बच्चे से उत्पादन करवाया जाए यह उन्हें मान्य नहीं था। जो लोग स्वावलंबन के विरोधी थे वे यह कहते थे कि बच्चों की मुफ्त शिक्षा के लिए सरकार जिम्मेदार है। बच्चों को पढ़ाई के साथ, कमाई करने के लिए विवश नहीं किया जाना चाहिए। शिक्षाशास्त्रियों के इस विरोध के बावजूद गाँधी जी शिक्षा में स्वावलंबन के विचार पर दृढ़ रहे। जीविका तथा नित दिन के वातावरण से हटा कर दी गई शिक्षा को गाँधी जी जीवन-शिक्षा नहीं मानते।

शिक्षा को सर्वांगीण विकास का साधन मानने पर-‘स्वावलंबन प्रधान शिक्षा’ उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं का उचित मूल्य बालकों को प्रदान

करवाएगी। यह शिक्षा बालकों की शारीरिक, आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर मानसिक संतुष्टि प्रदान करने में सक्षम है। यहाँ शिक्षा का उद्देश्य ‘सा विद्या या विमुक्तये पूर्ण होता प्रतीत होता है। मुक्ति से यहाँ तात्पर्य मानवीय समस्याओं के हल एवं समायोजन से है। लघु उद्योगों, कुटीर उद्योगों में हस्त उद्योग को प्रश्रय देते हुए शाला कार्यक्रम में स्वावलंबी शिक्षा बुनियादी शिक्षा को लागू कर ग्राम स्वराज्य पाया जा सकता है। विश्व में गाँधी जी की शिक्षा विचारधारा अपनी पहचान बनाने व व्यावहारिक रूप में पूर्ण होते हुए भी शिक्षण के रूप में पहले दक्षिण अफ्रीका में मान्य हुई जहाँ गाँधी जी ने टॉलस्टाय फार्म में अपनी कर्मप्रधान स्वावलंबी शिक्षा का प्रयोग किया था। हिंदुस्तान को आज जरूरत है कि गाँधी जी के बुनियादी शिक्षा के प्रत्यय को विचारें, अपनाएँ। ‘संस्थाकुल’ (जून 2008) पृष्ठ 7-8 एवं ‘गोग्रास’ (मई 2008) पृष्ठ 450, 451, 452, 453 में ‘शिक्षा की हिलती बुनियाद’ शीर्षक से लेख लिखते हुए डॉ. अवध प्रसाद के अनुसार-

“राष्ट्रीयता महात्मा गाँधी को इस धारणा की अभिव्यक्ति का श्रेय है कि विकास की प्रक्रिया में ‘व्यक्ति’ आधार है, केंद्र बिंदु है। गाँधी जी ने व्यक्ति के जीवन को समाज का प्रतिबिंब माना और व्यक्ति के जीवन एवं व्यवहार से ही समाज के स्तर, विकास की पहचान एवं सत्य के विचार को प्रतिपादित किया।”

गाँधी जी के नई तालीम विद्यालय में श्रम के साथ जो शिक्षा दी गई वह गणित, विज्ञान, कृषि-विज्ञान, उद्योग के साथ शिक्षा का प्रयोग था।

श्रम आधारित शिक्षा में सभी कार्यों का समान महत्व बालक के मानस पर सकारात्मक प्रभाव डालने में समर्थ है।

बाल एवं युवा शक्ति को जीवनोपयोगी शिक्षा की सुविधा उपलब्ध करवाना ही शिक्षा का बुनियादी उद्देश्य है। बाल शिक्षण को भावी समाज का दर्पण माना गया है जिसकी बुनियाद भी शिक्षा में निहित

है। आज चिंतन के मुख्य छह विषयों में – आजीविका, सशक्तीकरण, स्त्री-पुरुष समानता, कृषि, औद्योगीकरण और ग्रामीण दस्तकारों की सेवाएँ-शामिल हैं। इन मुद्दों को शिक्षा के साथ कैसे जोड़ा जाए इस पर विचार किया जाना अनिवार्य है इस हेतु गाँधी जी द्वारा बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में किए गए प्रयोग का स्मरण करना सामयिक होगा।

## प्रारम्भिक विद्यालयी शिक्षा में बहुभाषिकता की आवश्यकता विशेषकर जनजातीय बच्चों की शिक्षा के संदर्भ में एक शिक्षक से अपेक्षा

एस. सी. चौहान\*

अनुसूचित जनजातीय बच्चों को उनकी भाषा में शिक्षा प्रदान करने की शिक्षा व्यवस्था आखिर क्यों की जाए? इस सवाल के उत्तर में यह कह सकते हैं, क्योंकि भारत एक बहुधर्मी, बहु-सांस्कृतिक एवं बहु-भाषाई लोगों का देश है। यहाँ शिक्षा प्राप्त करना प्रत्येक 6 से 14 वर्ष आयु वर्ग के बच्चे का एक मौलिक अधिकार है (संविधान के 86 वे संशोधन के अनुसार)। यदि सभी बच्चों को शिक्षित करना है, तो प्रत्येक की मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने की व्यवस्था करनी होगी, जिसके लिए बहुभाषाई शिक्षा व्यवस्था विद्यालयों में उपलब्ध करानी होगी। भारतीय संविधान की धारा 351 (ए) के तहत प्रत्येक बच्चे को उसकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार मिला हुआ है। विद्यालयों में बहुभाषाई शिक्षण के क्रियान्वयन के लिए भारत सरकार द्वारा समय-समय पर गठित विभिन्न आयोगों की अनुसंशाओं को भी प्रकाश में लाया गया है। राष्ट्रीय स्तर पर भाषाई नीति के लिए त्रिभाषा सूत्र भी लागू किया गया है। राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् द्वारा निर्मित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखाओं में भी बहुभाषाई शिक्षा व्यवस्था के मुद्दे पर बल दिया गया है। अनुसूचित जनजाति के बच्चों की शिक्षा की समस्याओं में से एक बड़ी समस्या है उनकी 'विद्यालयी भाषा और उनकी गृहभाषा में अंतर' जो इन बच्चों की न्यून शैक्षिक उपलब्धि के लिए भी उत्तरदायी है। इसका समाधान उनकी मातृभाषा में उन्हें शिक्षा प्रदान कर निकाला जा सकता है। एक शिक्षक अपने शिक्षण के समय यह सुनिश्चित करें, कि उसकी कक्षा में कौन-कौन-सी भाषा जानने वाले बच्चे बैठे हैं। वह उन्हें उनके इस मौलिक अधिकार को प्रदान करने का प्रयास करें, इसके लिए उसे कक्षा शिक्षण को



प्रासंगिक बनाना पड़ेगा। शिक्षा को प्रासंगिक बनाने के लिए शिक्षक को बच्चों के मानसिक स्तर पर जा कर शिक्षण करना होगा, स्थानीय परिवेश एवं स्थानीय भाषा का इस्तेमाल, स्थानीय पेड़-पौधों, नदी, पहाड़ इत्यादि से उदाहरण देकर पाठ्यवस्तु को जोड़ना होगा और बच्चों की मौलिक चिंतन एवं सजृनात्मकता को विकसित करना होगा, तभी बच्चे परस्पर सामाजिक, सांस्कृतिक एवं भाषाई विविधता को सराहेंगे, समझेंगे, सीखेंगे एवं ज्ञान के स्रोत के रूप में इस्तेमाल करेंगे। अनेक जनजातीय, अल्पसंख्यक भाषाएँ/बोलियाँ जो आज विलुप्तीकरण कगार पर खड़ी हैं उन्हें भी बचाया जा सकेगा। विद्यालय में पढ़ाई के लिए उपयुक्त वातावरण निर्मित होगा और सभी बच्चे आनंदपूर्वक कक्षा शिक्षण में रुचि लेंगे। इसी प्रकार का शिक्षण कार्य एक शिक्षक से अपेक्षित है।

इक्कीसवीं सदी के प्रथम दशक की एक सबसे बड़ी शैक्षिक चुनौती यही है कि अनुसूचित जनजातीय क्षेत्रों के विद्यालयों में नामांकित (दाखिल) बच्चों को कम-से-कम प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण करने तक रोके रखना। यह गुणात्मक शिक्षा प्रदान करके ही किया जा सकता है। इसके लिए जहाँ एक तरफ विद्यालयी व्यवस्था को चाक चौबंद करने की आवश्यकता है, वहीं जनजातीय परिवारों के प्रथम पीढ़ी शिक्षार्थियों की विभिन्न शैक्षिक समस्याओं में से एक अहम समस्या 'विद्यालयी भाषा एवं गृह भाषा में अंतर' पर गंभीरता से विचार करना होगा या दूसरे शब्दों में इसी बात को यों कहें, कि कक्षाओं में पठन-पाठन की व्यवस्था जनजातीय क्षेत्रों में बोली जा रही भाषा या स्थानीय भाषा में करनी होगी, जिससे कम-से-कम प्राथमिक स्तर पर प्रथम पीढ़ी के शिक्षार्थियों को शिक्षा ग्रहण करने में भाषाई कठिनाईयों का समाधान निकाला जा सकेगा। परिणामस्वरूप जनजातीय बच्चों की

शैक्षिक उपलब्धि संतोषजनक होगी और वह सफलतापूर्वक प्रारंभिक शिक्षा पूर्ण कर सकेंगे। यहाँ इसका अभिप्राय यह बिल्कुल नहीं, कि अनुसूचित जनजाति के बच्चों को प्रारंभिक स्तर पर अन्य भाषाओं (अंग्रेजी एवं हिंदी) एवं क्षेत्रीय भाषाओं को सिखाने या सीखने की आवश्यकता है ही नहीं। एक ओर शिक्षाविदों का यह विचार सत्यता के अत्यंत निकट है, कि प्रत्येक बच्चे में बाल्यावस्था में भाषा सीखने की असीम क्षमता होती है, उस समय बच्चे को किसी भी भाषा के माध्यम से ज्ञान प्रदान किया जा सकता है। वे तीव्रता से सीखते हैं, जब कि दूसरी ओर वयस्कों को किसी अन्य भाषा को सीखने में अधिक समय की आवश्यकता होती है और वे कठिनाई भी महसूस करते हैं। अनेको शोध इस बात को प्रमाणित करते हैं, कि विद्यालयों में पढ़ाई का माध्यम बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करता है। मातृभाषा के माध्यम से शिक्षण करने से

\*वरिष्ठ प्रवक्ता, विशेष आवश्यकता समूह शिक्षा विभाग, एन.सी.ई.आर.टी., नई दिल्ली

कक्षा-कक्ष की गतिविधियों में बच्चों की सक्रिय भागीदारी होती है। शिक्षण रुचिकर होता है तथा पढ़ाई गई विषयवस्तु बच्चों की समझ में जल्दी आती है। हस्तांतरण क्षति (ट्रांजेक्शनल लॉस) कम होने से समय एवं उर्जा की बचत भी की जा सकती है फलस्वरूप बच्चों की शैक्षिक उपलब्धि अच्छी होती है। सभी को शिक्षित करने की दिशा में इस सदी के प्रारंभिक वर्षों में ही एक देशव्यापी 'सर्व शिक्षा अभियान' प्रारंभ किया गया। इसमें सब बच्चों की भाषा में शिक्षा प्रदान करने पर बल दिया गया। देश के सभी राज्यों के सभी जनपदों के सभी विकास खण्डों तथा प्रत्येक ग्राम/बस्ती तक शिक्षा का पहुँचना तभी संभव होगा, जब शिक्षा सभी की भाषा/बोली में उपलब्ध कराई जाएगी।

बहुभाषिकता के यर्थाथ को स्वीकार करते हुए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में कहा गया है, कि

*“भाषिक और धार्मिक अल्पसंख्यक के बच्चों के लिए संविधान प्रदत्त दृष्टिकोण से विशेष प्रबंध किए जाने और ध्यान रखने की आवश्यकता है। आदिवासियों की भाषा के संबंध में कुछ राज्यों ने समझदारी से व्यवस्था कर रखी है, कि बच्चों की आरंभिक कक्षाओं में शिक्षा उनकी अपनी घर की भाषा में ही हो।”*

इस तरह प्रत्येक विद्यार्थी को सीखने में सहूलियत होती है तथा अधिगम की गुणवत्ता में भी बेहतर होती है।

संविधान निर्माताओं ने भाषा के महत्व एवं

भारत में भाषाई विविधता को ध्यान में रखते हुए ही संविधान की अनुसूची 8 में प्रारंभ में लगभग 14 भाषाओं को सरकारी काम-काज की भाषाओं के रूप में अधिकृत किया। बाद में संविधान संशोधन कर कई अन्य क्षेत्रीय भाषाओं को सम्मिलित किया गया। भारतीय भाषाई सर्वेक्षण 1927 के अनुसार आठ दशक पहले देश में 179 भाषाएँ तथा 544 बोलियाँ बोली जाती थीं, जिसमें मद्रास, बर्मा, हैदराबाद एवं मैसूर राज्यों में बोली जा रही भाषाएँ सम्मिलित नहीं थी (भारत सरकार, 1927, पृ. 17-18)। केंद्र द्वारा हिंदी को कार्यालयों की भाषा तथा अन्य सभी भाषाओं को क्षेत्रीय भाषाओं के रूप में जाना गया। इनमें कुछ राज्यों ने अपनी क्षेत्रीय भाषा को राज्य की कार्यालयी भाषा के रूप में माना तथा क्षेत्रीय भाषा के आधार पर कुछ नए राज्य भी बनें। 1971 की जनगणना के आधार पर देश में कुल 114 भाषाएँ तथा 216 मातृभाषाओं की पहचान की गई। इस समय जिन भाषाओं को बोलने वालों की संख्या 10,000 थी, उन्हें अल्पसंख्यक भाषाएँ माना गया। देश में जितनी भी गैर-अनुसूचीबद्ध भाषाएँ हैं, वे अनुसूचीबद्ध भाषाओं की संख्या से चार गुनी से अधिक हैं, फिर भी इनके बोलने वाले लोगों की संख्या देश की कुल आबादी का लगभग 4% ही है, इसलिए इन सभी भाषाओं को अल्पसंख्यक भाषा के रूप में ही जाना जाता है। वर्ष 2001 तक देश में कुल 122 भारतीय भाषाओं की पहचान की गई है, जिसमें 22 भाषाओं को अनुसूचीबद्ध किया जा चुका है। इतना ही नहीं लगभग 100 और ऐसी जीवंत भारतीय भाषाओं की पहचान की गई है, जिन्हें आठवीं अनुसूची में नहीं जोड़ा गया है। इन्हें गैर-

अनुसूची भाषाओं के रूप में रखा गया। अनुसूचीबद्ध भाषाओं को बहुसंख्यक (प्रधान भाषा) कह सकते हैं, लेकिन सभी भाषाएँ बहुसंख्यक या वृहत क्षेत्र में बोली जाने वाली भाषाएँ नहीं हैं। निःसंदेह कुछ एक भाषाएँ वृहत क्षेत्र में बहुसंख्यक लोगों द्वारा बोली जाती हैं। कुछ एक अल्पसंख्यक भाषाएँ बहुत ही सीमित दायरे में कम लोगों द्वारा ही बोली जाती हैं। देश में जब भी हम अल्पसंख्यक लोगों की बात करते हैं, तो हमारा ध्यान केवल धार्मिक आधार पर संख्या में कम लोग जैसे— मुसलमान, बुद्ध, सिक्ख, ईसाई, जैन इत्यादि की ओर ही जाता है। यहाँ यह बात भी विचारणीय है, कि भाषा किसी जाति या संप्रदाय की नहीं होती। वह तो उस क्षेत्र में रहने वाले लोगों की होती है, चाहे वह किसी भी धर्म या संप्रदाय के हों, वह तो सभी की जुबान होती है। भाषा की पहचान स्थान विशेष से भी की जाती है जैसे : - मैथिली, बृज, अवधी इत्यादि। कुछ विद्वान लोगों की जुबान को भाषा न मानकर बोलियों की श्रेणी में रखते हैं। शब्दकोश वंश, कबिलों में बोली जाने वाली अल्पसंख्यक भाषा का विभाजन केवल इस आधार पर करते हैं— लिपिबद्ध भाषाएँ एवं गैर लिपिबद्ध भाषाओं को भी शब्दकोशों में भाषा ही कहा जाता है। भले ही उन्हें बोलने वालों की संख्या कम हो। जैसे संथाली, गौड़ी, हलवी, मुंडारी, कुरुख, भतरी, अगमी इत्यादि जनजातीय भाषाएँ लिपिबद्ध हैं। उत्तर पूर्वी राज्यों की जनजातीय भाषाएँ जैसे— गारो, खासी, जयंतिया इत्यादि की लिपि नहीं है। देश के विभिन्न भागों में ऐसी कई गैर—लिपिबद्ध भाषाएँ लोगों द्वारा बोली जाती हैं।

**संवैधानिक प्रावधान** — भारतीय संविधान की धारा 351(ए) प्रत्येक बच्चे को मातृभाषा माध्यम में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्रदान करती है। सभी को समान रूप से विद्यालयों में प्रवेश मिले तथा निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा 6-14 वर्ष आयु वर्ग के सभी बच्चों को प्राप्त हो, इसके लिए संविधान अनुच्छेद 345 राज्यों को स्वतंत्रता प्रदान करता है कि वह एक या अधिक क्षेत्रीय भाषाएँ या हिंदी को अपने-अपने राज्य की सरकारी कामकाज या कार्यालयी भाषा के रूप में (इस्तेमाल) प्रयोग/उपयोग कर सकता है। सामान्यतः भाषाई अधिकार केवल कार्यालयी भाषा या उनके उपयोग के अधिकार के तौर पर देखा जाता है, जबकि मातृभाषा को विद्यालयों में शिक्षण के माध्यम के रूप में उपयोग करने का सांवैधानिक अधिकार है। इसका अंतर्राष्ट्रीय समझौता 'हेमवर्ग डिक्लैरेशन ऑन अडल्ट लर्निंग यूनेस्को (1997)' में हुआ था जिसने भाषाई अल्पसंख्यकों तथा प्राचीन (आदि) भाषा-भाषी समूहों को भी भाषाई अधिकार दिया गया है। इसमें मुख्यतः निम्नलिखित बातों को सम्मिलित किया गया है—

- छोटे बच्चों की शिक्षा आवश्यकता अनुसार उनकी मातृभाषा में हों।
- राष्ट्रीय शिक्षा व्यवस्था में वृहत समुदायों की भाषा में शिक्षण सामग्री उपलब्ध कराई जाए।
- अंतःसांस्कृतिक शिक्षा भाषाई अल्पसंख्यकों के प्रति सकारात्मक दृष्टिकोण का वर्धन करें।
- अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं में शिक्षण की सुविधाएँ भी उपलब्ध कराई जाए।
- प्रवासी मजदूरों तथा उनके परिवारों के अन्य सदस्यों को शिक्षा का अधिकार इस समझौते

के अंतर्गत दिया गया है, जिसके अंतर्गत शिक्षण-अधिगम में बच्चे की मातृभाषा में शिक्षा सुविधा उपलब्ध कराई जाए। इस प्रकार के प्रयास से बच्चों को अपनी भाषा एवं संस्कृति में कक्षा शिक्षण में समान अवसर प्राप्त होंगे।

मानव अधिकारों की सार्वजनिक घोषणा (1948) के आधारभूत सिद्धांतों में भाषाई भेदभाव के किसी भी रूप का विरोध किया गया है। इसके अनुच्छेद 2 के अंतर्गत प्रत्येक नागरिक को स्वतंत्रता के अधिकार की घोषणा की गई है। यह बिना किसी भेदभाव के सभी को समान रूप से प्राप्त है। चाहे यह भाषाई स्वतंत्रता ही क्यों न हो? संविधान की मूल भावना के अनुसार स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् से ही शिक्षा के विकास को ही मूल मंत्र माना गया है। केंद्र एवं राज्य सरकारें निरंतर प्रभावी नीतियाँ कार्यक्रम एवं कार्य योजनाएँ बनाती रही हैं जिनकी शत-प्रतिशत सफलता एवं क्रियान्वयन पर स्वयं सरकारें प्रश्न चिन्ह लगाती रही हैं। इनके प्रमाण समय-समय पर प्रकाशित सरकारी प्रतिवेदनों में मिलते हैं, जहाँ लगभग सभी राज्य सरकारें शैक्षिक प्रगति पर अपना असंतोष जताती रही हैं, विशेषकर अनुसूचित जनजातीय बच्चों के संदर्भ में, क्योंकि आज भी यही वर्ग साक्षरता की दृष्टि से सबसे अधिक हाशिए पर है अर्थात् निम्नतम साक्षरता की दर एवं गुणात्मक शिक्षा दोनों में ही तुलनात्मक दृष्टि से सबसे पीछे ही है। इसके लिए मूल कारणों में से शायद एक प्रमुख कारण यही है, कि विद्यालयों में उन्हें उनकी मातृभाषा के माध्यम से शिक्षा उपलब्ध नहीं कराई जा रही है।

### जनसँख्या एवं विद्यालयों की उपलब्धता

वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार भारत की कुल आबादी 102.9 करोड़ थी जिसमें ग्रामीण क्षेत्र में 74.2 करोड़ तथा नगरीय क्षेत्र में 28.6 करोड़ लोग निवास करते हैं। कुल जनसँख्या का लगभग 72.18% ग्रामीण परिवेश में है। इसमें 51.39% पुरुष तथा 48.61% स्त्रियाँ हैं। अनुसूचित जाति की जनसँख्या लगभग 16.66 करोड़ तथा अनुसूचित जनजाति की जनसँख्या लगभग 8.43 करोड़ हैं। इसमें सबसे अधिक लोग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में 51.58% पुरुष तथा 48.42% अनुसूचित जाति महिलाएँ जो लगभग 13.30 करोड़ हैं। 50.49% पुरुष एवं 49.51% अनुसूचित जनजाति महिलाएँ जो लगभग 7.73 करोड़ सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों में तथा पर्वतीय या घने जंगलों में निवास करते हैं। जहाँ कई बस्तियों में आज भी विद्यालय नहीं पहुँच पाए हैं वहाँ साक्षरता दर अत्यंत न्यून है। वैसे भी देश की साक्षरता दर तालिका में कुल साक्षरता दर 65.3% की तुलना में जनजातीय साक्षरता दर केवल 47% ही है यदि इसमें भी महिला साक्षरता की बात की जाए, तो स्थिति और भी स्पष्ट हो जाएगी। देश में कुल महिला साक्षरता दर 54% है जिसकी तुलना में जनजातीय महिला साक्षरता दर मात्र 34.8% ही है।

विद्यालयों की उपलब्धता के राष्ट्रीय मापदण्ड के आधार पर जनजातीय क्षेत्रों में उपलब्ध विद्यालयों की स्थिति का तुलनात्मक विवरण राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् (2002) के सर्वेक्षण से और भी स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। सातवें अखिल भारतीय विद्यालयी शिक्षा सर्वेक्षण (रा.शै.अ.प्र.प.) के अनुसार देश में

कुल गाँव 6,36,715 हैं। जिसमें 5,86,986 आबाद गाँव हैं। इस सर्वेक्षण के अनुसार 6,374 विकास खण्ड तथा 5,291 तहसील (तालुका) हैं, इनमें शिक्षा के प्रारंभिक स्तर के विद्यालयों की उपलब्धता निम्न तालिकाओं में दर्शाई गई हैं।

**प्राथमिक विद्यालययुक्त बस्तियाँ एवं जनसँख्या**

	बस्तियाँ % में		जनसँख्या % में	
	बस्ती के भीतर	1 कि.मी. तक	बस्ती के भीतर	1 कि.मी. तक
सभी	51.55	85.63	78.17	94.17
अनुसूचित जाति	42.50	86.07	68.05	92.84
अनुसूचित जनजाति	47.13	79.27	69.84	89.01

**उच्च प्राथमिक विद्यालययुक्त बस्तियाँ एवं जनसँख्या**

	बस्तियाँ % में		जनसँख्या % में	
	बस्ती के भीतर	3 कि.मी. तक	बस्ती के भीतर	3 कि.मी. तक
सभी	16.88	80.91	41.77	88.72
अनुसूचित जाति	11.60	81.83	24.21	86.27
अनुसूचित जनजाति	10.76	67.21	26.76	76.58

प्राथमिक स्तर से लेकर माध्यमिक स्तर तक की शिक्षा व्यवस्था पर दृष्टिपात करने पर निष्कर्ष यही निकलता है, कि तुलनात्मक रूप में अनुसूचित जनजातियाँ सबसे कम सुविधासंपन्न हैं अर्थात् देश में अभी भी अनुसूचित जनजातियों की अधिकाँश आबादी शिक्षा के विकास में सबसे पीछे है इसका अर्थ यह बिल्कुल नहीं कि विगत 6 दशकों में इनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं हुआ है, निःसंदेह हुआ है, परंतु स्थिति बहुत सम्मानजनक नहीं है, जहाँ समानता के अधिकार की संवैधानिक

वचनबद्धता हो, वहाँ अनुसूचित जनजातियों की शिक्षा की ऐसी स्थिति एवं गुणवत्ता देश के लिए संतोष का विषय हो ही नहीं सकता।

**मातृभाषा एवं जनजातीय भाषाएँ**

ग्रिक्सन ने भारतीय भाषाओं के सर्वेक्षण के आधार पर भाषाओं के वर्गीकरण का आधार मातृभाषा के रूप में बोली जाने वाली भाषा को ही माना है। देश में प्रत्येक दशक में किए जाने वाले सर्वेक्षणों में मातृभाषाओं के विषय में देशवासियों द्वारा भिन्न-भिन्न सँख्या बताई गई है। यहाँ लोग अपनी मातृभाषा को अपने धर्म, क्षेत्र अथवा स्थान के अनुसार अलग-अलग बताते हैं। बच्चे की मातृभाषा बाल्यावस्था में बोली जाने वाली भाषा, परिवार, पड़ोस तथा क्षेत्र इत्यादि में बोली जाने वाली कोई एक भाषा होगी। यह कोई जरूरी नहीं, कि इस पर धार्मिक, राजनैतिक एवं सामाजिक संरचना का प्रभाव पड़ता ही हो। डी.पी. पटनायक के अनुसार मातृभाषा वह है “जिसमें सर्वप्रथम अवधारणाओं की उत्पत्ति होती है और उससे विचारों की अभिव्यक्ति होती है। यह घर के चारों ओर के माहौल में बोली और जानी जाती है।”

भारत में अधिकांशतः जनजातीय भाषाएँ गैर अनुसूचीबद्ध भाषाओं के अंतर्गत आती हैं, जिसमें से कुछ ही भाषाएँ लिपिबद्ध हैं। अनेकों जनजातीय समाज की भाषाएँ लिपिबद्ध नहीं हैं अर्थात् उनको केवल बोला ही जाता है। इन्हें परंपरागत बोलचाल की (सांकेतिक) भाषाओं के रूप में जाना जाता है जो एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को व्यवहारिक प्रयोग के माध्यम से ही हस्तांतरित की जाती हैं। वास्तव में इन भाषाओं (बोलियों) की कोई

लिखित परंपरा है ही नहीं, केवल मौखिक रूप से समूह में परस्पर लोग बोलते हुए ही देखे जाते हैं। कुछ जनजातीय समूह जब आपस में बातचीत करते हैं, तभी उनका प्रयोग होता है। अधिकतर जनजातियाँ अपनी भाषा के अलावा अन्य स्थानीय भाषा/संपर्क भाषा को भी समझतीं और बोलतीं हैं जैसे — छत्तीसगढ़ के गौड़ (गौड़ी), हलवा (हलवी), भतरा (भतरी), दोलरा (दोलरी)। छत्तीसगढ़ के जनजातीय भाषा-भाषीय अपनी मातृभाषा के अलावा छत्तीसगढ़ी भाषा को भी अच्छे ढंग से समझते एवं बोलते हैं। झारखण्ड में बसे मुंडा (मुंडारी), संथाल (संथाली), उराव (कुरूख) भाषा के अलावा साहदरी (संपर्क) भाषा को समझते व बोलते हैं। साहदरी भाषा को पूर्वोत्तर राज्यों में भी संपर्क भाषा के रूप में जनजातियाँ बोलतीं और समझतीं हैं। अरुणाचल प्रदेश में बसी जनजातियाँ अपनी स्थानीय भाषा गारो के अलावा साहदरी का भी प्रयोग करतीं हैं। प्रारंभिक कक्षाओं में पढ़ रहे जनजातीय बच्चों की शिक्षा में विविधता जहाँ एक ओर कई प्रकार के अवसर प्रदान करती हैं, वहीं दूसरी ओर कक्षा शिक्षण में जटिल चुनौती भी प्रस्तुत करती है, विशेषकर तब, जबकि गैर-शिक्षक अनुसूचित जनजातियों के शिक्षक विद्यालयों में शिक्षण कार्य कर रहे हों, जिन्हें न तो स्थानीय भाषा का ही ज्ञान हो और न ही अनुसूचित जनजाति संस्कृति के विषय में जानकारी हो।

### मातृभाषा में शिक्षा के अधिकार पर विभिन्न आयोगों का विचार एवं भाषाई नीतियाँ

भारत सरकार के माध्यमिक शिक्षा आयोग (1956) ने स्पष्ट शब्दों में उल्लिखित किया है कि मातृभाषा

के माध्यम से सीखना अधिक समझ देता है एवं विद्यार्थी अपने विचारों की अभिव्यक्ति प्रभावी ढंग से कर सकता है, जिससे उसका संपूर्ण व्यक्तित्व सामने आता है। शिक्षा आयोग (कोठारी कमीशन 1964-66) की वे सिफारिशें आज भी विचारणीय है, जिसमें कहा गया कि

“जिस स्तर पर हिंदी या अँग्रेज़ी द्वितीय भाषा के रूप में अनिवार्य भाषा के तौर पर लागू करके जितनी अवधि के लिए उसका अध्यापन तय किया जाता है। वह स्थानी प्रेरणा और आवश्यकता पर निर्भर करेगा और इसके लिए इसे प्रत्येक राज्य के विवेक पर छोड़ देना चाहिए।” {8.33 (5)}

### भाषाई नीति ( त्रिभाषा फार्मूला )

इसका मूल उद्देश्य राष्ट्रीय एकता, अंतर्राज्यीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सहज संवाद एवं संचार स्थापित करना है। इसके लिए केंद्र सरकार और राज्य/केंद्र शासित राज्यों की सरकारों द्वारा विद्यालयों में त्रिभाषा सूत्र का पालन सुनिश्चित करना है। भाषाई संदर्भ में यदि राज्य सरकार चाहे, तो इसमें मामूली संशोधन भी कर सकती है जैसे उत्तर पूर्वी राज्यों को उनकी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर अपने विवेक के अनुसार इसकी मूल भावनाओं को समझते हुए लागू करने की आजादी है। प्राथमिक विद्यालयों के प्रथम वर्षों में शिक्षा के माध्यम के रूप में मातृभाषा का प्रयोग बच्चों को सुनने, बोलने, पढ़ने, लिखने और सोचने इत्यादि में समझ विकसित करने में मदद करता है, जिससे बच्चे सुवाच्य, शुद्ध-उच्चारण एवं सही वर्तनी सीखने तथा लेखन की गलतियों से

बच सकेंगे। साथ-ही-साथ सृजनात्मकता, आत्म अभिव्यक्ति में विश्वास एवं मौलिक चिंतन कर सकेंगे। इसके पश्चात् विद्यालयी शिक्षा की कक्षाओं में सहज रूप से क्षेत्रीय भाषाओं और अन्य दूसरी भाषाओं के माध्यम से ज्ञान अर्जित कर सकने में भी समर्थ हो सकेंगे। आगे चलकर उच्च स्तर की कक्षाओं में राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय भाषाओं को भी लागू किया जा सकता है।

### **बहुभाषाई शिक्षण की आवश्यकता आखिर क्यों?**

मातृभाषा शिक्षण-अधिगम प्रक्रिया में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। यह बच्चे में सकारात्मक स्वप्रतिबिंब विकसित करने में सहायक होती है। जो भाषाई अल्पसंख्यक समूह भाषा एवं संस्कृति को दूसरे समूहों/बड़े समूहों की भाषा-संस्कृति में विलीन करते हैं, उनकी भाषा समाप्त हो जाती है। यूनेस्को ने पेरिस में 1951 संगोष्ठी का अहम मुद्दा दिया था- बच्चों को मातृभाषा में शिक्षण प्रदान करना। सभी विशेषज्ञों ने बड़े जोरदार शब्दों में मातृभाषा में शिक्षा प्रदान करने के पक्ष में विचार व्यक्त किए। बच्चा शैक्षिक दृष्टि से अपरिचित भाषा की तुलना में मातृभाषा में जल्दी सीखता है। शिक्षा प्राप्ति का सही तरीका कक्षा-शिक्षण प्रक्रिया में मातृभाषा का अधिकतम उपयोग ही है, जिससे शिक्षक और शिक्षार्थी के मध्य होने वाली पठन-पाठन क्षति को कम किया जा सकता है या यों कहें कि शिक्षक बच्चों को कुछ सिखाना चाहता है या सिखाता है वह पूरा का पूरा बच्चों की समझ में आ जाता है। यदि ऐसा संभव हो सकें तभी सफल शिक्षण होगा।

भाषा न केवल व्यक्तियों की परस्पर बातचीत का एक उपकरण है, बल्कि यह एक सांस्कृतिक पहचान भी है। भाषा में सामाजिक सशक्तीकरण की मौलिक विशेषता भी छिपी होती है। भारत जैसे बहुभाषाई समाज में शांति और सौहार्द के लिए भी भिन्न भाषा-भाषी लोग एक दूसरे की भाषाओं की विविधता का सम्मान करें, विशेषकर उन लोगों की, जो रोजगार की तलाश में अपने मूल स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं और नई जगह पर वे भाषाई अल्पसंख्यक बन जाते हैं, क्योंकि उनकी भाषा बोलने वाले लोग उस स्थान पर पहले से तो होते ही नहीं या कम होते हैं। ऐसे में उस स्थान पर भाषाई बहुसंख्यक लोगों को चाहिए कि वे दूसरे भाषाई अल्पसंख्यकों की कठिनाई का अनुमान लगाएँ तथा उनके प्रति सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करें। उनका न केवल सम्मान करें बल्कि उनकी कठिनाई दूर करने का प्रयास करें, जिससे परस्पर सम्पर्क से ज्ञान के शब्दकोश की वृद्धि तो होगी ही, साथ ही विद्यालय में सौहार्दता का वातावरण भी निर्मित होगा। भाषाई अल्पसंख्यक परिवारों के जो बच्चें विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं उन विद्यार्थियों का हक और भी प्रबल हो जाता है कि उन्हें उनका यह प्रथम अधिकार मिले जिससे वह पढ़ाई-लिखाई अपनी मातृभाषा में करें। जनजातीय बच्चों की भाषाई विभिन्नता के कारण समझने की समस्या का समाधान भी हो सकेंगा। भाषाएँ एक प्रकार से ज्ञान के शब्दकोश का भी काम करती हैं। ये वो माध्यम भी हैं जिनसे अधिकतर ज्ञान का निर्माण होता है। मनुष्य के विचार और उसकी अस्मिता

से गहरा संबंध होता है। किसी बच्चे को उसकी मातृभाषा दूर करने का प्रयास उसके व्यक्तित्व में हस्तक्षेप करने की तरह लगता है। मातृभाषा के माध्यम से ही बच्चे प्रभावी समझ, विचारों की अभिवृत्ति, व्यक्तियों और वस्तुओं तथा अपने आसपास के संसार से अपने आपको जोड़ पाने में समर्थ होते हैं।

दुर्भाग्य से अनुसूचित जनजाति क्षेत्रों में शिक्षण की स्थिति कदाचित् भिन्न हैं। वहाँ शिक्षक दूसरे समुदाय क्षेत्र और भाषा-भाषीय स्थलों से आते हैं। वे बच्चों की स्थानीय भाषा से पूर्णतः अपरिचित होते हैं और बच्चे शिक्षक एवं पाठ्य पुस्तकीय भाषा या विद्यालय में उपयोग की जा रही भाषा की भिन्नता के कारण पढ़ाई गई विषयवस्तु को पूर्णतः समझ ही नहीं पाते। परिणामतः शिक्षक का कक्षा-शिक्षण में प्रयास सफल नहीं हो पाता, हस्तांतरण क्षति(ट्रांसजेक्शन लॉस) भी होती है। अधिकतर जनजातीय बच्चे संकोची स्वभाव के कारण शिक्षकों से प्रश्न नहीं पूछते। फलतः बच्चे न समझ पाते हैं, न ज्ञान की रचना कर पाते हैं और न ही उसे परीक्षा में लिख पाते हैं। अंततः फेल हो जाते हैं और बार-बार फेल होने से वे विद्यालयी शिक्षा पूर्ण किए बिना ही विद्यालय छोड़ जाते हैं। जिससे बड़े पैमाने पर न केवल धन का अपव्यय होता है, बल्कि बहुत-सा शिक्षक श्रम भी बेकार जाता है।

### राष्ट्रीय स्तर पर बहुभाषी शिक्षा के क्रियान्वयन हेतु प्रयास

भारत एक बहुधर्मी एवं बहुभाषाई लोगों का देश है। यहाँ की सांस्कृतिक विविधता में एकता एक बड़ी विशेषता है। लोगों की पहचान, राष्ट्रीयता

और विचारों की अभिवृत्ति इत्यादि कक्षा शिक्षण की भाषा से परस्पर निकटता से जुड़े हुए हैं। भिन्न-भिन्न समाजों में बातचीत का माध्यम इस बात को दर्शाता है कि कक्षा में शिक्षण का माध्यम मातृभाषा (प्रथम भाषा) में किया जाए तो बच्चों में अधिगम (क्षमता) तीव्रता होती है। अभी हाल ही में एनसीईआरटी द्वारा विकसित राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 में भी विद्यालयी शिक्षा के प्रारंभिक वर्षों में मातृभाषा में शिक्षण पर बल दिया गया है, साथ ही मातृभाषाओं को परिभाषित करते हुए कहा गया है कि

“इसके अंतर्गत घर की भाषाओं, बड़े कुनबे की भाषा, आस-पड़ोस की भाषा इत्यादि आ जाती है, जिन्हें बच्चे स्वाभाविक रूप से अपने घर और समाज के वातावरण से ग्रहण कर लेते हैं।”

अधिकांश बच्चे, स्कूल आने से पूर्व ही दो-तीन भाषाओं को समझने और बोलने की क्षमता लेकर विद्यालय में प्रवेश करते हैं। वे न केवल उन भाषाओं को सही-सही बोलते हैं, बल्कि उनका उचित प्रयोग भी कर रहे होते हैं।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 में कहा गया है कि

“बाल अधिकार समझौता बच्चों को अभिव्यक्ति के अधिकार की गारंटी देता है ताकि वे उन मुद्दों पर खुलकर बोल पाएं जो उन्हें प्रभावित करते हैं और अभिव्यक्ति से आजादी महसूस करें। जिससे सभी बच्चों की सहभागिता स्वाभाविक रूप से बढ़ेगी। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 1988 के अनुसार “यदि प्राथमिक विद्यालयों में द्वितीय भाषा



पढ़ाने के लिए (संसाधन) अध्यापक उपलब्ध है, तो प्राथमिक स्तर पर उपयुक्त कक्षा/वर्ग से द्वितीय भाषा का अध्यापन किया जा सकता है।”

विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2000 ने भी सुझाव दिया था कि शिक्षा का माध्यम प्रत्येक बच्चे की मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा कक्षा एक से ही लागू करनी होगी। जिन बच्चों की गृहभाषा, विद्यालयी भाषा या क्षेत्रीय भाषा से भिन्न है वहाँ उपयुक्त समय पर प्राथमिक शिक्षा में क्षेत्रीय भाषा को बड़े ही सहज रूप से प्रवेश करना होगा तथा जिन राज्यों में अनेक क्षेत्रीय भाषाएँ हैं, वहाँ सरकारी या सरकारी कामकाज की भाषा को ही राज्य भाषा या प्रथम भाषा के रूप में स्वीकार कर लिया है ऐसी दशा में प्रथम भाषा के माध्यम से ही कक्षा एक से पढ़ाया जाएगा। यदि विद्यालयों में भाषाई अल्पसंख्यक बच्चे पर्याप्त मात्रा में हैं तो उन्हें उनकी मातृभाषाओं में पढ़ाने का प्रावधान करना होगा।

### एक शिक्षक बहुभाषाई शिक्षा कैसे दे?

शिक्षा के विषय में अक्सर यह कहा जाता है, कि शिक्षक आवश्यक रूप से पढ़ाएँ, विद्यार्थी जरूर सीखें और व्यवस्था प्राथमिकता से कार्य करें तभी शिक्षा प्रक्रिया पूर्ण होगी। यहाँ यह कहने की आवश्यकता शायद इसलिए महसूस की जा रही है, कि आज शिक्षक पूर्ण मनोयोग से शिक्षण कार्य करने में कुछ हद तक बाधित हो रहा है। यदि एक अध्यापक समय पर विद्यालय आता ही नहीं और न ही विद्यार्थियों को पढ़ाने के लिए आवश्यक समय देता है ऐसी दशा में विद्यार्थियों से सीखने

की उम्मीद दिन में स्वप्न देखने के समान ही होगी। यदि एक शिक्षक को अपने विद्यार्थियों की भाषा के विषय में जानकारी होगी ही नहीं तो वह बच्चों के बीच संवाद भी नहीं कर पाएगा। सीमित वार्तालाप के कारण शिक्षण अधिगम बहुत ही कम होगा। शिक्षण अधिगम ठीक से हो, इसके लिए शिक्षाविद् अलग-अलग समय पर भिन्न-भिन्न मत रखते रहे हैं, जैसे— शिक्षक केंद्रित, शिक्षार्थी केंद्रित, अधिगम केंद्रित, शिक्षण-अधिगम सामग्री केंद्रित कक्षा-कक्ष, पठन-पाठन प्रक्रिया केंद्रित तथा विद्यालयी सुविधा केंद्रित इत्यादि, इन सभी में शिक्षक की भूमिका अलग-अलग परंतु महत्वपूर्ण तो रहती ही है।

अतः शिक्षक को हर संभव प्रयास करना चाहिए, कि जनजातीय क्षेत्रों में शिक्षण करते समय वहाँ की स्थानीय भाषा की समझ अवश्य ही विकसित करें और बच्चों की भाषा संबंधी समस्या का उचित समाधान खोजकर शिक्षण करें। हालाँकि यह कार्य इतना आसान नहीं है, जनजातीय क्षेत्रों में भी कक्षा बहुभाषाई विशेषताओं वाली ही होती है, फिर भी जनजातीय बहुल भाषा या स्थानीय भाषा या क्षेत्रीय भाषा की मिश्रण वाली भाषाओं का प्रचलन बोल-चाल में संपर्क भाषा के रूप में देखा जाता है। यदि उसे भी एक शिक्षक शिक्षण का माध्यम बनाए तो भी कुछ हद तक गैर-जनजातीय शिक्षक एवं जनजातीय बच्चों के मध्य भाषाई समस्या का समाधान निकाला जा सकता है। यह बात भी अपनी जगह सही ही है, कि भाषाई समस्या का प्रभाव प्राथमिक स्तर के प्रारंभिक वर्षों में ही अधिक होता है। जैसे ही बच्चे लगातार विद्यालय और शिक्षक के संपर्क में आते हैं और

शिक्षक भी उस क्षेत्र में अध्यापन कार्य करता है, तो वे एक दूसरे की बात को समझने लगते हैं, धीरे-धीरे समस्या का विकराल रूप कम होने लगता है। भाषाई कठिनाई के समाधान के लिए अध्यापक को निरंतर स्थानीय लोगों के संपर्क में रहना चाहिए, यदि संभव हो तो उसी गाँव या स्थान को निवास स्थल बनाना चाहिए, जिससे सुबह-शाम वह स्थानीय लोगों के संपर्क से वहाँ की भाषा को अत्याधिक शीघ्रता से सीख सकें। विद्यालयों में आयोजित शैक्षिक कार्यक्रमों में स्थानीय गणमान्य नागरिकों को बुलाएँ, जिससे स्कूलों में अभिभावकों की अधिक से अधिक सहभागिता होगी जो न केवल भाषाई समस्या का समाधान करेंगी, बल्कि बच्चों की अन्य समस्याएँ जैसे—कक्षा में अनुपस्थिति, परस्पर सामंजस्य की कमी, पढ़ाई-लिखाई सामग्री की कमी इत्यादि का भी हल खोजा जा सकेगा।

दुर्भाग्य से जनजातीय क्षेत्रों के विद्यालयों में माहौल कुछ ऐसा बन गया है, कि शिक्षक शिक्षण कार्य करने के बजाए अनेक अन्य कार्यों में अधिक व्यस्त रहते हैं। वह शिक्षण के अतिरिक्त कार्य जैसे— जनगणना, मतदान कराना, मतदान सूची का नवीनीकरण, पल्ल पोलियो टीकाकरण इत्यादि में अपना अधिक समय लगाते हैं। यह बात सही है, कि ये क्रियाकलाप वर्ष भर तो नहीं चलते, लेकिन अब मध्याह्न भोजन विद्यालयी प्रक्रिया का एक अभिन्न अंग बन गया है, जिसमें भी शिक्षक को समय देना होता है। अध्यापक— मुख्याध्यापक को राशन की दुकानों के चक्कर लगाने पड़ते हैं, जिससे वे विद्यालय समय से नहीं पहुँच पाते हैं और यदि वे विद्यालय आ भी गए तो वह पूरे समय

राशन का लेखा-जोखा ही तैयार करने तथा विद्यालयों में मध्याह्न भोजन बच्चों को समय से मिले, इसी कार्य में लगे रहते हैं। यह स्थित दूर दराज के विद्यालयों में कदाचित और भी दयनीय है। इसलिए आवश्यक हो जाता है, कि शिक्षक नियमित रूप से समय पर विद्यालयों में पहुँचें और समय पर कक्षाओं में शिक्षण कार्य करें। तभी वह प्रथम एवं अनिवार्य कर्तव्य का निर्वहन कर सकेगा, जिसके लिए उसकी नियुक्ति की गई है।

जनजातीय क्षेत्रों के प्राथमिक विद्यालयों में स्थिति तब और अधिक चिंतनीय हो जाती है जब शिक्षक बच्चे की भाषा नहीं जानते और न ही बच्चे शिक्षक की भाषा को समझते हैं। क्योंकि इन विद्यालयों में कार्यरत अधिकांश शिक्षक गैर-जनजातीय हैं और यदि कुछ जनजातीय शिक्षक हैं भी तो वे स्थानीय नहीं हैं। समस्या जस की तस बनी रहती है। परस्पर बातचीत की कमी के कारण सीखने की प्रक्रिया बाधित होती है। ऐसी परिस्थिति में शिक्षक को सबसे पहले इसे एक बड़ी समस्या के रूप में स्वीकार करना चाहिए, दूसरे उसके समाधान के प्रयास करने चाहिए। अक्सर देखा यह गया है, कि शिक्षक भाषाई समस्या का समाधान खोजने के बजाए बच्चों को ही जिम्मेदार मान लेते हैं और कहने लगते हैं, कि तुम तो सीख ही नहीं सकते। शिक्षक को इस प्रकार के दोशारोपण करने से बचना चाहिए और बच्चों को समझने का प्रयास करना चाहिए। वह यह भी जानें, कि बच्चे को मातृभाषा में पढ़ने का संवैधानिक अधिकार है और यदि वह अपनी मातृभाषा में नहीं पढ़ रहा है तो इसमें शिक्षक ही दोषी है, न कि बच्चा। शिक्षक को यह भी ज्ञात हो, कि कानूनी तौर

पर उच्चतम न्यायालय ने भी मातृभाषा को शिक्षा के माध्यम के रूप में मान्य किया है।

शिक्षक के लिए इस धर्म संकट से उभरने का एक मात्र रास्ता यही है, कि वह विद्यालय में बहु-भाषाई शिक्षण करें। यदि उसे स्थानीय भाषा का ज्ञान नहीं है तो वह स्थानीय लोगों की मदद लें और भाषा सीखें। यह संभव है, कि जनजातीय लोग बहुत पढ़े-लिखे नहीं होंगे लेकिन वे अपनी भाषा के ज्ञान में तो महारथ अवश्य ही हासिल किए होंगे। आजकल सर्वशिक्षा अभियान के अंतर्गत विद्यालय विकास समितियाँ भी बनाई गई हैं। जिनमें अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति एवं महिला सदस्य अनिवार्य रूप से सम्मिलित करने का प्रावधान है। शिक्षक नवनिर्मित समिति के सदस्यों से सम्पर्क में रहकर स्थानीय समाज, समुदाय एवं भाषा के विषय में जानकारी हासिल करें। तदनुसूचित शिक्षण करें। शिक्षक अनुसूचित जनजाति बच्चों को अपने बच्चों जैसा समझें और अपने शिक्षण को बच्चों के मानसिक स्तर पर लाकर करें। कक्षा शिक्षण के दौरान बहुभाषाई शिक्षण सहायक सामग्री का उपयोग करें, जैसे- चित्र के साथ उसका स्थानीय भाषा में नाम, क्षेत्रीय भाषा के अतिरिक्त हिंदी एवं अंग्रेजी इत्यादि में बहुभाषाओं में लिखा चार्ट एवं खेलने के कार्ड (प्ले कार्ड) इत्यादि का उपयोग करें। शिक्षण में स्थानीय त्यौहार, संस्कृति, महत्वपूर्ण लोगों, जीव जंतु एवं पर्यावरण से उदाहरण दें जिससे शिक्षण वस्तु को प्रासंगिक बना सकें। तभी बच्चे आसानी से समझ सकेंगे और सीखने-सीखाने की प्रक्रिया पूरी हो सकेंगी।

जनजातीय क्षेत्रों के विद्यालयों में अक्सर देखा यह गया, कि कई वर्षों तक अधिकारी मुख्यालयों

से परिवेक्षण कार्य करने ही नहीं जाते हैं और यदि जाते भी हैं, तो केवल सड़क के किनारे के विद्यालयों या कस्बों के निकट के विद्यालयों में दौरा कर खानापूर्ति कर देते हैं। यहाँ इस बात पर कोई ध्यान ही नहीं दिया जाता, कि शिक्षक-शिक्षण किस भाषा में कर रहा है और बच्चे किस भाषा को बोलने वाले हैं। अधिकारीगण परिवेक्षण के दौरान केवल यही देखते हैं, कि शिक्षक कक्षाओं में जा रहे हैं या नहीं कि कक्षाओं में बच्चे की मातृभाषा में शिक्षण का अनुपालन हो रहा है या नहीं। आज़ादी के लगभग 60 वर्षों के बाद भी मातृभाषा और अन्य भारतीय भाषाओं के माध्यम से शिक्षण का जो सपना देखा गया था वह हकीकत से एकदम दूर है। वास्तव में यह दस्तावेजों में बन्द एक आदर्श परिकल्पना मात्र ही रह गई है। मातृभाषा में शिक्षण न केवल शिक्षण अधिगम प्रक्रिया की भौतिक, सृजनात्मक एवं गति प्रदान करता है, बल्कि अनेकानेक सामाजिक साँस्कृतिक विशेषताओं, विविधताओं का परिचय भी कराता है। बहुभाषाई शिक्षण विद्यार्थियों के परस्पर एक-दूसरे की भाषा को समझने, सहन करने, सीखने एवं ज्ञान के स्रोत का माध्यम बनती है। इसमें निःसंदेह एक शिक्षक चाहे तो देश की अनेक विलुप्त होती जनजातीय भाषाओं/बोलियों को प्रायः मृत होने से बचा सकता है और बच्चों को आनन्दपूर्वक सीखने के लिए प्रोत्साहित कर सकता है। यह कक्षा में बैठे जनजातीय बच्चों की पढ़ाई में रुचि बढ़ाने में सहायक होगा। जिससे विद्यालयों में शिक्षा के लिए उपयुक्त वातावरण निर्मित होगा। इसी प्रकार का शिक्षण कार्य एक शिक्षक से अपेक्षित है।

## संदर्भ

- ग्रिक्सन, डब्लू बी. इन सी. डी. दासवानी. 2001. *लेगुएज़ एज्युकेशन इन मल्टीलिंगुअल इण्डिया*. नई दिल्ली पटनायक डी. पी. इन सी. डी. दासवानी, 2001, *लेगुएज़ एज्युकेशन इन मल्टीलिंगुअल इण्डिया*, नई दिल्ली
- के.ह्वी.ह्वी. एल. नरसिम्हा राव, 2000, *मदरटंग एज्युकेशन थियोरी एण्ड प्रक्टिसिस, सेंट्रल इंस्टिट्यूट ऑफ इंडियन लेगुएज़*, मानस गंगोत्री मैसूर, इण्डिया
- उदय नारायण सिंह, 2004, *लेगुएज़, सोसायटी एण्ड कल्चर, सेंट्रल इंस्टिट्यूट ऑफ इंडियन लेगुएज़*, मानस गंगोत्री मैसूर, इण्डिया.
- गवर्नमेंट ऑफ इण्डिया, 2001, *जनगणना रिपोर्ट*, नई दिल्ली.
- \_\_\_\_\_ 1950, *इंडियन कांस्टीट्यूशन (भारतीय संविधान)*, नई दिल्ली.
- \_\_\_\_\_ *माध्यमिक शिक्षा आयोग 1956*, रिपोर्ट, नई दिल्ली.
- \_\_\_\_\_ *शिक्षा आयोग 1964-66*, रिपोर्ट, नई दिल्ली.
- \_\_\_\_\_ *भारतीय भाषाई सर्वेक्षण 1927*, रिपोर्ट, नई दिल्ली.
- \_\_\_\_\_ *यूनीवर्सल डिक्लरेशन ऑफ ह्यूमन राइट 1948*, नई दिल्ली.
- यूनेस्को 1997, *हेमवर्ग डिक्लरेशन ऑफ अडलट लर्निंग रिपोर्ट*, पेरिस, फ्रांस.
- \_\_\_\_\_ 2003, *एज्युकेशन इन ए मल्टीलिंगुअल वर्ल्ड*, यूनेस्को एज्युकेशन पोलीशन पेपर, यूनाइटेड नेशनस् एज्युकेशनल, सांइटिफिक एण्ड कल्चरल औरगनाइजेशन, पेरिस, फ्रांस
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, 2000, *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा*, नई दिल्ली.
- राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, 2005, *विद्यालयी शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा*, नई दिल्ली.
- \_\_\_\_\_ 2002, *सातवाँ अखिल भारतीय विद्यालयी शिक्षा सर्वेक्षण*, नई दिल्ली.

## ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी की शिक्षण प्रभावशीलता

सुरेन्द्र कुमार तिवारी\*

छात्र-छात्राओं को सरल, सुलभ तथा सहज रूप से शिक्षा देकर उनमें तकनीकी का प्रयोग करते हुए आधुनिक शिक्षा देना मुख्य उद्देश्य है। हमारे देश की भौगोलिक परिस्थितियाँ, कुशल व योग्य शिक्षकों का अभाव शालाओं में पर्याप्त शिक्षण नहीं दे पाता, इसी तारतम्य में देश के प्रत्येक नागरिक तक गुणात्मक शिक्षा पहुँचाने हेतु ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी आदि शैक्षिक चैनलों की शुरूआत शिक्षा के क्षेत्र में अत्यंत उपयोगी सिद्ध हो रही है। उपग्रह आधारित संचार प्रौद्योगिकी का सबसे बड़ा लाभ उसकी पहुँच है अर्थात् यह देश के किसी भी कोने तक पहुँच सकता है। यह दूरस्थ क्षेत्रों में पृथक-पृथक रहने वाले लोगों तक एक समय में पहुँच सकता है, अपने दृश्य व श्रव्य माध्यम से अंतःक्रियात्मक तथा गुणात्मक शिक्षा की माँग पूरी करने में ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी काफी मददगार साबित हो सकता है।

रविंद्रनाथ टैगोर ने कहा था—“शिक्षा ईंट और चूने से बने मकान की भाँति नहीं है, जिसका नक्शा मिस्त्री पहले से ही तैयार कर सकता है। शिक्षा तो वृक्ष की भाँति है, जो अपने जीवन की लय के साथ ताल मिलाकर और उसके अनुरूप विकसित होती है।”

शिक्षा किसी भी देश की समृद्धि और शक्ति का सशक्त आधार एवं राष्ट्रीय विकास का मापदण्ड है। शिक्षा के साथ-साथ राष्ट्रीय विकास का सीधा संबंध उस देश की सूचना शैक्षिक प्रौद्योगिकी अभिकरणों से होता है।

वर्तमान में देश में हर व्यक्ति को शिक्षित करने का लक्ष्य औपचारिक शिक्षा पद्धति को अपनाकर पूरा करना कठिन है। अनौपचारिक शिक्षा और दूर शिक्षा के जरिए शिक्षा का विस्तार तेजी से हो सकता है। देश के ग्रामीण और दुर्गम क्षेत्रों तक शिक्षा के फैलाव में ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी एफ. एम. रेडियो केंद्र वर्तमान में प्रमुख शैक्षिक कार्यक्रम निर्माता ऐजेंसी के रूप में कार्य कर रहे हैं।

### ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी शैक्षिक प्रसारण का उद्भव एवं विकास

ज्ञानदर्शन शिक्षा के लिए सस्ता और सर्वसुलभ दृश्य-श्रव्य माध्यम है। ज्ञानदर्शन का विधिवत् रूप से उद्घाटन 26 जनवरी 2000 को हुआ तथा दूरदर्शन द्वारा इसके उपग्रह प्रसारण की सुविधा सुलभ कराई गई। ज्ञानदर्शन को केवल उपग्रह आधारित केबिल, टी.वी. व्यवस्था के माध्यम से ही प्राप्त किया जा सकता है। जून 2000 से ज्ञानदर्शन पर प्रतिदिन 24 घंटे शैक्षिक कार्यक्रमों का प्रसारण आरंभ हो गया। ज्ञानदर्शन पर अनेक अंतर्क्रियात्मक कार्यक्रमों का भी प्रसारण आरंभ किया गया जिसमें छात्र अथवा दर्शक सीधे स्टूडियों में बैठे विशेषज्ञ से टेलीफोन, फैक्स अथवा इंटरनेट के माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान कर सकते हैं। ज्ञानदर्शन शैक्षिक टी.वी. चैनल का प्रारंभ छात्रों को अध्ययन में अधिकाधिक सहायता पहुँचाने के लिए किया गया है। ज्ञानदर्शन के उद्भव में मानव संसाधन विकास मंत्रालय तथा इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू) द्वारा विशेषकर उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् छात्रों हेतु शिक्षा की सहायक प्रणाली विकसित करने के विचार का साकार होना है। वर्तमान में ज्ञानदर्शन पर करीब चौबीस घंटे प्रसारण होता है। ज्ञानदर्शन द्वारा छात्रों हेतु अंतर्क्रियात्मक कार्यक्रमों का भी आयोजन किया जाता है। ज्ञानदर्शन के माध्यम से विभिन्न वर्गों के छात्रों हेतु समस्त विषयों पर आधारित कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है। इन कार्यक्रमों में प्राथमिक विद्यालयों,

माध्यमिक विद्यालयों, उच्चतर माध्यमिक विद्यालयों व उच्च शिक्षा में अध्ययनरत् छात्रों हेतु विभिन्न प्रकार के शैक्षिक कार्यक्रम होते हैं। इसके अतिरिक्त शिक्षकों हेतु कार्यक्रम, प्रौढ़ शिक्षा पर कार्यक्रम, दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम, कृषि आधारित कार्यक्रम तथा कंप्यूटर शिक्षा के कार्यक्रमों का प्रसारण किया जाता है।

प्रसार भारती के प्रयासों से शिक्षा के क्षेत्र में ज्ञानवाणी के नाम से एफ. एम. केंद्र की स्थापना की गई है। ज्ञानवाणी का शुभारंभ 2001 में किया गया। ज्ञानवाणी प्रसारण को आरंभ कराने में इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय (इग्नू), एन. सी.ई.आर.टी. व यू.जी.सी. का विशेष योगदान रहा। वर्तमान में ज्ञानवाणी नेटवर्क का देशभर में चालीस रेडियो केंद्र के माध्यम से प्रसारण किया जा रहा है। इनमें चार मेट्रो केंद्र दिल्ली, मुंबई, कोलकाता और चेन्नई हैं। ज्ञानवाणी के प्रत्येक प्रसारण केंद्र द्वारा 60 कि.मी. के दायरे में कार्यक्रमों को पहुँचाया जा सकता है। अतः संबंधित नगर तथा आसपास के क्षेत्रों में ज्ञानवाणी पर प्रसारित शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति व शैक्षिक समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है।

### ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी एक शैक्षिक दृश्य-श्रव्य माध्यम

ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी केंद्र के माध्यम से विभिन्न वर्गों हेतु शैक्षिक कार्यक्रमों में प्राथमिक एवं माध्यमिक कक्षाओं हेतु कार्यक्रम, उच्चतर माध्यमिक एवं उच्च शिक्षा पर आधारित कार्यक्रम, प्रौढ़ शिक्षा कार्यक्रम, तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा कार्यक्रम,

\*प्राचार्य, उमिया कन्या शिक्षा महाविद्यालय, मण्डलेश्वर, जिला-खरगोन(म.प्र.)

दूरस्थ शिक्षा कार्यक्रम, कृषि, पर्यावरण, स्वास्थ्य तथा सूचना प्रौद्योगिकी आधारित कार्यक्रमों का प्रसारण प्रमुख रूप से किया जाता है।

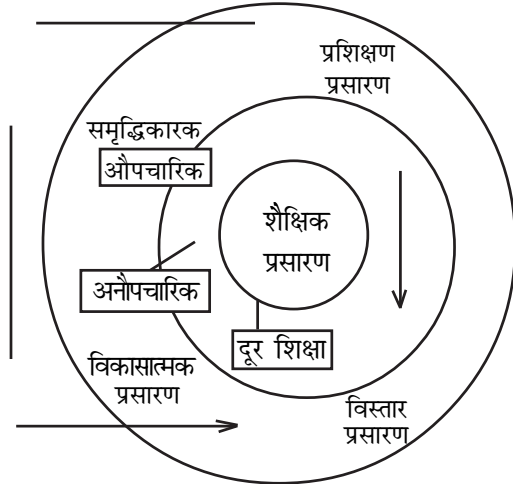
इस प्रकार ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी एफ.एम. रेडियो केंद्र से प्रसारित होने वाले विभिन्न कार्यक्रम अपने लक्ष्य समूह में जीवन संबंधी महत्वपूर्ण बातों जैसे— रोजगार, स्वास्थ्य, शिक्षा, व्यवसाय तथा अनेक ज्ञानवर्धक सूचनाओं आदि को शामिल कर बालक-बालिकाओं को मानसिक विकास के साथ-साथ राष्ट्रीय विकास में भी भागीदारी निभाने के लिए प्रेरित करता है।

शिक्षा शास्त्रियों का मानना है कि शिक्षा का अभाव आर्थिक विषमता, क्षेत्रीय असंतुलन और सामाजिक अन्याय को बढ़ावा देता है। यही कारण है कि कोठारी कमीशन (1964) ने शिक्षा को “शांतिपूर्ण सामाजिक परिवर्तन का प्रमुख औज़ार” निरूपित किया। भूमंडलीकरण की प्रक्रिया ने शिक्षा और उसकी पद्धतियों में बदलाव की आवश्यकता तेज की है। जनसंचार विशेषज्ञों का मानना है कि अच्छी शिक्षा के साधनों की माँग और उनकी पूर्ति के बीच जो भारी अंतर है, उसे कम करने में आकाशवाणी और ज्ञानवाणी एफ. एम. रेडियो नेटवर्क जैसे माध्यम प्रभावी भूमिका अदा कर सकते हैं। ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी से प्रसारित शैक्षिक कार्यक्रम बालक बालिकाओं पर निम्न प्रभाव डालने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं—

- कल्पनामय सोच के लिए आधार तैयार करते हैं।
- वे बालक-बालिकाओं में विषय के प्रति रुझान पैदा करने में सहायक होते हैं।
- वे सीखने की प्रक्रिया को स्थायी बनाते हैं।

- वे आत्मप्रेरित सक्रियता की प्रवृत्ति विकसित करते हैं।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में इस बात पर बल दिया गया है कि शिक्षा के व्यापक प्रसार के लिए शैक्षिक प्रौद्योगिकी के विविध साधनों का उपयोग किया जाना चाहिए। अतः ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी एफ. एम. रेडियो से प्रसारित कार्यक्रमों का बालक-बालिकाओं के मानसिक एवं शैक्षिक विकास में चार तरह से प्रचार हो सकता है—



ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी केंद्र से प्रसारित शैक्षिक प्रसारण से बालक-बालिकाओं के मानसिक विकास पर पड़ने वाले प्रभाव का चित्रण निरूपण।

### 1. समृद्धिकारक प्रसारण

जिससे कक्षा में पढ़ाए जा रहे विषयों में गुणात्मक सुधार लाया जा सके। अधिकांश बालक-बालिकाओं को देश के उत्कृष्ट शिक्षकों की सेवाओं का लाभ ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी प्रसारण के माध्यम से मिल सकता है।

## 2. प्रशिक्षण प्रसारण

शिक्षकों की योग्यता एवं प्रशिक्षण में वृद्धि के लिए ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी से विशेष कार्यक्रम प्रसारित किए जा सकते हैं जिससे शिक्षकों को प्रशिक्षित कर अप्रत्यक्ष रूप से बालक बालिकाओं को नवाचार शिक्षण विधि द्वारा शिक्षित किया जा सकता है।

## 3. विकासात्मक प्रसारण

अनौपचारिक शिक्षा के लिए ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी सशक्त माध्यम है। इसके माध्यम से बालक-बालिकाओं के संप्रेषण कौशल में विस्तार और व्यक्तित्व विकास के साथ-साथ परिवर्तन को स्वीकारने की प्रेरणा भी दी जा सकती है। परिवर्तन ही देश के समग्र विकास में सहायक है।

## 4. विस्तार प्रसारण

ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी केंद्र से प्रसारित कार्यक्रमों से शिक्षा से विरत-बालक बालिकाओं एवं लोगों को शिक्षा प्राप्त करने की प्रेरणा भी दे सकता है। औपचारिक, अनौपचारिक और दूर शिक्षा की आवश्यकता महत्व और लाभ आदि पर प्रसारण कर लोगों को प्रोत्साहित किया जा सकता है।

## ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी की शिक्षण प्रभावशीलनता

वैज्ञानिक माहौल तैयार करना हमारी आज की आवश्यकता है। ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी इसमें हमारी मदद कर सकता है। स्कूल व कॉलेजों में विज्ञान की शिक्षा से कहीं अधिक हमें जरूरत है वैज्ञानिक माहौल उत्पन्न करने की तथा विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के प्रारूप की शुरुआत करने की ताकि लोग

आधुनिक प्रौद्योगिकी संसार को अपना सकें। रेडियो ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में लोगों के अपार समूह पर अपना प्रभाव डाल सकता है। अतः वैज्ञानिक माहौल बनाने में इसकी मदद की जा सकती है।

वर्तमान में ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी सूचना एवं शैक्षिक प्रौद्योगिकी का सबसे सस्ता माध्यम है अतः इसे ग्रामीण एवं दूरदराज के क्षेत्रों में सर्वसुलभ बनाकर शैक्षिक कार्यक्रमों को मानक हिंदी भाषा में प्रसारित कर भाषा संप्रेषण कौशल विकसित करने से बालक-बालिकाओं के मानसिक विकास में सकारात्मक कल्पनाशीलता विकसित की जा सकती है। रेडियो का संप्रेषण ध्वनि, संगीत, संवाद, खामोशी के रचनात्मक मिश्रण से अपने श्रोताओं का किसी घटना के साथ संबंध स्थापित करा सकता है। साथ ही पर्यावरण, स्वच्छता, सामाजिक व सांस्कृतिक मूल्यों का बोध कराकर इसे मानसिक परिवर्तन के प्रमुख साधन के रूप में विकसित किया जा सकता है। सूचना, शिक्षा, मनोरंजन और समाज के अंतः संबंधों को समझने का भी यह एक सशक्त माध्यम बन सकता है। वर्तमान में सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय से इजाजत प्राप्त कर गाँव की पंचायत, विद्यालय, महाविद्यालय एवं विश्वविद्यालय समाजहित और छात्रहित के कार्यक्रम अपने रेडियो-स्टेशन लगाकर प्रसारित कर सकते हैं जो बालक-बालिकाओं के मानसिक विकास के साथ-साथ सामाजिक, संवेगात्मक एवं शारीरिक विकास में सहायक सिद्ध हो सकता है।

इस प्रकार बालक-बालिकाओं के शैक्षिक एवं मानसिक विकास के उन्नयन में ज्ञानदर्शन एवं ज्ञानवाणी से प्रसारित कार्यक्रम वर्तमान में वरदान साबित हो सकते हैं।



## संदर्भ

गुप्त, ब्रजमोहन. *जनसंचार : विविध आयाम*, राधोष्ण न प्रकाशन, नई दिल्ली

डॉ. सत्यकाम. 2003. *रेडियो और शिक्षा*. इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय मानविकी विद्यापीठ, नई दिल्ली

मूर्ति, डॉ. जेम्स ए. 2003, *रेडियो माध्यम से परिचय*, इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय मानविकी विद्यापीठ, नई दिल्ली

गंगाधर, मधुकर, *रेडिया लेखन*, बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, पटना

## नेट परीक्षा अनिवार्य क्यों हो?

नीरज प्रिया\*

सभी को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करने में योग्य शिक्षकों की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। शिक्षा के किसी विशेष स्तर पर शिक्षण करने के लिए अध्यापकों की योग्यता क्या होनी चाहिए, इस मुद्दे पर समय-समय पर चर्चा होती रही है, शोध किए जाते रहे हैं, और विभिन्न आयोगों/कमेटियों/नीतियों द्वारा संस्तुतियाँ दी जाती रही हैं। इन सबको ध्यान में रखते हुए शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर कार्य करने वाले शिक्षकों की शैक्षिक और व्यवसायिक योग्यताएँ निर्धारित की जाती रही हैं जिनमें बदलाव आता रहता है। प्रस्तुत लेख में उच्च शिक्षा क्षेत्र के कॉलेजों व विश्वविद्यालयों में कार्य करने वाले शिक्षकों के लिए नेट परीक्षा की अनिवार्यता की समीक्षा की गई है। लेखिका ने इस लेख में कॉलेज शिक्षकों के लिए नेट को अनिवार्य बनाने के मुद्दे और इससे जुड़ी समस्याओं पर चर्चा की है।

पिछले दिनों (जून 2009 में) जब यू. जी. सी. ने विश्वविद्यालयों के लिए नियुक्त छठे वेतन पुनर्विचार समिति (प्रो. चट्टा समिति) व नेट परीक्षा पर पुनर्विचार करने के लिए नियुक्त भालाचंद्रन मुंगेर समिति की रिपोर्ट के आधार पर विश्वविद्यालयों व कॉलेजों में नियुक्ति के लिए सभी एम.फिल. और उन पी.एच.डी डिग्री धारकों के लिए जिन्होंने दाखिला/डिग्री लेते वक्त यू. जी. सी. द्वारा तय नियमों/मानकों का पालन नहीं किया था, नेट परीक्षा उत्तीर्ण करने को अनिवार्य कर दिया तो शिक्षक जगत में इसका विरोध देखने को मिला। यद्यपि कइयों ने इसका समर्थन भी किया।<sup>3</sup> इसके

<sup>1</sup>Researchers to protest rally Against new UGC guidelines. Express News Service, July 8, 2009. [www.expressindia.com/latest-news](http://www.expressindia.com/latest-news)

<sup>2</sup>After doctors, teachers on strike in State, July 14, 2009 <http://m.timesofindia.com>

<sup>3</sup>Teachers observe total strike Against UGC, MHRD direction, July 23, 2009 [www.newskerala.com](http://www.newskerala.com)

विरोध का मुख्य कारण यह था कि यू. जी. सी. द्वारा नेट परीक्षा पर पुनर्विचार करने के लिए जनवरी 2006 में नियुक्त भालाचंद्रन मुंगेकर समिति ने जून 2006 में अपनी अंतरिम रिपोर्ट में विश्वविद्यालयों व कॉलेजों में नियुक्ति के लिए नेट परीक्षा पास करने की अनिवार्यता से उन उम्मीदवारों को छूट दे दी थी जिन्होंने एम.फिल. या पी.एच.डी. की हुई थी। परंतु बाद में मुंगेकर समिति ने यह पाया कि नेट परीक्षा की अनिवार्यता हटा लेने के पश्चात् से विश्वविद्यालयों व कॉलेजों में शिक्षकों की गुणवत्ता में गिरावट आयी है।<sup>4</sup> अतः मई 2009 में अपनी अंतिम रिपोर्ट में उसने फिर से नेट परीक्षा को अनिवार्य बनाने की स्तुति की। यू. जी. सी. ने छोटे वेतन पुनर्विचार समिति व भालाचंद्रन मुंगेकर समिति की सिफारिशों को मानते हुए सभी एम.फिल. व पी.एच.डी. डिग्री धारकों के लिए (उनके लिए भी जो कहीं तदार्थ अथवा अतिथि आधार पर नियुक्त तथा उनके लिए भी जिन्होंने 2006 के बाद एम.फिल. व 2002 के बाद पी.एच.डी. की थी। फिर से इसे अनिवार्य बना दिया। केवल उन पी.एच.डी. धारकों को, जिन्होंने किसी प्रतिष्ठित विश्वविद्यालय से यू. जी. सी. द्वारा तय नियमों/मानकों का पालन करते हुए पी.एच.डी. की थी, इस छूट का लाभ दिया गया तथा ऐसे पी.एच.डी. डिग्री धारकों की पहचान का कार्य विश्वविद्यालयों व कॉलेजों के ऊपर छोड़ दिया गया। अतः इसका सर्वव्यापक विरोध हुआ।

किसी भी क्षेत्र में नियुक्ति के लिए व्यक्ति को किसी न किसी परीक्षा में बैठना अनिवार्य होता है। परंतु 1988 तक विश्वविद्यालयों व कॉलेजों में शिक्षकों की नियुक्ति के लिए कोई परीक्षा पास करना अथवा सेवापूर्व ट्रेनिंग लेना आवश्यक नहीं था। ऐसा व्यक्ति जो संबंधित विषय में कम-से-कम सैकेंड डिविजन के साथ स्नातकोत्तर होता था, उस विषय में शिक्षक पद के लिए आवेदन करने व नियुक्त होने के योग्य माना जाता था। 1982 में यू. जी. सी. ने न्यूनतम योग्यता को बढ़ाकर एम. फिल./पी. एच.डी. कर दिया।

कालांतर में यह देखने में आया कि कई बार कम योग्य व्यक्ति भी जुगाड़ करके प्रवक्ता के पद पर नियुक्त हो जाते थे। साथ ही एम. फिल. और पी.एच.डी. थीसिस की गुणवत्ता और विश्वसनीयता पर भी सवाल उठते रहे।<sup>5</sup> इस स्थिति से निपटने व विश्वविद्यालय/कॉलेज स्तर पर नियुक्त शिक्षकों की गुणवत्ता को बनाए रखने के लिए 1983 में यू.जी.सी. ने प्रो. पी. सी. महरोत्रा की अध्यक्षता में एक कमेटी का गठन किया। इस कमेटी ने पहली बार कॉलेज शिक्षक की गुणवत्ता के लिए कथित विषय में स्नातकोत्तर के अतिरिक्त 'नेट' (राष्ट्रीय योग्यता परीक्षा) पास करने को अनिवार्य बनाए जाने की संतुति की। 1983 में ही वि.वि. कालेज शिक्षकों के लिए रईस अहमद की अध्यक्षता में गठित 'राष्ट्रीय शिक्षक आयोग' ने शिक्षकों के

<sup>4</sup>DUTA joins nationwide varsity strike today. July 22, 2009

[www.morungexpress.com/frontpage](http://www.morungexpress.com/frontpage)

<sup>5</sup>Review of NET conducted by UGC & UGC- CSIR

[www.ugc.ac.in](http://www.ugc.ac.in)

चुनाव/नियुक्ति में मेरिट आधार को महत्व दिए जाने की सिफारिश की।<sup>6</sup>

1986 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति में भी विश्वविद्यालय/कॉलेज शिक्षकों की नियुक्ति में मेरिट को महत्वपूर्ण माना गया। तदुपरांत 22 जुलाई 1988 को केंद्र सरकार ने एक गेजेट नोटिफिकेशन द्वारा विश्वविद्यालय/कॉलेज स्तर पर शिक्षकों की नियुक्ति के लिए नेट परीक्षा आयोजित करने का उत्तरदायित्व यू.जी.सी. को सौंप दिया। 24 दिसंबर 1988 को पहली बार यू.जी.सी. ने मानवीकी समूह (Humanities group) के लिए नेट परीक्षा का आयोजन किया। विज्ञान समूह के लिए इस प्रकार की परीक्षा का आयोजन यू.जी.सी. व सी.एस.आई. आर. ने मिलकर किया। 19 सितंबर 1991 को यू.जी.सी. ने नोटिफिकेशन के द्वारा विश्वविद्यालय/कॉलेज शिक्षकों की नियुक्ति में स्नातकोत्तर स्तर पर 55% प्रतिशत अंको के अलावा नेट परीक्षा को उत्तीर्ण करना अनिवार्य कर दिया।<sup>7</sup>

नेट परीक्षा केंद्रीय विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों के आधार पर आयोजित की गई थी।<sup>8</sup> अतः हर व्यक्ति के लिए इसे पास करना आसान नहीं था। इसका कारण यह था कि केंद्र व विभिन्न राज्यों के विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रमों में एकरूपता नहीं थी। उनमें काफी अंतर था। जैसे— आज भी कहीं छात्र स्नातकोत्तर स्तर पर 16 पेपर पढ़ते हैं (दिल्ली वि.वि.) तो कहीं 8 या 9 (उत्तर प्रदेश, हरियाणा, राजस्थान आदि)। अतः ऐसे उम्मीदवार

जो किसी भी कारण से (जैसे— परीक्षा का माध्यम अँग्रेजी होना) इस परीक्षा को पास नहीं कर पा रहे थे परंतु कॉलेजों में नियुक्ति के इच्छुक थे, नेट की अनिवार्यता को समाप्त करने तथा मातृभाषा में परीक्षा आयोजित करने के लिए दबाव डालने लगे। अतः यू.जी.सी. ने 1990 में यू-कैट (यू.जी.सी. कमेटी ऑन एकरीडिशन ऑफ टैस्ट) बनाई जिसने विभिन्न राज्यों को अपने-अपने राज्यों में सेट (SET) या स्लैट (SLET) परीक्षा (एक तय सीमा के लिए) आयोजित करने की इजाजत दे दी तथा जिस पर यू.जी.सी. नजर रखने वाली थी। परिणामस्वरूप कुछ राज्यों व केंद्रशासित प्रदेशों ने (महाराष्ट्र, गोवा, तमिलनाडू, मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, हिमाचल प्रदेश, जम्मू एवं कश्मीर, राजस्थान, प. बंगाल, सभी उत्तर पूर्व राज्य और सिक्किम, कर्नाटक) नेट के विकल्प के रूप में यू.जी.सी. की तर्ज पर अपने राज्यों में सेट (State Eligibility Test) SLET (State Level Eligibility Test) परीक्षाओं का आयोजन करना शुरू कर दिया जिनका माध्यम अँग्रेजी व देशी भाषाएँ थीं।<sup>9</sup>

राज्य स्तर पर आयोजित इन परीक्षाओं का स्तर नेट से कम था। अतः ऐसा देखा गया कि जो व्यक्ति नेट परीक्षा पास नहीं कर पा रहा था, वह भी आसानी से सेट परीक्षा पास कर लेता था। इसके अतिरिक्त इन परीक्षाओं के आयोजनों में तरह-तरह की धाँधली के आरोप भी लगने लगे

<sup>6</sup>ibid;

<sup>7</sup>ibid

<sup>8</sup>Concept of NET/ SLET

www.ugc.ac.in

<sup>9</sup>ibid

(आमदे, 2008, अहमद, 2008)। अतः यू.जी.सी. द्वारा 1.11.2001 को यह घोषणा की गई कि जून 2002 व उसके बाद आयोजित सेट या स्लैट परीक्षा में पास व्यक्ति केवल उसी राज्य के विश्वविद्यालय/कॉलेज में नियुक्ति के लिए योग्य होगा, जिस राज्य की स्लैट परीक्षा उसने पास की होगी जबकि नेट परीक्षा पास व्यक्ति देश के किसी भी विश्वविद्यालय में नियुक्ति के योग्य माना जाएगा।<sup>10</sup>

इस बीच नेट को हटाने के दबाव लगातार यू.जी.सी. और मानव संसाधन विकास मंत्रालय पर पड़ते रहे। इसके लिए यह तर्क दिया गया कि नेट परीक्षा की अनिवार्यता के कारण एम.फिल. व पी.एच.डी. किए हुए बहुत से योग्य उम्मीदवार नौकरी पाने से वंचित रह गए थे साथ ही नियुक्ति के लिए उपयुक्त संख्या में नेट उत्तीर्ण उम्मीदवार भी उपलब्ध नहीं हो पा रहे थे।<sup>11</sup> इसी के चलते 1993 में उन उम्मीदवारों को जो 31 दिसंबर 1993 तक अपनी एम.फिल. या पी.एच.डी. थीसीस जमा करा देंगे, नेट की अनिवार्यता से छूट दे दी गई। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि हजारों की संख्या में छात्र-छात्राओं ने तय सीमा के अंदर अपनी थीसीस जमा करवा दी जिससे उनकी गुणवत्ता पर तरह-तरह के सवाल उठाए जाने लगे।

नेट की अनिवार्यता को समाप्त करने को लेकर बढ़ते दबावों के बीच 1999 में एक बार फिर 1993 के बाद के सभी पी.एच.डी. धारकों के लिए नेट की अनिवार्यता को हटा लेने का निर्णय लिया गया। परंतु जल्दी ही इस निर्णय पर यह आरोप लगा कि ऐसा कुछ खास लोगों को लाभ पहुँचाने के उद्देश्य से किया गया है।<sup>12</sup> अतः अप्रैल 2000 में इस छूट को वापिस ले लिया गया। परंतु जुलाई 2002 में फिर यह घोषणा की गई कि जो व्यक्ति 31 दिसम्बर 2002 तक अपनी पी.एच.डी. थीसीस जमा करा देंगे, को नेट की अनिवार्यता से छूट दे दी जाएगी। एम.फिल. वालों को यह छूट नहीं दी गई। परिणामस्वरूप एक बार फिर तय सीमा के भीतर पी.एच.डी. थीसीस जमा करवाने वालों का तांता लग गया तथा शिक्षा की गुणवत्ता ने इस घोषणा के नीचे दबकर दम तोड़ दिया।<sup>13</sup> ऐसा कुछ विशेष राज्यों में ज्यादा देखने को मिला (हिंदी-भाषी राज्य)।

इस सबके बावजूद नेट की अनिवार्यता को हटाए जाने के लिए पड़ रहे लगातार दबावों के चलते यू.जी.सी. ने नेट रिव्यू कमेटी की सिफारिश पर जून 2006 में सभी एम.फिल. या पी.एच.डी. धारकों के लिए क्रमशः स्नातक व स्नातकोत्तर स्तर पर नियुक्ति में नेट की अनिवार्यता को अनिश्चित काल के लिए हटा लिया।<sup>14</sup> बाद में

<sup>10</sup> ibid

<sup>11</sup> UGC demotes 4,000 Bihar readers and professors (UGC guidelines were not followed), Hindustan Times, March 7, 1993

<sup>12</sup> Agnihotri, Peeyush- Decision irks NET- qualified, Ed. Tribune, Chandigarh, Jan. 11, 1999.

<sup>13</sup> Sharda Prasad, H. Y. - The Indian Ph. D. noodles factory (UGC has become the victim of the pressures of politicians, teachers and non-teaching employees trade unions), July 21, 1999.

<sup>14</sup> Ramachandran, Smriti Kak- NETexam not to be scrapped, Tribune News Service, Oct. 11, 2006 (Sources told the tribune that the UGC had been "compelled to reconsider the decision to make NET optional").

सन् 2008 में यू.जी.सी की नेट रिव्यू कमेटी ने इस छूट को एम.फिल. वालों के लिए जून 2009 तक तथा पी.एच.डी. वालों के लिए 2011 तक जारी रखने की बात कही। इन सबका परिणाम यह हुआ कि अब हर छात्र स्नातकोत्तर करते ही अपने आपको एम.फिल./पी.एच.डी. में रजिस्टर करवाने लगा तथा खुला विश्वविद्यालय भी दूरस्थ शिक्षा के माध्यम से हजारों की संख्या में छात्रों को एम.फिल. व पी.एच.डी. करवाने लगे जिससे इनकी गुणवत्ता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ा।<sup>15</sup> अतः यू.जी.सी. ने नेट रिव्यू कमेटी की अंतिम रिपोर्ट की सिफारिश को स्वीकार करते हुए नेट परीक्षा को फिर से अनिवार्य कर दिया। साथ ही यू.जी.सी. ने अगस्त 2009 में दूरस्थ माध्यम से खुला विश्वविद्यालय द्वारा (इग्नू भी) एम.फिल. व पी.एच.डी. करवाने पर भी रोक लगा दी।<sup>16</sup>

यह देखने में आया कि जब-जब नेट की अनिवार्यता खत्म की गई उच्च शिक्षा में शिक्षकों की गुणवत्ता नकारात्मक रूप से प्रभावित हुई। कुछ समय पहले एक जाने-माने विश्वविद्यालय के संबंध में यह खबर पढ़ने को मिली थी कि वहाँ एम.फिल. व पी.एच.डी. थीसीस की खरीद-फरोख्त खुले आम हो रही है। यही नहीं छात्र-यूनियन तक शिक्षकों व वाइस-चांसलर की नियुक्ति में दखल दे रही हैं। कहना न होगा कि

यदि शिक्षकों की नियुक्ति में नेट की अनिवार्यता बनी रहती तो इस परिस्थिति पर काफी हद तक अंकुश लगा रहता।

यहाँ पर यह बात भी गौर करने लायक है कि ऐसा सिर्फ बड़े विश्वविद्यालयों में नहीं हो रहा और न ही पहली बार हो रहा था।<sup>17</sup> कई ऐसे विश्वविद्यालय हैं (विशेषकर छोटे व पिछड़े राज्यों के) जो घर बैठे 18 से 22 महीने में ही पी.एच.डी. करवा रहे हैं। दिल्ली जैसे शहर में भी कुछ लोग पैसा लेकर दूसरों के लिए थीसीस लिखने का काम कर रहे हैं। यह भी देखने में आया है कि एक ही विषय पर कई छात्र थीसीस लिख रहे हैं। अब ऐसे व्यक्ति, जो पैसे देकर थीसीस लिखवा रहे हैं अथवा घर बैठे डिग्री खरीद रहे हैं, जब पैसे या सिफारिश के बल पर विश्वविद्यालय में नियुक्ति पा लेंगे तो उच्च शिक्षा और अपने छात्रों के साथ कितना न्याय कर पाएँगे कहने की जरूरत नहीं।

यद्यपि नेट उत्तीर्ण कर लेना न तो योग्यता की सौ प्रतिशत गारंटी है और न ही नेट पास व्यक्ति को अनिवार्य रूप से नियुक्ति मिल ही जाएगी/मिल जाती है, इसकी कोई गारंटी है क्योंकि देखने में आया है कि कभी-कभी कम योग्य व्यक्ति भी नेट परीक्षा पास कर लेते हैं यद्यपि ऐसा कम ही होता है। साथ ही यह भी देखा गया है कि संबंधित विभाग द्वारा कोई पद तब तक

<sup>15</sup>Kulkarni, Kaustub- No M. Phil., Ph. D. at Open University, Aug. 10, 2009.  
www.business-standard.com/india

<sup>16</sup>ibid

<sup>17</sup>Gupta, Dr. Y. P. - Alarming erosion of academic norms, Indian Express, Oct. 6, 1990  
- Professor sacked for copying theses, Hindustan Times, Dec. 23, 1991  
Sudaram, P. S. - Ph. D. at what cost?, The Hindu, Dec. 24, 1991.

नहीं भरा जाता जब तक कि उनका अपना उम्मीदवार तय योग्यता प्राप्त नहीं कर लेता।<sup>18</sup> चूँकि नेट पास व्यक्ति को सीनियोरिटी के आधार पर अर्थात् किस वर्ष में व कितने प्रयास के पश्चात नेट परीक्षा पास की है, कोई प्राथमिकता नहीं दी जाती। अतः कभी-कभी एक दिन पहले घोषित नेट के परीक्षा परिणाम में उत्तीर्ण व्यक्ति को तत्काल नियुक्त कर लिया जाता है जबकि पाँच, सात या उससे अधिक वर्ष पहले नेट परीक्षा पास कर चुका उसका सीनियर मुँह ताकता रह जाता है। इसके बावजूद उच्च शिक्षा संस्थानों में शिक्षकों की नियुक्ति में नेट की अनिवार्यता को नकारा नहीं जा सकता।

उपरोक्त परिस्थिति से बचने के लिए कुछ

अन्य तरीके अपनाए जा सकते हैं। जैसे- साक्षात्कार में उस विश्वविद्यालय को, जहाँ से डिग्री ली है, गोल्ड मैडलिस्ट को, किस वर्ष में तथा कितने प्रयास के बाद परीक्षा पास की है, नेट के साथ जे.आर.एफ. भी पास करने वाले को, तथा गुणात्मक स्तर के प्रकाशनों को अतिरिक्त अंक अथवा महत्व देकर योग्य व्यक्ति का चयन किया जा सकता है। एक अन्य विकल्प यू.पी.एस.सी. द्वारा सिविल सर्विसेज की तर्ज पर इनके लिए कोई परीक्षा आयोजित करना की जा सकती है। यू.जी.सी. को भी बार-बार नेट परीक्षा के संबंध में अपने निर्णयों को बदलते नहीं रहना चाहिए। इससे योग्य व्यक्ति का हित होगा और शिक्षा की गुणवत्ता भी बनी रहेगी।

## संदर्भ

आमदे, धीरज बी. 2008. नेट/सेट एक्जंपेशन : इवैल्यूएशन एंड फाइंडिंग्स. यूनिवर्सिटी न्यूज. 46(23), प्र.-1-5.

अहमद, शकील 2008. यूजीसी-नेट : ए मेजर टू मैनेटेन क्वालिटी इन टीचिंग एंड रिसर्च, यूनिवर्सिटी न्यूज, 46(20), प्र.-1-5.

<sup>18</sup>Protest against delay in appointment, TNN, Sep 10, 2001

<http://timesofindia.indiatimes.com/articleshow>

Rajiv Gandhi Varsity of Law: Staff continues to be 'temporary' since 2006, Sep.16, 2009

[www.4jat.com/jat\\_community\\_article](http://www.4jat.com/jat_community_article)

## शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता और प्रशिक्षण आवश्यकताओं का अध्ययन

पी.के. साहू\*  
रमा गुप्ता\*\*

‘सर्वशिक्षा अभियान’ के अंतर्गत देश के कोने-कोने में स्थित प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षकों की कमी को पूरा करने के लिए ‘शिक्षा मित्रों की नियुक्ति की जाती है। ये शिक्षा मित्र विद्यालय में स्थायी शिक्षकों के साथ ही कार्य करते हैं और विद्यालय की अन्य गतिविधियों और अन्य भूमिकाओं का निर्वाह करते हैं जिनकी अपेक्षा एक सामान्य शिक्षक से भी की जाती है। क्या ये शिक्षा मित्र शिक्षण कार्य प्रभावपूर्ण तरीके से कर पाते हैं। क्या इनकी शिक्षण विधियाँ विद्यालयों में कार्यरत स्थायी शिक्षकों से भिन्न होती है? क्या ये पाठ्यविषयों का समुचित ज्ञान रखते हैं? किन कक्षाओं के शिक्षण में ये अधिक प्रभावशाली पाए गए हैं? विभिन्न शिक्षण कार्यों के लिए क्या ये पर्याप्त रूप से प्रशिक्षित हैं और भविष्य में इन्हें किस प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता है? आदि शिक्षा मित्रों से जुड़े बिंदुओं पर चर्चा करता है यह शोधपरक लेख।

शिक्षा एक सतत् विकासशील प्रक्रिया है जिसमें शिक्षकों की भूमिका सदैव सर्वोपरि रही है। अध्यापक शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करता है और राष्ट्र के भावी कर्णधारों के भविष्य को संरक्षण प्रदान करता है। शिक्षा क्षेत्र में अपेक्षित प्रगति शिक्षकों की सक्रिय एवं निष्ठापूर्ण भूमिका पर ही निर्भर करती है।

शिक्षक ही विद्यालय तथा शिक्षा पद्धति की वास्तविक गत्यात्मक शक्ति है। यह सत्य है कि विद्यालय भवन, पाठ्य सहगामी क्रियाएँ, निर्देशन कार्यक्रम, पाठ्य पुस्तकें आदि सभी वस्तुएँ शैक्षिक कार्यक्रम में बहुत महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं, परंतु जब तक उनमें अच्छे शिक्षकों द्वारा जीवन शक्ति प्रदान नहीं की जाएगी, तब तक वे निरर्थक रहेंगी।

\*विभागाध्यक्ष, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश।

\*\*शोधछात्रा, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश।



शिक्षक ही राष्ट्रीय व भौगोलिक सीमाओं को लांघकर विश्व व्यवस्था तथा मानव जाति को उन्नति के पथ पर अग्रसर करता है। अतः यह कहा जा सकता है कि मानव समाज व देश की उन्नति उत्तम शिक्षकों पर निर्भर है।

भारत में शिक्षा के सार्वभौमीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करना हमारी संवैधानिक प्रतिबद्धता है। इस लक्ष्य की संपूर्ति में प्रयासरत शासन द्वारा शिक्षित युवा पीढ़ी की सहभागिता प्राप्त करने और सामुदायिक सेवा हेतु प्रेरित करने हेतु शिक्षामित्रों का एक बहुत बड़ा वर्ग प्राथमिक शिक्षा विभाग से जुड़ा है। संपूर्ण भारतवर्ष में 'सर्वशिक्षा अभियान' के अंतर्गत प्राथमिक स्तर पर बच्चों की संख्या की वृद्धि के फलस्वरूप नए प्राथमिक विद्यालय खोले गए। उत्तर प्रदेश के प्राथमिक विद्यालयों में जिन रिक्त पदों के प्रति सहायक अध्यापकों की नियुक्ति नहीं हो सकी उन पदों के प्रति कक्षा 1 और 2 में शिक्षण हेतु 'शिक्षामित्र योजना-2001' के अंतर्गत शिक्षामित्रों की नियुक्ति की गई। शिक्षा व्यवस्था की रीढ़ शिक्षक ही होते हैं जो विद्यालय में बच्चों को पढ़ाने का कार्य करते हैं और बच्चों की नींव मजबूत बनाते हैं। समय व समाज की आवश्यकताओं में परिवर्तन के साथ ही शिक्षकों की भूमिका बदली है। न्यायपालिका ने प्राथमिक शिक्षा को अनिवार्य करने का विधान बनाया है परंतु हमारे कई प्राथमिक विद्यालय इतने अनाकर्षक हैं कि छात्र उनमें प्रवेश लेने के कुछ समय बाद ही विद्यालय छोड़ देते हैं। न्यायपालिका इन्हें आकर्षक नहीं बना सकती, केवल शिक्षक ही इसे आकर्षक बना सकते हैं जिन्हें आज परिवर्तन अभिकर्ता का दायित्व निभाना होगा।

**कुण्डू, अहमद व दास (1999)** द्वारा किए गए अध्ययन यह दर्शाते हैं कि शिक्षकों का अभिप्रेरणा स्तर, नवाचार युक्त शिक्षक प्रशिक्षण और शिक्षक दक्षता विद्यार्थियों की उपस्थिति व विद्यालय समुदाय संबंधों को प्रभावित करते हैं।

प्राथमिक शिक्षा का स्तर व स्थिति सुधारने हेतु केंद्र व राज्य सरकारों द्वारा कई योजनाओं को कार्यान्वित करने के पश्चात् भी प्राथमिक शिक्षा की स्थिति में अपेक्षित सुधार नहीं आ पा रहा है। बच्चों व उनके माता-पिता को शिक्षा के प्रति चैतन्य बनाने में हम आज भी असफल हैं।

भारत के ग्रामीण इलाकों में अधिकांश जनता गरीब व अशिक्षित है, अतः इन क्षेत्रों में प्राथमिक शिक्षा के प्रसार हेतु शिक्षकों की भूमिका और भी महत्वपूर्ण होती है। शिक्षामित्रों की नियुक्ति विशेष रूप से ग्रामीण इलाकों में शिक्षकों की कमी को दूर करने के लिए की गई है जिससे शिक्षकों के सक्रिय योगदान द्वारा ग्रामीण जनता को अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा दी जा सकें। गारिमा, सिंह व जोशी द्वारा किए गए अध्ययन के परिणाम यह दर्शाते हैं कि विद्यालयों में उपस्थिति व शिक्षण कार्य में शिक्षामित्र, बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षकों से अधिक नियमित हैं।

प्राथमिक स्तर पर नियुक्त शिक्षामित्रों को नियुक्ति के पूर्व मात्र 30 दिन का औपचारिक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है जबकि बी.टी.सी. शिक्षकों को 1 वर्ष व विशिष्ट बी.टी.सी. शिक्षकों को 6 माह का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। प्रस्तुत अध्ययन यह ज्ञात करने के उद्देश्य से किया गया है कि प्राथमिक स्तर पर नियुक्त शिक्षामित्र अपना शिक्षण कार्य कितनी प्रभावशीलता के साथ कर रहे हैं।

ग्राम शिक्षा समिति द्वारा प्रस्ताव पारित कर संबंधित गाँव के विद्यालय में निश्चित मानदेय पर उसी गाँव के 18 से 30 वर्ष वर्ग के इण्टरमीडिएट अथवा समकक्ष योग्यताधारी पुरुष अथवा महिला अभ्यर्थी को निर्धारित योग्यता क्रम के अनुसार चालू सत्र की संविदा पर मई मास के अंतिम दिवस तक के लिए शिक्षामित्र रखा जाता है।

शिक्षा क्षेत्र में अपेक्षित प्रगति का दायित्व शिक्षकों के कंधों पर ही है। प्रभावशाली शिक्षण के द्वारा ही विद्यालयों में नामांकित होने वाले विद्यार्थियों को विद्यालय छोड़ने से रोका जा सकता है और पढ़ाई में उनकी रुचि जागृत की जा सकती है। यद्यपि सभी शिक्षकों को प्रभावशाली होना चाहिए परंतु वास्तविकता इससे अलग है। कई बार ऐसा होता है कि शिक्षक अपनी इच्छानुसार शिक्षण को व्यवसाय के रूप में नहीं चुनते हैं और उनके चयन के लिए भी कोई वैज्ञानिक प्रक्रिया नहीं है अपितु उनका चयन केवल विषय ज्ञान के आधार पर कर लिया जाता है। ऐसी स्थिति में यह ज्ञात करना आवश्यक हो जाता है कि शिक्षामित्र अपने शिक्षण कार्य के प्रति कितने समर्पित हैं और विद्यार्थियों को पढ़ाने में कितने प्रभावशाली हैं।

शिक्षामित्रों पर पूर्व में हुए अध्ययनों में चौरसिया शोभा (2005) द्वारा शिक्षामित्रों के कक्षा शिक्षण क्रियाकलाप पर अध्ययन द्वारा प्राथमिक स्तर पर शिक्षकों की प्रभाविता का निम्न क्रम प्रस्तुत हुआ-बी.टी.सी. शिक्षक, शिक्षामित्र व बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षक, सिंह आर. पी. (2002) द्वारा परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में पूर्णकालिक शिक्षकों व शिक्षामित्रों की कक्षा शिक्षण प्रक्रिया का तुलनात्मक

अध्ययन करने पर यह पाया गया कि बच्चों को सहभागिता के साथ पढ़ाने मूल्यांकन करने, विद्यार्थियों के गलत व्यवहारों को बताने और प्रतियोगिता को बढ़ावा देने में दोनों समूह के शिक्षकों में सार्थक अंतर है। कुमार, सुरेन्द्र (2003) ने प्राथमिक स्तर पर शिक्षामित्रों एवं नियमित शिक्षकों की शिक्षण दक्षता का अध्ययन किया और अपने निष्कर्ष में पाया कि 99% विश्वस्तता अंतराल पर बी.टी.सी. प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षक, शिक्षामित्रों से अनुदेशन की तैयारी की योग्यता, शैक्षिक सामग्री का विकास, निर्माण व उनके उपयोग की दक्षता, कक्षा-कक्ष संप्रेषण की दक्षता व अनुदेशन की विधि में दक्षता पर अधिक दक्ष पाए गए वही 95% विश्वस्तता स्तर पर बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षकों व शिक्षामित्रों की अधिगम के मूल्यांकन की दक्षता तथा पहचान व उपचार की दक्षता में अंतर नहीं पाया गया।

ज्ञान व व्यवहार के मध्य की दूरी को समाप्त करके कर्तव्यनिष्ठा का भाव जागृत करने व कार्य दक्षता प्राप्ति हेतु शिक्षामित्रों को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। इस प्रशिक्षण की अवधि 30 दिन की होती है। एक वर्ष तक विद्यालय में कार्य करने के पश्चात् पुनः नियुक्ति के पूर्व शिक्षामित्रों को 15 दिन का पुनर्बोधत्मक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। कुमार राजेश (2000) द्वारा प्राथमिक स्तर पर सेवाकालीन प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले एवं न प्राप्त करने वाले शिक्षकों की शिक्षण अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन किया गया और यह पाया गया कि सेवा पूर्व प्रशिक्षण शिक्षकों के व्यावसायिक ज्ञान में वृद्धि करता है। शुक्ला, ए. व अन्य (2005) द्वारा शिक्षामित्रों की

प्रशिक्षण गुणवत्ता के प्रभाव और प्रशिक्षण आवश्यकताओं पर अध्ययन किया गया और यह पाया गया कि लगभग 50% शिक्षामित्र प्रशिक्षण अवधि और प्रशिक्षण के दौरान उपलब्ध भौतिक संसाधनों को अपर्याप्त मानते हैं। पुरुष शिक्षामित्रों की तुलना में महिला शिक्षामित्र प्रशिक्षण कार्यक्रम को अधिक प्रभावी मानते हैं।

शिक्षामित्रों को नवीन ज्ञान, कौशलों व मूल्यों से परिचित कराकर उनके शिक्षण को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए आनुभाविक आधार प्रदान करने हेतु शिक्षामित्रों की प्रशिक्षण आवश्यकताओं को अध्ययन हेतु चयनित किया गया।

**उद्देश्य** — प्रस्तुत शोध कार्य के लिए निम्न उद्देश्य निर्धारित किए गए—

1. प्राथमिक स्तर पर बी.टी.सी. प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता व शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता की तुलना करना।
2. प्राथमिक स्तर पर पुरुष शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता व महिला शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता की तुलना करना।
3. प्राथमिक स्तर पर नियुक्त शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता का गुणात्मक विश्लेषण द्वारा अध्ययन करना।
4. प्राथमिक स्तर पर नियुक्त शिक्षामित्रों की सेवाकालीन प्रशिक्षण आवश्यकताओं का अध्ययन करना।

### अनुसंधान विधि

प्रस्तुत अध्ययन हेतु वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। अध्ययन

को पूर्ण करने के लिए निम्न शोध अभिकल्प का निर्धारण किया गया—

### अनुसंधान विधि

अनुसंधान कार्य हेतु वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

### न्यादर्श

न्यादर्श के रूप में इलाहाबाद जनपद में कार्यरत शिक्षामित्रों व बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षकों को चयनित किया गया व प्राथमिक विद्यालय की 180 कक्षा परिस्थितियाँ जिनमें शिक्षामित्र और बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षक शिक्षण कार्य करते हैं, को भी सम्मिलित किया गया।

### शोध उपकरण

प्रस्तुत अध्ययन में कक्षा प्रेक्षण हेतु स्वनिर्मित 'शिक्षण प्रभावशीलता प्रेक्षण अनुसूची' का प्रयोग किया गया है। इस अनुसूची में कुल 25 पदों को सम्मिलित किया गया है जो व्यावहारिक हैं व हमारी आज की शिक्षण व्यवस्था में शिक्षक को उन बिंदुओं पर प्रभावी होना वांछित है।

**प्रदत्तों का विश्लेषण तथा व्याख्या** — प्रदत्तों के विश्लेषण के लिए उद्देश्यानुसार  $t$  अनुपात व प्रतिशत का प्रयोग किया गया व व्याख्या हेतु गुणात्मक व परिमाणात्मक विधियों का प्रयोग किया गया। उद्देश्य 1 हेतु निम्नवत् 5 शून्य परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है—

**उद्देश्य-1** — प्राथमिक स्तर पर बी.टी.सी. प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता और शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता की तुलना करना।

शोध अभिकल्प						
उद्देश्य-1	परिकल्पना	न्यादर्श	प्रयुक्त उपकरण	आँकड़ा संग्रहण प्रविधि	आँकड़ों का विश्लेषण और व्याख्या	
उद्देश्य-1 प्राथमिक स्तर पर बी.टी.सी. प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता और शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता की तुलना करना।	प्राथमिक स्तर पर बी.टी.सी. प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता व शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता में सार्थक अंतर है।	यादृच्छिक रूप से चयनित 30 बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षक व 30 शिक्षामित्र व प्रत्येक की तीन कक्षा शिक्षण परिस्थिति।	शिक्षण प्रभावशीलता प्रेक्षण अनुसूची।	प्रेक्षण विधि द्वारा आँकड़ों के संग्रहण हेतु न्यादर्श के प्रत्येक शिक्षक की तीन कक्षाओं का प्रेक्षण।	आँकड़ों के विश्लेषण हेतु टी परीक्षण के प्रयोग द्वारा दोनों समूहों के मध्यमानों के अंतर की सार्थकता ज्ञात की गई।	
उद्देश्य-2 प्राथमिक स्तर पर नियुक्त महिला शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता व पुरुष शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता की तुलना करना।	प्राथमिक स्तर पर नियुक्त, महिला शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता व पुरुष शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता में सार्थक अंतर है।	यादृच्छिक रूप से चयनित 10 पुरुष शिक्षा-मित्र व 10 महिला शिक्षामित्र	शिक्षण प्रभावशीलता प्रेक्षण अनुसूची।	प्रेक्षण विधि द्वारा आँकड़ा संग्रहण हेतु न्यादर्श के प्रत्येक शिक्षामित्र की तीन कक्षाओं का प्रेक्षण।	आँकड़ों के विश्लेषण हेतु टी परीक्षण के प्रयोग द्वारा दोनों समूहों के मध्यमानों के अंतर की सार्थकता ज्ञात की गई।	
उद्देश्य-3 प्राथमिक स्तर पर शिक्षामित्र प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता का अध्ययन करना		उद्देश्य-1 की पूर्ति हेतु चुने गये 30 शिक्षामित्रों में से 5 शिक्षामित्र।		अवलोकन तकनीक द्वारा न्यादर्श के सभी 5 शिक्षामित्रों के शिक्षण व्यवहार का गहन अध्ययन।	अवलोकन द्वारा एकत्र किये गये आँकड़ों का गुणात्मक विश्लेषण।	
उद्देश्य-4 प्राथमिक स्तर पर शिक्षामित्रों की सेवाकालीन प्रशिक्षण आवश्यकताओं का अध्ययन करना।		उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन प्रविधि द्वारा चयनित 60 शिक्षामित्र।	साक्षात्कार सूची।	साक्षात्कार द्वारा गुणात्मक आँकड़ों का संग्रहण।	गुणात्मक विश्लेषण द्वारा वर्तमान प्रशिक्षण कार्यक्रम का मूल्यांकन तथा साक्षात्कार द्वारा व प्रतिशत विश्लेषण द्वारा वांछित प्रशिक्षण के स्वरूप का निर्धारण।	

**शून्य परिकल्पना** — प्राथमिक स्तर पर बी.टी.सी. प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता व शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

उपरोक्त परिकल्पना के परीक्षण हेतु निम्न 5 शून्य परिकल्पनाओं का निर्माण किया गया—

**शून्य परिकल्पना 1** — प्राथमिक स्तर पर बी.टी.सी. प्रशिक्षण प्राप्त शिक्षकों की अनुदेशन की तैयारी पर प्राप्तांको के मध्यमान व शिक्षामित्रों की अनुदेशन की तैयारी पर प्राप्तांको के मध्यमान में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

**शून्य परिकल्पना 2** — प्राथमिक स्तर पर बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षकों के कक्षा शिक्षण क्रियाकलाप पर प्राप्तांको के मध्यमान व शिक्षामित्रों के कक्षा शिक्षण क्रियाकलाप पर प्राप्तांको के मध्यमान में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

**शून्य परिकल्पना 3** — प्राथमिक स्तर पर बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षकों के शिक्षक छात्र अंतःक्रिया पर प्राप्तांको के मध्यमान व शिक्षामित्रों के शिक्षक छात्र अंतःक्रिया पर प्राप्तांको के मध्यमान में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

**शून्य परिकल्पना 4** — प्राथमिक स्तर पर बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षकों के अनुदेशन गतिविधि पर प्राप्तांको के मध्यमान व शिक्षामित्रों के अनुदेशन गतिविधि पर प्राप्तांको के मध्यमान में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

**शून्य परिकल्पना 5** — प्राथमिक स्तर पर बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षकों के मूल्यांकन गतिविधि पर प्राप्तांको के मध्यमान व शिक्षामित्रों के मूल्यांकन गतिविधि पर प्राप्तांको के मध्यमान में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

उपरोक्त परिकल्पनाओं के परीक्षण हेतु लगाये गये टी अनुपात की सारणी निम्न है—

बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षकों व शिक्षामित्रों की अनुदेशक की तैयारी, कक्षा शिक्षण क्रिया कलाप, शिक्षक छात्र अन्तःक्रिया व मूल्यांकन गतिविधि पर प्राप्त ज का मान क्रमशः 2.17, 2.5, 2.37 व 2.29 है जो कि .05 स्तर पर द्विपुच्छीय परीक्षण हेतु ज के सारणी मान 2.01 से अधिक है अतः शून्य परिकल्पनाएं 1, 2, 3, व 5 को .05 सार्थकता स्तर पर निरस्त किया जाता है जबकि बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षकों व शिक्षामित्रों की अनुदेशन गतिविधि पर प्राप्त ज का मान 1.6 है जो कि .05 स्तर पर द्विपुच्छीय परीक्षण हेतु ज के सारणी मान 2.01 से कम है अतः शून्य परिकल्पना को स्वीकृत किया जाता है।

उपरोक्त परिणामों की व्याख्या निम्न प्रकार से की जा सकती है—

- (i) सारणी से यह स्पष्ट है कि बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षकों की अनुदेशन की तैयारी पर मध्यमान 9.83 है जबकि शिक्षामित्रों का मध्यमान 6.24 है अतः बी.टी.सी. शिक्षकों के अनुदेशन की तैयारी के अन्तर्गत पाठ योजना को प्रस्तुत करना, आवश्यक सहायक शिक्षण सामग्री को तैयार करना, कक्षा में उचित अधिगम वातावरण निर्मित करना व छात्रों की अधिगम संबंधी जिज्ञासा की पहचान करना आदि पर उनके द्वारा प्राप्त प्रशिक्षण का प्रभाव पड़ता है और वे इन सभी क्षेत्रों में शिक्षामित्रों से बेहतर प्रदर्शन करते हैं।
- (ii) कक्षा शिक्षण क्रियाकलाप पर बी.टी.सी. शिक्षकों का मध्यमान 12.4 है जबकि शिक्षामित्रों का

**t अनुपात की तालिका**

क्र.सं.	दक्षता	प्रतिदर्श	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	t अनुपात	सार्थकता स्तर
(i)	अनुदेशन की तैयारी	बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षक	30	9.83	1.65	2.17 *	
		शिक्षामित्र	30	6.24			
(ii)	कक्षा-शिक्षण क्रियाकलाप	बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षक	30	12.4	.67	2.5 *	
		शिक्षामित्र	30	10.1			
(iii)	शिक्षक छात्र अंतःक्रिया	बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षक	30	12.36	.7	2.37 *	t.05 = 2.01
		शिक्षामित्र	30	10.7			
(iv)	अनुदेशन गतिविधि	बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षक	30	10.34	.38	1.6	
		शिक्षामित्र	30	9.72			
(v)	मूल्यांकन	बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षक	30	8.61	.31	2.29 *	
		शिक्षामित्र	30	9.72			

\*.05 स्तर पर सार्थक

मध्यमान 10.1 है। बी.टी.सी. शिक्षकों की प्रभावशीलता शिक्षामित्रों से अधिक है। बी.टी.सी. शिक्षकों द्वारा पाठ को छात्रों के पूर्व ज्ञान से संबंधित कर शुरु करना, विद्यार्थियों की सहभागिता द्वारा पाठ पढ़ाना, संबंधित पाठ्य-पुस्तक का उचित प्रयोग करने व पाठ के अंत में सारांश बताने पर किया गया प्रदर्शन शिक्षामित्रों से बेहतर है।

(iii) तालिका से ज्ञात होता है कि शिक्षक छात्र अंतः क्रिया पर बी.टी.सी. शिक्षकों का मध्यमान 12.36 है और शिक्षामित्रों द्वारा प्राप्त मध्यमान 10.7 है अतः यह स्पष्ट है कि बी.टी.सी. शिक्षकों के शिक्षक छात्र अंतःक्रिया के अंतर्गत विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करना, प्रश्न प्रविधि का उचित उपयोग, छात्रों द्वारा पूछे गए प्रश्नों को हल करना, विद्यार्थियों को प्रभावी प्रतिपुष्टि

प्रदान करना, छात्रों के समक्ष आने वाली समस्याओं का निराकरण करना व कक्षा में अनुशासन बनाए रखना आदि पर उनके द्वारा प्राप्त प्रशिक्षण का प्रभाव पड़ता है और वे इन सभी में शिक्षामित्रों से बेहतर प्रदर्शन करते हैं।

(iv) अनुदेशन गतिविधि पर बी.टी.सी. शिक्षकों व शिक्षामित्रों के प्राप्तियों का मध्यमान क्रमशः 10.34 और 9.72 है। t अनुपात लगाने पर मध्यमानों का यह अंतर .05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः यह कहा जा सकता है कि प्राथमिक स्तर पर नियुक्त बी.टी.सी. शिक्षकों और शिक्षामित्रों की अनुदेशन गतिविधि पर प्रभावशीलता समान है।

अनुदेशन गतिविधि के अंतर्गत मौखिक अभ्यास कराना, लिखित अभ्यास कराना, शिक्षण में खेल विधि/कविता/कहानी का प्रयोग करना, प्रभावी रूप में विषयवस्तु/स्तर/अनुभव से संबंधित उदाहरण द्वारा पाठ-पढ़ाना आदि पर बी.टी.सी. शिक्षकों और शिक्षामित्रों का प्रदर्शन भिन्न नहीं है।

(v) मूल्यांकन गतिविधि पर बी.टी.सी. शिक्षकों द्वारा प्राप्त अंकों का मध्यमान 8.61 और शिक्षामित्रों का मध्यमान 7.9 है और मध्यमानों का यह अंतर बी.टी.सी. शिक्षकों के पक्ष में है। मूल्यांकन के अंतर्गत आने वाले कार्यों यथा पाठ के पश्चात्/दौरान मूल्यांकन हेतु प्रश्न पूछना पाठ के पश्चात् गृह कार्य देना, पाठ के पश्चात् कक्षा कार्य देना, कक्षा कार्य/गृह कार्य के मूल्यांकन के उपरांत प्रतिपुष्टि प्रदान करना और विशिष्ट बालकों के लिए उपचारात्मक शिक्षण गतिविधियों का आयोजन

करना आदि पर बी.टी.सी. शिक्षकों का प्रदर्शन शिक्षामित्रों से बेहतर है।

**उद्देश्य-2** — प्राथमिक स्तर पर नियुक्त महिला शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता व पुरुष शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता की तुलना करना।

**शून्य परिकल्पना** — प्राथमिक स्तर पर महिला शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता व पुरुष शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

उपर्युक्त परिकल्पना का परीक्षण निम्न 5 शून्य परिकल्पनाओं के परीक्षण द्वारा किया जाएगा—

#### **शून्य परिकल्पना**

**शून्य परिकल्पना 1** — प्राथमिक स्तर पर महिला शिक्षामित्रों की अनुदेशन की तैयारी के प्राप्तियों के मध्यमान और पुरुष शिक्षामित्रों की अनुदेशन की तैयारी के प्राप्तियों के मध्यमान में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

**शून्य परिकल्पना 2** — प्राथमिक स्तर पर महिला शिक्षामित्रों के कक्षा शिक्षण क्रियाकलापों पर प्राप्तियों के मध्यमान व पुरुष शिक्षामित्रों के कक्षा शिक्षण क्रियाकलाप पर प्राप्तियों के मध्यमान में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

**शून्य परिकल्पना 3** — प्राथमिक स्तर पर महिला शिक्षामित्रों के शिक्षक छात्रा अंतः क्रिया पर प्राप्तियों के मध्यमान व पुरुष शिक्षामित्रों में शिक्षक छात्र अंतः क्रिया पर प्राप्तियों के मध्यमान में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

**शून्य परिकल्पना 4** — प्राथमिक स्तर पर महिला शिक्षामित्रों की अनुदेशन गतिविधि पर प्राप्तियों के

मध्यमान और पुरुष शिक्षामित्रों के अनुदेशन गतिविधि पर प्राप्ताँकों के मध्यमान में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

**शून्य परिकल्पना 5** – प्राथमिक स्तर पर महिला शिक्षामित्रों के मूल्यांकन पर प्राप्ताँकों के मध्यमान व पुरुष शिक्षामित्रों के मूल्यांकन पर प्राप्ताँकों के मध्यमान में कोई सार्थक अंतर नहीं है।

उपरोक्त परिकल्पनाओं के परीक्षण के लिए लगाए गए  $t$  अनुपात की तालिका निम्न है—

महिला शिक्षामित्रों और पुरुष शिक्षामित्रों के अनुदेशन की तैयारी, अनुदेशन गतिविधि और मूल्यांकन पर प्राप्त  $t$  का मान क्रमशः 2.3, 2.5 व 2.3 है जो कि .05 स्तर पर द्विपुच्छीय परीक्षण के लिए  $t$  के तालिका मान 2.1 से अधिक है।

अतः शून्य परिकल्पना 1, 4, व 5 को .05 सार्थकता स्तर पर निरस्त किया जाता है जबकि महिला और पुरुष शिक्षामित्रों का कक्षा शिक्षण क्रियाकलाप और शिक्षक छात्र अंतःक्रिया पर

क्र.सँ.	दक्षता	प्रतिदर्श	सँख्या	मध्यमान विचलन	मानक अनपात	$t$ स्तर	
(i)	अनुदेशन की तैयारी	महिला शिक्षामित्र	10	8.4	.53	2.3*	
		पुरुष शिक्षामित्र	10	7.18			
(ii)	कक्षा-शिक्षण क्रियाकलाप	महिला शिक्षामित्र	10	11	.78	.51	
		पुरुष शिक्षामित्र	10	10.6			
(iii)	शिक्षक छात्र अंतःक्रिया	महिला शिक्षामित्र	10	12.8	1.03	1.26	$t_{.05}=2.01$
		पुरुष शिक्षामित्र	10	11.5			
(iv)	अनुदेशन गतिविधि	महिला शिक्षामित्र	10	10.8	.84	2.5*	
		पुरुष शिक्षामित्र	10	8.7			
(v)	मूल्यांकन	महिला शिक्षामित्र	10	8.6	.3	2.3*	$t_{.05}=2.01$
		पुरुष शिक्षामित्र	10	7.9			

\*.05 स्तर पर सार्थक

प्राप्त  $t$  का मान क्रमशः .51 व 1.26 है जोकि .05 स्तर पर द्विपुच्छीय परीक्षण हेतु  $t$  के तालिका मान 2.01 से कम है अतः शून्य परिकल्पना 2 व 3 को स्वीकृत किया जाता है।

उपरोक्त परिणामों की व्याख्या निम्न है—

1. तालिका से यह ज्ञात होता है कि महिला

शिक्षामित्रों का अनुदेशन की तैयारी पर मध्यमान 8.4 है जबकि पुरुष शिक्षामित्रों के लिए यह मान 7.18 है अतः महिला शिक्षामित्रों द्वारा अनुदेशन की तैयारी के अंतर्गत विभिन्न बिंदुओं पर किया गया प्रदर्शन पुरुषों से अधिक प्रभावशाली है।



2. कक्षा शिक्षण क्रियाकलाप पर महिला शिक्षामित्रों व पुरुष शिक्षामित्रों के प्राप्तियों का मध्यमान क्रमशः 11 व 10.6 और प्राप्त t अनुपात का मान .51 है जो .05 स्तर पर असार्थक है। अतः यह कहा जा सकता है कि महिला व पुरुष शिक्षामित्रों का कक्षा शिक्षण क्रियाकलाप पर प्रदर्शन लगभग समान है।
3. महिला शिक्षामित्रों व पुरुष शिक्षामित्रों द्वारा शिक्षक छात्र अंतःक्रिया पर प्राप्त अंकों का मध्यमान क्रमशः 12.8 और 11.5 है और प्राप्त t का मान 1.26 है जोकि .05 स्तर पर असार्थक है अतः यह स्पष्ट है कि महिला और पुरुष शिक्षामित्रों का प्रदर्शन शिक्षक छात्र अंतःक्रिया पर लगभग समान है।
4. महिला शिक्षामित्रों और पुरुष शिक्षामित्रों द्वारा अनुदेशन गतिविधि पर प्राप्तियों का मध्यमान क्रमशः 10.8 व 8.7 है और मध्यमानों का यह अंतर महिला शिक्षामित्रों के पक्ष में है। अतः यह कह सकते हैं, कि महिला शिक्षामित्रों का अनुदेशन गतिविधि पर प्रदर्शन पुरुष शिक्षामित्रों से बेहतर है।
5. मूल्यांकन गतिविधि पर महिला शिक्षामित्रों व पुरुष शिक्षा मित्रों द्वारा प्राप्त अंकों का मध्यमान क्रमशः 8.6 व 7.9 है तथा प्राप्त अंतर महिला शिक्षामित्रों द्वारा किए जाने वाले बेहतर प्रदर्शन को दर्शाता है।

**उद्देश्य-3** — प्राथमिक स्तर पर नियुक्त शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता का गुणात्मक विश्लेषण द्वारा अध्ययन करना।

शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता के गहन अध्ययन के लिए मात्रात्मक अध्ययन हेतु चयनित

प्रतिदर्श में से 5 शिक्षामित्रों की कक्षाओं का प्रेक्षण करके गुणात्मक विश्लेषण किया गया जिसके द्वारा शिक्षामित्रों की वर्तमान स्थिति, अनुभव और अन्य कारकों, जो उनके शिक्षण व्यवहार को प्रभावित करते हैं, के बारे में गुणात्मक आँकड़े एकत्र किए गए व अंतर्वस्तु विश्लेषण किया गया।

साक्षात्कार द्वारा प्राप्त आँकड़ों के अंतर्वस्तु विश्लेषण के आधार पर प्रशिक्षण का निम्न स्वरूप सामने आया—

1. प्रशिक्षण देते समय प्रशिक्षणार्थियों का समूह छोटा हो। प्रशिक्षण केंद्रों पर दिया गया प्रशिक्षण इसलिए अधिक प्रभावी सिद्ध नहीं होता है क्योंकि समूह में प्रशिक्षणार्थियों की संख्या बहुत अधिक होती है और प्रत्येक शिक्षक पर व्यक्तिगत रूप से ध्यान दे पाना प्रशिक्षकों के लिए कठिन होता है।
2. प्रशिक्षण वास्तविक कक्षा परिस्थितियों में प्रदर्शन पाठों के आयोजन द्वारा दिया जाए।
3. प्रशिक्षण विषयानुसार दिया जाए अर्थात् जितने विषय शिक्षक पढ़ाते हैं उन सभी का प्रशिक्षण दिया जाय।
4. यह अत्यंत आवश्यक है कि शिक्षकों को समुदाय का अधिकतम सहयोग प्राप्त करने हेतु सहयोग/प्रशिक्षण दिया जाय।
5. सहायक शिक्षण सामग्री निर्माण/उपयोग हेतु शिक्षकों को विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जाय।
6. कक्षा की वास्तविक परिस्थितियों में निरीक्षण कर उन परिस्थितियों में प्रभावी शिक्षण विधियों का प्रशिक्षण शिक्षकों को प्रदान किया जाय।

7. शिक्षामित्रों को कक्षा 3, 4, 5 में पढ़ाने के लिये व सहायक शिक्षण सामग्री के निर्माण के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता है।
8. प्रशिक्षण सैद्धांतिक न होकर व्यावहारिक हो जिसे शिक्षक कार्यरूप में परिणत कर सकें।
  - विद्यार्थियों को अभिप्रेरित करने के लिए शिक्षकों का विशेष प्रशिक्षण आवश्यक है।
  - शिक्षकों द्वारा कक्षा शिक्षण करते समय निरीक्षण करके उनकी कमियाँ बताई जाए जिससे वे स्वयं में सुधार ला सकें।
  - खेल विधि, प्रदर्शन विधि व कविता/कहानी का शिक्षण में प्रभावी प्रयोग करने हेतु प्रशिक्षण दिया जाए।
  - छोटे बच्चों की मनःस्थिति समझने हेतु बाल मनोविज्ञान में प्रशिक्षण की आवश्यकता
  - शिक्षकों को संप्रेषण में दक्ष बनाया जाए जिससे वे समुदाय के लोगों को शिक्षा का महत्व समझा सकें।
  - बदले हुए पाठ्यक्रम के शिक्षण हेतु लाभकारी नई शिक्षण तकनीकों का ज्ञान प्रदान किया जाए।
  - विद्यार्थियों को आस-पास के वातावरण से उदाहरण देकर पढ़ाने हेतु अधिक प्रशिक्षण वांछित।
  - अधिकांश शिक्षक, शिक्षण के समय प्रश्न-

उत्तर प्रविधि का समुचित उपयोग नहीं कर पाते हैं, जिसमें उन्हें और अधिक प्रशिक्षण वांछित है।

**उद्देश्य 4** – प्राथमिक स्तर पर नियुक्त शिक्षामित्रों की सेवाकालीन प्रशिक्षण आवश्यकताओं का अध्ययन करना।

शिक्षकों द्वारा दिए गए साक्षात्कार के आधार पर प्रशिक्षण के स्वरूप के लिए प्रतिशत की गणना।

#### निष्कर्ष

1. प्राथमिक स्तर पर परिषदीय विद्यालयों में नियुक्त बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता से अधिक है।
2. प्राथमिक स्तर पर परिषदीय विद्यालयों में नियुक्त महिला शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता पुरुष शिक्षामित्रों की शिक्षण प्रभावशीलता से अधिक है।
3. शिक्षामित्रों को अपने पाठ्य विषयों में समुचित ज्ञान है, और वे कक्षा 1 और 2 को पढ़ाने हेतु प्रभावी भी हैं, जिसके लिए उनकी नियुक्ति की गई है, परंतु जब उच्च कक्षाओं को पढ़ाना होता है तो उनका निष्पादन कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्र के परिषदीय

क्र.सँ.	मद	कुल शिक्षक	सहमत शिक्षक	प्रतिशत
1.	सेवाकालीन प्रशिक्षण आवश्यक	60	58	96
2	नियमित प्रशिक्षण आवश्यक	60	54	90
3	वास्तविक कक्षा परिस्थितियों में प्रशिक्षण	60	57	95
4	प्रशिक्षण अवाधि 7-15 दिन	60	50	84

- प्राथमिक विद्यालयों में शिक्षकों की संख्या कम होने, प्रशासनिक कार्यभार व योजनाओं के ठीक ढंग से संचालन को प्रमुख मान लेने के कारण शिक्षण प्रभावशीलता में कमी आती है। यदि अतिरिक्त कार्यभार से मुक्त कर शिक्षकों को केवल शिक्षण कार्य ही सौंपा जाए साथ ही नियमित पर्यवेक्षण की व्यवस्था हो तो निश्चय ही शिक्षकों की शिक्षण प्रभावशीलता में वृद्धि होगी और प्राथमिक शिक्षा की स्थिति में सुधार कर शिक्षा के सार्वभौमिकरण के उद्देश्य को प्राप्त कर पाना संभव होगा।
4. प्रतिशत गणना के आधार पर निम्न निष्कर्ष सामने आए—
    - 96% शिक्षामित्रों ने प्रशिक्षण को आवश्यक माना, और
    - 90% शिक्षामित्रों ने यह कहा कि प्रशिक्षण नियमित रूप से प्रतिवर्ष होना चाहिए।
    - 95% शिक्षकों का मत था कि प्रशिक्षण वास्तविक कक्षा परिस्थितियों में दिया जाए।
    - 84% शिक्षकों ने सुझाव दिया कि प्रशिक्षण की अवधि विषयों के अनुसार एक सप्ताह से 15 दिन तक की होनी चाहिए।
  3. शिक्षकों के अनुसार मिड-डे मील योजना के कारण शिक्षण कार्य बाधित होता है, अतः इस योजना के प्रशासनिक स्तर पर पुनर्मूल्यांकन की आवश्यकता है।
  4. बहुत छोटी कक्षाओं 1, 2 के लिए विद्यालय की समयावधि कम की जाए।
  5. सहायक शिक्षण सामग्री के हेतु संसाधनों की व्यवस्था की जाए।
  6. शिक्षकों को अतिरिक्त प्रशासनिक कार्यभार से मुक्त किया जाए।
  7. प्राथमिक विद्यालयों के निरीक्षण के स्थान पर पर्यवेक्षण की व्यवस्था की जाए।
  8. परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में विद्यार्थियों के बैठने की समुचित व्यवस्था की जाए।
  9. विद्यार्थियों को दी जाने वाली छात्रवृत्ति उनके वर्ष भर के निष्पादन के आधार पर सत्र के अंत में प्रदान की जाए।

### प्रशिक्षण की आवश्यकता

- शैक्षिक निहितार्थ** — प्रस्तुत अध्ययन के निम्न शैक्षिक निहितार्थ हैं—
1. प्राथमिक स्तर पर शिक्षकों की कमी को दूर किया जाए।
  2. समुदाय का सहयोग प्राप्त करने के लिए विशेष जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन किया जाए जिसमें अभिभावकों को शिक्षा के महत्व से परिचित कराया जाए।
  3. शिक्षामित्रों को डायट के स्थान पर बी.आर.सी. में प्रशिक्षण दिया जाए जिससे प्रशिक्षार्थियों के समूह छोटे हो और उनके रहने व खाने की समुचित व्यवस्था हो सकें।
  2. प्रशिक्षण के पश्चात् लिखित एवं प्रयोगात्मक परीक्षा का प्रावधान किया जाए जिससे प्रशिक्षार्थी जागरूक बनें रहेंगे व प्रशिक्षण को गंभीरता से लेंगे।
  3. प्रशिक्षण कार्यक्रम वास्तविक कक्षा परिस्थितियों का निरीक्षण कर तैयार किए जाए जिससे प्रशिक्षण केवल सैद्धांतिक न रहकर वास्तव में प्रयुक्त हो सकें।

4. प्रशासनिक अधिकारियों को चाहिए कि वे प्रशिक्षण कार्यक्रमों के प्रति कड़ा रुख करें जिससे प्रशिक्षक व प्रशिक्षणार्थी दोनों क्रियाशील रहे व प्रशिक्षण के प्रति गंभीर रहें।
5. प्रशिक्षण के उपरांत परीक्षा में अच्छे अंक या ग्रेड पाने वाले अभ्यर्थियों को पुरस्कृत किया जाए जिससे अन्य अभ्यर्थियों को अभिप्रेरित किया जा सकें।
6. प्रशिक्षण में सभी विषयों को संमिलित किया जाए जिन्हें शिक्षामित्र पढ़ाते हैं व बदलती हुई पुस्तकों के अनुसार शिक्षण विधियों में प्रशिक्षित किया जाए।
7. सामुदायिक सहयोग प्राप्त करने हेतु शिक्षामित्रों को प्रेरित व प्रशिक्षित किया जाए।
8. प्रशिक्षण कार्यक्रमों का आयोजन ग्रीष्मकालीन अवकाश के दौरान किया जाए।

### संदर्भ

- कुण्डू, अहमद व दास. 1999. *इंपैक्ट ऑफ इनोवेटिव टीचर्स ट्रेनिंग*. टीचर कांपेटेंसीज एण्ड मोटिवेशन आन अटेंडेंस एंड कम्यूनिटी स्कूल रिलेशनशिप: सीमैट. इलाहाबाद.
- कुमार, राजेश, 2000. *सेवा कालीन प्रशिक्षण प्राप्त करने वाले एवं न प्राप्त करने वाले शिक्षकों की शिक्षण अभिक्षमता का तुलनात्मक अध्ययन*, रिसर्च एण्ड स्टडीज, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद.
- कुमार, सुरेंद्र 2004. *प्राथमिक स्तर पर शिक्षामित्रों एवं नियमित शिक्षकों की शिक्षण दक्षता का अध्ययन*, रिसर्च एण्ड स्टडीज, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद.
- कौल, लोकेश, 1998. *शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली*, नई दिल्ली, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि.।
- चौरसिया, शोभा, 2005. *एनालिसिस ऑफ क्लासरूम टीचिंग बिहेवियर आफ शिक्षामित्र्स* रिसर्च एण्ड स्टडीज, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद.
- तिवारी जी, एन. 2000 *ए स्टडी ऑफ टीचर्स कॉंपेटेंसीज एण्ड ट्रेनिंग नीड्स आफ प्राइमरी स्कूल टीचर्स ऑफ इलाहाबाद डिस्ट्रिक्ट*, रिसर्च एण्ड स्टडीज, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद.
- बुच, एम.बी., 1979. *सैकेंड सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजुकेशन*, बरौदा, एस.ई. आर.जी.डी. 1979.
- शुक्ला एवं अन्य 2005. *टू स्टडी द क्वालिटी एण्ड इंपैक्ट आफ ट्रेनिंग गिवेन टू शिक्षामित्र्स आन द बेसिस ऑफ द ट्रेनिंग मॉड्यूल आफ थर्टी डेज एण्ड टू आइडेन्टिफाई द ट्रेनिंग नीड्स आफ शिक्षामित्र्स*, सीमैट प्रोजेक्ट रिपोर्ट लखनऊ विश्वविद्यालय लखनऊ.
- सिंह, आर.पी. 2002. *परिषदीय प्राथमिक विद्यालयों में पूर्णकालिक शिक्षकों एवं शिक्षामित्रों के कक्षा शिक्षण प्रक्रिया का तुलनात्मक अध्ययन*, रिसर्च एण्ड स्टडीज, शिक्षाशास्त्र विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद.

## शिक्षक-शिक्षा — नयी दृष्टि\*

एन.सी.ई.आर.टी.

स्कूली शिक्षा में परिवर्तन की प्रक्रिया में शिक्षक महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। इसी संदर्भ में चट्टोपाध्याय आयोग ने कहा, “यदि स्कूली शिक्षकों से उम्मीद की जाती है कि वे पढ़ाने के उपागम में क्रांति लाएँ तो वह क्रांति पहले शिक्षा कॉलेजों में होनी चाहिए।” इस प्रस्तुती को ध्यान में रखते हुए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 की निर्माण प्रक्रिया के दौरान ‘शिक्षक शिक्षा’ पर चर्चा व विचार-विमर्ष करने के लिए एक फोकस समूह गठित किया गया जिसमें इस विषय पर एक आधार पत्र तैयार किया। यह आधार पत्र शिक्षक शिक्षा हेतु गठित समस्त आयोगों की रिपोर्टों और नीति दस्तावेजों में शिक्षक की तैयारी के संबंध में दिए गए परिप्रेक्ष्य और कार्यक्रम संबंधी दिशा निर्देश के संक्षिप्त अवलोकन से शुरु होता है। इसके बाद यह शिक्षक शिक्षा क्षेत्र संबंधी तात्कालिक मुद्दों एवं उन पर चर्चा प्रस्तुत करता है। इस आधार पत्र में शिक्षकों की शिक्षा तथा व्यवसायिक विकास संबंधी कुछ नवाचारों का संक्षिप्त विवरण भी दिया गया है। इस पर आधारित एक दृष्टिपूर्ण वक्तव्य दिया गया है जो हम यहाँ पाठकों के लिए प्रस्तुत कर रहे हैं। यह दृष्टि शिक्षक शिक्षा के वर्तमान प्रतिमानों तथा अभ्यासों में बदलाव के मूल बिंदुओं को प्रदर्शित करने के साथ-साथ उस सामान्य ढाँचे को प्रस्तुत करती है जिसके अंतर्गत सेवा-पूर्व व सेवाकालीन शिक्षकों को तैयार किया जा सकता है। आधार-पत्र के अंतिम भाग में फोकस समूह की संस्तुतियों तथा विचारार्थ मूल मुद्दों को प्रस्तुत किया गया है।

शिक्षक-शिक्षा में आमूल-चूल बदलाव इसलिए संभावनाओं का विस्तार हो सकें। इस आधार-पत्र आवश्यक हो गया है कि इसके प्रभावों और के पिछले अनुभागों में इस बात पर विशेष ध्यान

\*राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा-2005 पाठ्यचर्या नवीकरण के लिए शिक्षक शिक्षा, राष्ट्रीय फोकस समूह का आधार-पत्र से लिए गए अंश (पृ.18-26), एन.सी.ई.आर.टी, नई दिल्ली(अप्रैल 2009).

दिया गया कि शिक्षक-शिक्षा के उपागम में मूलभूत बदलाव किए जाने की ज़रूरत है। इस नए उपागम के मुख्य लक्षणों का खाका यहाँ प्रस्तुत है, जिसकी फोकस समूह में चर्चा हुई है—

शिक्षक-शिक्षा का 'नयी दृष्टि' शीर्षक इसलिए ही नहीं रखा गया है कि इसके सारे आयाम पूरी तरह नए हैं। बल्कि इसलिए यह शीर्षक रखा गया है क्योंकि यह शिक्षक-शिक्षा के बारे में हमारी दृष्टि में एक निश्चित बदलाव लाने की बात करता है। यह सही है कि पहले भी इस तरह के प्रयास हो चुके हैं। इनमें से कई बार शिक्षक-शिक्षा की समीक्षा करने, इसे पुनर्जीवित और पुनर्गठित करने की कोशिश की गई है। लेकिन ये प्रयास वास्तविक व्यवहार में नहीं लाए जा सकें और कार्यक्षेत्र में ये प्रासंगिक हैं या नहीं, ऐसे प्रमाण नहीं दे सकें।

इस समूह की यह राय है कि शिक्षक-शिक्षा को जीवंत और इस क्षेत्र में उठ रही माँगों के अनुरूप बनाने के लिए (न सिर्फ़ परिचालन या कार्यान्वयन के रूप में बल्कि सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण है) शिक्षक-शिक्षा को रेखांकित करने वाली बुनियादी अवधारणाओं एवं मान्यताओं में भी निश्चित तथा परिलक्षित बदलाव ज़रूरी हैं। इस बात को ध्यान में रखते हुए निम्नलिखित सुझावों के आलोक में शिक्षक-शिक्षा के उपागम में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन लाना चाहिए। यह शिक्षक-शिक्षा में बदलाव का सुझाव है—

### 1. दृष्टि

शिक्षक-शिक्षा को स्कूली व्यवस्था की आवश्यकताओं के प्रति ज्यादा संवेदनशील होना पड़ेगा। इसके

लिए शिक्षकों को निम्नलिखित दोहरी भूमिका के लिए तैयार करना होगा।

- वे सीखने-सिखाने की परिस्थितियों में उत्साहवर्धक, सहयोगी तथा सीखने को सहज बनाने वाले बनें जो अपने विद्यार्थियों को उनकी प्रतिभाओं की खोज में, उनकी शारीरिक तथा बौद्धिक क्षमताओं को पूर्णता तक जानने में, उनमें अपेक्षित सामाजिक तथा मानवीय मूल्यों के तथा चरित्र के विकास में तथा जिम्मेदार नागरिकों की भूमिका निभाने में समर्थ बनाएँ।
- जो एक समूह के सक्रिय सदस्य के रूप में विद्यार्थियों के बदलते हुए सामाजिक तथा व्यक्तिगत ज़रूरतों को ध्यान में रखते हुए स्कूली पाठ्यचर्या के नवीकरण की प्रक्रिया में योगदान देने के चेतन प्रयास करें। ऐसा करने में वे विगत के अनुभवों के साथ राष्ट्रीय विकास के लक्ष्यों और शैक्षणिक प्राथमिकताओं के प्रकाश में उभरती हुई ज़रूरतों और सरोकारों का ध्यान रखें।

इन अपेक्षाओं से पता चलता है कि अध्यापक बड़े संदर्भ और गति में काम करता है और उससे बड़ी उम्मीदें जुड़ी होती हैं। कहा जा सकता है कि शिक्षक को शिक्षा के सामाजिक संदर्भों के प्रति जवाबदेह और संवेदनशील होना चाहिए। साथ ही उसे विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि के अंतर, राष्ट्रीय तथा वैश्विक संदर्भों, सामाजिक समता, न्याय आदि के राष्ट्रीय लक्ष्यों की जानकारी भी होनी चाहिए।

इन आकाँक्षाओं पर खरा उतरने के लिए शिक्षक-शिक्षा को इस प्रकार का होना चाहिए जो

प्रत्येक प्रशिक्षु को समर्थ बना सकें ताकि वह—

- बच्चों का ख्याल रख सकें और उनके साथ रहना पसंद करें।
- सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक संदर्भों में बच्चों को समझ सकें।
- व्यक्तिगत अनुभवों से अर्थ निकालने को अधिगम अर्थात् सीखना समझे।
- सीखने के तरीके समझे, सीखने की अनुकूल परिस्थितियाँ पैदा करने के संभावित तरीके जाने तथा सीखने के प्रकार, गति तथा तरीकों के आधार पर विद्यार्थियों की विभिन्नताओं को समझे।
- ज्ञान को चिंतनशील सीखने की सतत उभरती प्रक्रिया माने।
- ज्ञान को पाठ्यपुस्तकों के बाह्य ज्ञान के रूप में न देखकर साझा संदर्भों और व्यक्तिगत संदर्भों में उसके निर्माण को देखे।
- उन सामाजिक, पेशेवर और प्रशासनिक संदर्भों के प्रति संवेदनशील हो जिनमें उसे काम करना है।
- ग्रहणशील हो और लगातार सीखता रहे, समाज और विश्व को बेहतर बनाने की दिशा में अपनी जिम्मेदारियों को समझ सके।
- वास्तविक परिस्थितियों में न केवल समझदारी वाले रवैये को अपनाने की उपयुक्त योग्यता का विकास करे बल्कि इस तरह की परिस्थितियों का निर्माण करने के भी योग्य बने।
- उसका भाषायी ज्ञान और दक्षता का आधार ठोस हो।

- व्यक्तिगत अपेक्षाओं, आत्मबोध, क्षमताओं, अभिरुचियों आदि की पहचान कर सके।
- अपना पेशेवर उन्मुखीकरण करने के लिए सोच समझ कर प्रयास करता रहे। यह विशेष परिस्थितियाँ अध्यापक के रूप में उसकी भूमिका तय करने में मदद करेंगी।

## 2 नवकल्पित शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम में आवश्यक फोकस

यह आवश्यक हो गया है कि शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम इन आकाँक्षाओं की पूर्ति के लिए जवाबदेह हो। यह शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम में बुनियादी बदलावों द्वारा ही संभव है। इसका मतलब है कि हमें एकदम नयी दिशा में जाने की आवश्यकता है। जिसके लिए हमें आवश्यक सैद्धांतिक और व्यावहारिक बातें तय करनी चाहिए। इसके पश्चात् प्रचलित ज्ञान और व्यवहार करने को उचित रूप से शामिल करने के लिए, परिवर्तन के लिए या फिर उन्हें छोड़ने के लिए उन्हें जाँचा-परखा जाना चाहिए। उल्लेखनीय है कि शिक्षक-शिक्षा के इस नए उपागम में बहुत सारे पहलुओं पर विशिष्ट अवधारणात्मक और व्यावहारिक फोकस होना चाहिए। उनमें से कुछ प्रमुख पहलू निम्नलिखित हैं—

### 2.1 अधिगम (सीखना)

- विद्यार्थी अधिगम का अनुभव सक्रिय जुड़ाव और सहभागिता के आधार पर प्राप्त करते हैं। इसे करते हुए वे अपने अर्थ और विचार गढ़ते हैं या इन्हें संक्षेप

में कहें तो इस प्रकार वे अपने ज्ञान का अपने तरीके से निर्माण करते हैं। इसलिए अधिगम स्रोतों की तलाश, विचारों का सम्मिलन, चिंतन, विश्लेषण और आत्मसातीकरण की प्रक्रिया होती है। इस पर विद्यार्थी के सामाजिक संदर्भ का बड़ा प्रभाव होता है।

- अधिगम एक अपसारी (भिन्न दिशाओं में जाने वाली) प्रक्रिया है जो कई माध्यमों से होती है न कि पूर्व-निर्धारित शिक्षक द्वारा केवल एक माध्यम से। यह आवश्यक रूप से सहभागिता-आधारित प्रक्रिया होती है जिसमें विद्यार्थी अपना ज्ञान अपने तरीके से बनाता है जिसे यह ग्रहण, पारस्परिक बातचीत, अवलोकन और चिंतन के माध्यम से निर्मित करता है। इस प्रक्रिया के दौरान विद्यार्थी के अधिगम में उतार-चढ़ाव होता रहता है। इसलिए यह प्रक्रिया रेखीय न होकर टेढ़ी-मेढ़ी और जटिल होती है।
- अधिगम कोई आसान और सीधी प्रक्रिया नहीं होती। यह जटिल, बहुआयामी और गतिशील प्रक्रिया है।

## 2.2 विद्यार्थी

- चूँकि शिक्षक की भूमिका विद्यार्थी और ज्ञान के संदर्भ में आवश्यक मानी जाती है इसलिए शिक्षक-शिक्षा का मुख्य फोकस विद्यार्थी और सीखने पर होना चाहिए। विद्यार्थी को व्यक्ति विशिष्ट के रूप में

उसके अपने सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों में देखा जाना चाहिए तथा यह मानना चाहिए कि इसमें अद्भुत क्षमता है। इस अर्थ में, विद्यार्थी केवल एक मनोवैज्ञानिक इकाई मात्र नहीं होता, वह जीवंत सहभागी होता है। वह अधिगम प्रक्रिया में भाग लेना चाहता है और उसके सुधार की दिशा में काम भी करना चाहता है। विद्यार्थी अपने सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भों के आधार पर चीजों को समझते हैं, अपनी अभिवृत्ति का विकास करते हैं, और अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर अपने तरीके से चीजों की व्याख्या करते हैं।

- सीखने के तरीके और गति के आधार पर विद्यार्थियों में भिन्नता पाई जाती है। एक ही अवस्था में वे अलग-अलग ढंग से सीखते हैं। यह प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक से कहीं अधिक होती है। शिक्षकों को विद्यार्थियों में सीखने की वास्तविक क्षमता की पहचान करने और विद्यार्थियों के 'सीखने के रास्ते' को प्रतिबंधित किए बिना या बिना किसी आदेश के आगे ले जाने के सरल तरीके ढूँढने की जरूरत है। शिक्षक-शिक्षा को शिक्षकों को इस दिशा में सक्षम बनाने वाला होना चाहिए कि वह विद्यार्थियों की विविधताओं का सम्मान कर सकें और यह भी समझ सकें कि यह एक गतिशील प्रक्रिया है।
- इस प्रकार विद्यार्थी सक्रिय और सहयोगी बनेंगे और अपने उद्देश्यों, रणनीतियों तथा



परिस्थितियों के प्रति सजग होंगे और साथ ही जिम्मेदार भी होंगे। यहाँ सीखने वालों की क्षमता को स्थायी नहीं माना गया है बल्कि यह माना गया है कि अनुभव के साथ उनका विकास होता है।

### 2.3 शिक्षक

- शिक्षक की मुख्य भूमिका सीखने के मार्ग में सहायता करने वाली होती है। शिक्षक वह होता है जो विद्यार्थियों को उनकी क्षमताओं की पहचान कराए, उनके व्यक्तिगत तथा संदर्भ विशिष्ट अनुभवों को इस तरीके से सामने रखे कि वे राष्ट्र के संदर्भ में स्वीकृत हों।
  - शिक्षक को यह समझना चाहिए कि पाठ्यचर्या विद्यार्थी केंद्रित सीखने की प्रक्रिया के संदर्भ में विकसित होती है, वह पहले से तय नहीं हो सकती; शिक्षक विद्यार्थियों द्वारा सीखे जाने की प्रक्रिया में संभव सहयोग देने मात्र के लिए ही तैयार किया जाता है। लेकिन प्रत्येक अधिगम परिस्थिति संचित रूप से शिक्षक को बच्चों की जरूरतों को पहचानने के लिए अंतर्दृष्टि प्रदान करती है।
  - ऐसी कोई एक पद्धति नहीं है जो सभी विद्यार्थियों को एक ही ढंग से सिखा सके। हर शिक्षक को बोधगम्य अभ्यास द्वारा अलग-अलग विद्यार्थियों में सीखने के तरीके पहचानने होंगे लेकिन इस तथ्य को स्वीकार करते हुए कि सभी विद्यार्थी अपने-अपने ढंग से सीखते हैं।
- शिक्षण विधि की प्रभाविता और उपयुक्तता जाँचने के दो पहलू हैं। पहला है शिक्षक की अपनी शैली जिसमें वह विधि या विधियों का उपयोग करता है। इसका संबंध उसकी अपनी जरूरत से होता है। दूसरा है विद्यार्थियों के सीखने का अपना ढंग। अनोखे ढंग की सहभागिता, सीखने या जानने की प्रक्रिया में शिक्षक तथा विद्यार्थी की भूमिका स्पष्ट रूप से सामने लाती है। जब इसमें दोनों ज्ञान की प्रक्रिया में भाग लेते हैं तो लाभांविता होते हैं। विद्यार्थी के लिए अधिगम ग्रहण करना शैक्षिक परिस्थितियों का एक बड़ा सरोकार है। इस दृष्टि में तकनीकी रूप से दोनों ही सीखने वाले हैं।
- शिक्षक को अपने आपको ऐसे पेशेवर के रूप में देखने की आवश्यकता है जिसमें उपयुक्त क्षमता, लगन, उत्साह, नए तरीके अपनाने की लगन और चिंतनशीलता है। उसमें संवेदनशीलता भी है, न केवल विद्यार्थियों और संस्था के लिए बल्कि वृहत् सामाजिक संदर्भ में जिसमें व्यक्ति कार्य करता है, की उभरती चिंताओं के प्रति भी।
  - शिक्षक को समझ लेना चाहिए कि विद्यार्थी स्कूल में अब उसे ज्ञान के स्रोत के रूप में नहीं देखते। मीडिया ने उनके सामने अनंत संभावनाएँ खोली हैं। फिर भी बहुत सारी ऐसी बातों (जो अव्यवस्थित सूचनाओं के रूप में हैं) को विद्यार्थी को अर्थपूर्ण ढंग तथा सकारात्मक ढंग से

सिखाना शिक्षक के हिस्से में ही आता है। अभी आई.सी.टी. जैसी सुविधाओं तक सभी की पहुँच होने में समय लगेगा। शिक्षक को इस तरह की परिस्थिति में (आई.सी.टी. के साथ और इसके बिना) प्रभावी रहने के लिए न केवल दक्षता चाहिए बल्कि ऐसी संवेदनशीलता भी जो युवा विद्यार्थियों को उपयुक्त संदर्भ में परिस्थिति को समझने और स्वीकार करने की ओर ले जाए।

- शिक्षक को क्रिया-आधारित शिक्षण की प्रकृति और गतिशीलता को समझना चाहिए। यह समझ चीजों को जैसे को तैसा संज्ञानात्मक रूप से स्वीकार करने के बदले खुद करने के लिए प्रेरित करेगी। और यह ध्यान दिलाएगी कि 'क्या काम करता है क्या नहीं' इसके साथ ही यह क्रिया का आलोचनात्मक विश्लेषण, चिंतन तथा आत्मसात् करने में मदद करेगी। इसलिए शिक्षक-शिक्षा व्यक्ति को स्वतंत्र रूप से कार्य करने के लिए तैयार करती है।
- 'शिक्षक' और 'शिक्षा' जैसे शब्दों के पारंपरिक अर्थ को बदले जाने की शरूत है। अगर सीखने को शिक्षक-शिक्षा के केंद्र में रखना है। क्योंकि शिक्षण में यह निश्चित होता है कि 'एक शिक्षक क्या करता है?' इससे यह ध्वनित होता है कि सीखना शिक्षण का परिणाम होता है। शिक्षक, शिक्षक के क्रियाकलापों और शिक्षक की तैयारी में बदलाव लाना ही

होगा ऐसी परिस्थितियों के लिए जिसमें प्रत्येक विद्यार्थी अलग ढंग से अलग-अलग स्तरों पर, अलग गति और शैली से साथ-साथ सीखता है।

- ऐसा सोचा गया कि सीखने वालों को स्वायत्तता देना प्रत्येक अधिगम अनुभव की अवस्था की उपयुक्तता सुनिश्चित करेगा। बेशक, शिक्षक-प्रशिक्षकों को अधिगम परिस्थितियों में सहभागी बनाने के लिए प्रशिक्षण की शरूत है। साथ ही उन्हें शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम की दिनचर्या को संगठित करने के अच्छे तरीके आने चाहिए।
- शिक्षक-प्रशिक्षक को न केवल पैराडाइम बदलाव की समझ हो बल्कि वे इसके वाहक भी बनें। इसके लिए बेहतर अभिमुखीकरण कार्यक्रमों की आवश्यकता है जिसमें वे अपनी बदली हुई भूमिका को समझ सकें और उन परिस्थितियों के लिए तैयार हो सकें जिनमें सीखने वाले ही प्रभावी हों।
- हमारे देश में अलग-अलग विशिष्टताओं वाली विविध स्कूली व्यवस्थाएँ हैं, फिर भी वे राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न चरणों की स्कूली शिक्षा के व्यापक लक्ष्यों में हिस्सेदारी निभाती हैं। शिक्षक को इन विविधताओं और इनकी अपेक्षाओं का अंदाजा होना चाहिए। इससे शिक्षक को किसी भी स्कूल व्यवस्था में समायोजन करने में और ठीक से काम करने में मदद मिल सकती है।

## 2.4 ज्ञान

- शिक्षक-शिक्षा में ज्ञान का अवयव शिक्षा अनुशासन के विस्तृत क्षेत्र से लिया गया है और इसे इसी तरह से दर्शाए जाने की ज़रूरत है। इसलिए ही शिक्षा के संदर्भ में इसकी प्रकृति बहु-अनुशासनिक है। दूसरे शब्दों में, शिक्षक-शिक्षा में अवधारणात्मक इनपुट इस तरीके से उच्चारित किए जाने चाहिए ताकि वे शैक्षिक घटनाओं-क्रियाकलापों, कार्यों, प्रयासों, प्रक्रियाओं, अवधारणाओं, घटनाओं इत्यादि का वर्णन कर सकें तथा इनकी व्याख्या कर सकें। अतः ऐसा करने के लिए अन्य संज्ञानात्मक विषयों से अवधारणाओं को लिया जा सकता है परंतु शैक्षिक घटकों की मिश्रित समझ के लिए इन्हें समाकलित करने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, सीखने संबंधी विविध सैद्धांतिक विचार जिन्हें आवश्यक रूप से मनोविज्ञान से लिया गया है इन्हें, इस तरह से देखने की ज़रूरत है कि ये शिक्षक को यह समझने के लिए कि अधिगम को कैसे समझा गया, कैसे इस पर चर्चा हुई, इसे कैसे पहचाना गया और सबसे ज़रूरी है कि यह कैसे हो सकता है, अवधारणात्मक आधार देता है। अर्थात् इस बात की समझ कि कैसे एक शिक्षक की अवधारणात्मक समझ उसके सीखने की परिस्थितियों के निर्माण के संबंध में

लिए गए निर्णयों को प्रभावित करती है। इन निर्णयों के पीछे सैद्धांतिक व्याख्याएँ होती हैं। इसी तरह समाज में सदा बदलने वाले सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक दृष्टिकोण न केवल शिक्षक के बोध और धारणा को प्रभावित करते हैं बल्कि सीखने वालों के विचारों और प्रतिक्रियाओं को भी। इस तरह के अंतर्क्रियात्मक बलों को सामाजिक और राजनीतिक दृष्टिकोणों की मदद से समझना होगा। महत्वपूर्ण बात यह है कि ऐसे प्रयास किए जाएँ कि शिक्षक-शिक्षा के ज्ञान निर्माण के क्रम में व्याख्याओं के प्रस्तुतीकरण में शिक्षा का दृष्टिकोण हो न कि अन्य विषयों के शिक्षा संबंधी दृष्टिकोण 'शिक्षा में निहितार्थ' के साथ। कोशिश पहले से विद्यमान सिद्धांत से व्यवहार की बजाय व्यवहार से सिद्धांत की ओर जाने की हो।

- शिक्षक-शिक्षा में कई तरह के ज्ञान शामिल हैं उदाहरण के लिए, अवधारणात्मक, तकनीकी तथा पेशेवर इत्यादि।
- शिक्षक-शिक्षा में ज्ञान के विविध अवयव शुरुआत करने वाले के लिए स्पष्ट होने चाहिए जैसे- विद्यार्थी, शिक्षक और शैक्षिक दृष्टिकोण जिसमें किसी के कार्यों को समझा जा सके और शिक्षक-शिक्षा के दौरान अधिगम को अधिक सार्थक, अर्थपूर्ण और उपयोगी बनाया जा सके।
- इस प्रकार की व्यवस्था पर्याप्त अवसर देती है सैद्धांतिक और व्यावहारिक पहलू

को अलग-अलग देखने के बजाय एक साथ समाकलित रूप में देखने के। इससे शिक्षक में क्षेत्र-अभ्यासों संबंधी आलोचनात्मक संवेदनशीलता का विकास होगा। ये वे अभ्यास हैं जिन्हें प्रयोग में लाया गया है और जो शिक्षकों में सीखने की आदर्श परिस्थिति की अपनी दृष्टि के विकास में मदद करते हैं। इस तरह समर्थ और सक्षम शिक्षक अच्छा अधिगम वातावरण देनेवाला बन जाता है जो यात्रिक रूप से विद्यमान परिस्थितियों से समायोजन ही नहीं करता बल्कि उन्हें सुधारने का प्रयत्न भी करता है और उसमें आवश्यक तकनीकी जानकारी तथा आत्मविश्वास भी होता है।

## 2.5 सामाजिक संदर्भ

- शिक्षा पर उस परिवेश का बड़ा प्रभाव होता है जिससे शिक्षक और विद्यार्थी आते हैं। स्कूल और कक्षा के सामाजिक संदर्भ का सीखने की प्रक्रिया पर गहरा प्रभाव पड़ता है। इसे देखते हुए विद्यार्थी के मनोवैज्ञानिक पहलुओं की जगह उसके सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक संदर्भों पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए।
- संदर्भ बदलने पर सीखने की प्रक्रिया में भी अंतर आता है। स्कूली शिक्षा और सीखना दोनों बाहर के बड़े सामाजिक संदर्भों से प्रभावित होते हैं तथा बढ़ते हैं।
- शिक्षा केवल एक संस्थान के अंदर

अवकल्पित उद्देश्य तक सीमित नहीं होती। बाहर के ज्ञान को स्कूल के भीतर के ज्ञान से जोड़ा जाए तो वह बहुत मूल्यवान हो सकती है।

- ऐसी शिक्षा को बढ़ावा देना चाहिए जो सामाजिक और रोजमर्रा के संदर्भों से जुड़ी हो। साधारणतः शैक्षिक चिंतकों जैसे गाँधी, टैगोर, गिजूभाई, डिवी एवं अन्य द्वारा व्यक्त कई विचारों को उनके सामाजिक, ऐतिहासिक संदर्भों को समझे बिना जिसमें वे विकसित होते हैं, पढ़ा जाता है।
- शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम में आधुनिक भारतीय समाज के मुख्य मुद्दों जैसे समाज का बहुलतावादी स्वभाव और अस्मिता के मुद्दे, जेंडर, समानता और गरीबी को महत्व दिया जाना चाहिए। इससे शिक्षकों को शिक्षा को संदर्भित करने में सहूलियत होगी और शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों की गहरी समझ और समाज से उसके संबंधों का बोध भी हो सकेगा।

## 2.6 मूल्यांकन

- यह समझने की आवश्यकता है कि सीखने का मूल्यांकन एक गतिशील प्रक्रिया है जिसमें पर्याप्त संवेदनशीलता और लचीलापन होना चाहिए ताकि यह अनुमान हो सके कि विद्यार्थी ने वास्तव में क्या सीखा है।
- नए शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम में मूल्यांकन की प्रक्रिया सतत हो, ऐसा सुझाव है।

शिक्षक-प्रशिक्षक विद्यार्थी-शिक्षकों का मूल्यांकन उनके गुणों जैसे- सहयोग और सहभागिता, अंवेक्षण और एकीकरण के आधार पर करते हैं। साथ ही लिखित व मौखिक कौशलों, उनकी शैली तथा प्रस्तुतीकरण में नवीनता आदि के आधार पर भी मूल्यांकन किया जाता है।

- मूल्यांकन कई प्रकार के होते हैं जैसे- स्व-मूल्यांकन, पियर मूल्यांकन, शिक्षक का सकारात्मक फीडबैक तथा वर्ष के अंत में किया गया औपचारिक मूल्यांकन। इन सभी मूल्यांकनों का उद्देश्य है विद्यार्थी-अध्यापक अपनी कमियों और अच्छाइयों को समझ सकें और यह समझ सकें कि उसमें क्या सुधार लाया जा सकता है तथा सीखने की प्रक्रिया का अगला लक्ष्य भी निर्धारित कर सकें।
- मूल्यांकन आमतौर पर गुणात्मक होगा न कि मात्रात्मक जिससे कि लगातार यह प्रक्रिया सतत हो और विविध गतिविधियों में उनकी निष्पत्ति के आधार पर उनका स्थान तय होगा।

### नए शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम के लिए आवश्यक समझे जाने वाले कार्य

नए शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम जिसमें से एक की ऊपर चर्चा की गई है, के लिए कुछ उपाय अपनाए जाने की आवश्यकता है। इसके लिए केवल शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम के वर्तमान में पाठ्यचर्या संबंधी बिंदुओं का पुनर्निर्धारण ही काफी नहीं होगा। बल्कि यहाँ तो शिक्षक-शिक्षा के

सैद्धांतिक आयामों को खुलकर रखे जाने की आवश्यकता है। यह शिक्षा के दृष्टिकोण से होना चाहिए। इसके आगे, इसकी पहचान की जानी चाहिए कि शिक्षा में अध्ययन-अध्यापन का केंद्रीय महत्त्व होता है। इसमें कोई शक नहीं कि ऐसी सैद्धांतिक रूपरेखा पर उसकी परिचालन की विस्तृत रूपरेखा बनेगी। ऐसा करने में लाए जाने वाले मुख्य बदलाव निम्नांकित हैं-

1. शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम में अधिगम अनुभव मुख्य रूप से विद्यार्थी प्रधान होंगे क्योंकि ये अनुभव उन्हें सीखने के ऐसे नए आयामों से परिचित कराएँगे जिनमें तरह-तरह की अधिगम परिस्थितियाँ शामिल होंगी जो सीखने में विविधता, अपसारी सोच, चिंतन और सीखने वाली परिस्थितियों के साथ सूक्ष्मदृष्टि के साथ बरताव को बढ़ावा देंगी। साथ ही विद्यार्थियों की सामाजिक विषमताओं, असमानता, लिंग-भेद तथा प्रशासनिक एवं व्यवस्थाजन्य विषमताओं जैसे बड़े मुद्दों का तर्कसम्मत ढंग से मूल्यांकन करने का भी अवसर देंगी। ये सभी बातें हर शिक्षक को शिक्षण को एक व्यवसाय के रूप में देखने और उसकी व्यावसायिक प्रतिबद्धता के लिए मदद देंगी।
2. शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम में शिक्षक की वे क्षमताएँ जो सामान्य मौखिक और शाब्दिक क्षमताओं से परे होती हैं तथा जिनकी सहभागिता आधारित शिक्षा में आवश्यकता है, को विकसित किया जाना शामिल होना चाहिए। उनमें से कुछ क्षमताएँ हैं-  
जानकारी के स्रोतों की पहचान करना जिनकी ज़रूरत विद्यार्थियों को सीखाने संबंधी गतिविधियों

को बनाने के लिए पड़ती है तथा ऐसे स्रोतों को विभिन्न आवश्यकता वाले विद्यार्थियों को उपलब्ध कराना—

- विभिन्न विद्यार्थियों के लिए अलग-अलग गतिविधियाँ।
  - विद्यार्थियों के लिए पठन सामग्री। समूह या व्यक्ति आधारित समस्या सुलझाने का लक्ष्य। अध्ययन का उपयोग और अनुभव का लाभ। विद्यार्थियों को इस तरह की अनुक्रिया देना बिना उत्तर या हल के, जो उन्हें आगे सोचने के लिए बढ़ावा दे।
  - विद्यार्थियों की तर्क क्षमता का इस तरह विकास कि उससे उसे खोज करने तथा उसे बढ़ावा देने में सहयोग मिलें।
  - शुद्धता का फैसला किए बिना विभिन्न प्रकार के जवाबों को सुनना।
3. जिन प्रवृत्तियों की ऊपर चर्चा की गई है वे विद्यार्थी-अध्यापकों में अनुभव कराने से ही धीरे-धीरे विकसित होंगी, इनके बारे में पढ़ने या इन पर भाषण सुनने से नहीं। इसके लिए, विभिन्न प्रकार के अनुभव जो इन्हें न केवल कार्यजगत को पहचानने और समझने में सक्षम बनाते हैं वरन् इन्हें वाँछित अधिगम सदर्भों की 'उत्तम कल्पना' भी प्रदान करते हैं। ऐसा इसलिए कहा गया है क्योंकि देश के अधिकाँश स्थानों में विद्यार्थी-शिक्षक को दिए गए अनुभव ऐसे नहीं होते जो उन्हें प्रेरणा दें। कुछ विद्यालय औरों की तुलना में अधिक व्यवस्थित होते हैं परंतु परीक्षा पुराने ढंग से ही ली जाती है। अतः ऐसी कल्पना की गई है कि शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम के दौरान अनेक प्रकार के अनुभव

- प्रचुर मात्रा में कराए जाएँ जिससे विद्यार्थी-अध्यापक देखने, सोचने, विचार-विमर्श करने, जाँचने, समझने तथा अधिगम स्थितियाँ 'क्या और कैसे' हों इस पर निर्णय ले सकें। इसके लिए कुछ सकारात्मक तथा संभव स्थितियाँ पैदा करनी होंगी, ऐसा कदाचित् कृत्रिम स्थितियों की कल्पना आदि के द्वारा किया जा सकता है या इनकी संप्रत्यात्मक व्याख्या पर पर्याप्त विमर्श, साथ ही संदर्भ सामग्री एवं वास्तविक अभ्यास का भी सहारा लिया जा सकता है।
4. सांस्थानिक तौर पर नया शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम बदली हुई व्यवस्था की माँग करता है। इस अर्थ में इसके कार्यान्वयन के लिए आवश्यक पाठ्यचर्या विवरण तैयार किए जा सकते हैं। प्रासंगिक अवस्थाओं के स्कूलों के साथ अधिक जुड़ाव ज़रूरी होगा। पाठ्यचर्या का आदान-प्रदान न केवल अधिगम की प्रकृति, गति और शैली में विविधता लिए होगा बल्कि अपेक्षाओं के प्रकार और सुविधाओं में भी। शिक्षक-प्रशिक्षक की भूमिका अधिगम को सहज बनाने वाली होगी न कि ऐसी जैसे एक शिक्षक मात्र कोई कोर्स पढ़ा रहा है। आकलन के लिए भी जोर प्रक्रिया में भागीदारी पर ज्यादा होगा न कि परिणामों पर। इस कार्यक्रम को विद्यार्थी-शिक्षकों को इस तरह के अनुभव देने होंगे जिसमें वे स्वयं खोजें, चिंतन करें, आलोचनात्मक मूल्यांकन, प्रयोग तथा स्वयं द्वारा लिए गए निर्णय की जिम्मेदारी। ये सभी अनुभव उन्हें स्कूलों में प्रभावी ढंग से कार्य करने में समर्थ बनाते हैं। कार्य क्षेत्र के

- विविध अभ्यासों तथा अतीत के अनुभवों से अर्थपूर्ण दृष्टि प्राप्त की जा सकती है।
5. इस प्रकार के विद्यार्थी-आधारित वैविध्यपूर्ण पाठ्यक्रम की संभावना आज आई.सी.टी. के कारण बढ़ गई है। सार्थक तरीके से आई.सी.टी. का उपयोग शिक्षकों के लिए रोचक प्रोजेक्ट की रचना करने, समस्या सुलझाने की परिस्थितियों का निर्माण करने तथा प्रभावी अधिगम परिस्थितियों के कृत्रिम अनुभव देने में मदद कर सकता है। वास्तव में शिक्षकों को उन प्रभावी अधिगम स्थितियों का अनुभव दिया जा सकता है जो उन्होंने विविध सामाजिक और सांस्कृतिक संदर्भों में निर्मित की हैं। इन सफल प्रयोगों पर उपलब्ध सामग्री को खोजा जा सकता है। उन स्थानों पर जहाँ विद्यार्थी-शिक्षकों को अर्थपूर्ण अनुभव देना कठिन है, यह बहुत ही महत्वपूर्ण अनुभव होगा।
  6. शिक्षा के क्षेत्र में मास मीडिया, आई.सी.टी. और उपग्रह-आधारित टीवी के शामिल हो

- जाने से शिक्षक की भूमिका और महत्वपूर्ण हो गई है। अधिगम परिस्थितियों के निर्माण के क्षेत्र में कई लोगों की भागीदारी होने से शिक्षकों की नई दक्षताओं की माँग बढ़ गई है ताकि उनसे सार्थक ढंग से मदद ली जा सके। शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम ऐसा होना चाहिए जिसमें विद्यार्थी-शिक्षक को विभिन्न प्रकार की अधिगम परिस्थितियों में काम करना सिखाया जाए।
7. जैसा कि अभिकल्पित है यदि उसी तरह का बदलाव आये तो बदले हुए अभ्यास शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों में पर्याप्त और सुव्यवस्थित बदलाव ला सकेंगे और उससे नई जमीन तैयार होगी। इससे सेवाकालीन प्रशिक्षण का माहौल भी बदलेगा, क्योंकि नए शिक्षक की आवश्यकताएँ अलग होंगी। इस परिस्थिति में सेवा-पूर्व और सेवाकाल में अपने आप मजबूत संबंध हो जाएगा।” यह एक जानी हुई बात हो जाएगी। इससे सेवाकाल कार्यक्रम पूरी तरह शिक्षक विकास कार्यक्रम

बदलाव	
से	की ओर
शिक्षक केंद्रित, स्थिर डिजाइन शिक्षक के निर्देश और निर्णय शिक्षक का मार्गदर्शन और प्रबोधन समूह में सीखना विद्यार्थी ग्रहणशीलता 'दिया गया' स्थिर ज्ञान रैखिक अनुभव सीखने को एक जैसे (आम)कार्य विषय केंद्रित	विद्यार्थी केंद्रित, लचीली प्रक्रियाएँ विद्यार्थी की स्वायत्तता सीखने को सरल (आसान) बनाना। सहयोगी अधिगम सीखने में विद्यार्थी की भागीदारी विकसित होता ज्ञान विविध अनुभव सीखने के व्यक्तिगत तरीके बहु विषय केंद्रित, शिक्षा केंद्रित

होगा, और इस अर्थ में शिक्षक के लिए यह जीवनपर्यंत शिक्षा होगी।

संक्षिप्त में नया शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम विद्यालयी व्यवस्था में होने वाले परिवर्तनों के प्रति ज्यादा उत्तरदायी होगा क्योंकि यह सार्थक पैराडाइम बदलाव लेकर आएगा। कुछ मुख्य बदलाव नीचे इंगित किए गए हैं —

### अनुशासनाएँ

शिक्षक-शिक्षा की पाठ्यचर्या और प्रक्रिया के पुनर्योजन की आवश्यकता को दोहराते हुए, जैसी कि विभिन्न शिक्षा आयोगों ने अनुशासना की है, यह आधार पत्र स्कूली पाठ्यचर्या नवीकरण की प्रक्रिया के संस्थानीकरण करने में शिक्षक की भूमिका को एक सक्रिय 'एजेंसी' के रूप में देखता है। यह तर्क दिया जा सकता है कि चिंतनशील शिक्षकों को तैयार किए बिना स्कूली शिक्षा में बदलाव लाने के उद्देश्य से स्कूली पाठ्यचर्या की समीक्षा का अभ्यास सफल नहीं हो सकता। आगामी खंड में संरचनात्मक और व्यावहारिक तौर-तरीकों के संबंध में कुछ प्रमुख अनुशासनाएँ रखी गई हैं जिनकी स्कूली पाठ्यचर्या नवीकरण संबंधी शिक्षक-शिक्षा के सरोकारों के संदर्भ में आवश्यक है —

1. सभी प्रकार के शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम—पूर्व-प्राथमिक, प्राथमिक, माध्यमिक को विश्वविद्यालयों से संबद्ध कर दिया जाना चाहिए।
2. शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम को लागू करते हुए प्रशिक्षकों, विद्यार्थी-शिक्षकों और शिक्षकों को पूरी आजादी दी जानी चाहिए कि इसके लिए उनको जो भी उपयुक्त लगे, कर सकते हैं।
3. 10+2 स्तर की पढ़ाई के बाद शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम सिद्धांततः पाँच वर्षों की अवधि का होना चाहिए।
4. शिक्षक-शिक्षा के एक एकीकृत ढाँचे में ऐसे मूल घटक शामिल हो सकते हैं जो संपूर्ण शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम—पूर्व प्राथमिक, प्रारंभिक तथा माध्यमिक स्तर में समान रूप से लागू हों जिसके बाद शिक्षा के विशिष्ट चरण में व्यावसायिक विकास की विशेषज्ञता का भी प्रावधान हो।
5. एन.सी.टी.ई., एन.सी.ई.आर.टी. जैसी राष्ट्रीय संस्थाओं और उनकी राज्य स्तर की सहयोगी संस्थाओं की पूर्व-लिखित कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका है। उनके द्वारा समन्वयन की आवश्यकता है तथा उन्हें इस तरह की प्रक्रियाओं के लिए पहल भी करनी चाहिए। उनके लिए आवश्यक है कि वे व्यक्ति एवं संस्थाओं को प्रोत्साहित करें जो इस तरह के एक या दो कार्यों को आगे बढ़ाने में पहल लें। उनका मुख्य लक्ष्य, इस क्षेत्र में बदलाव के लिए अनुकूल वातावरण का निर्माण करना है। नई व्यवस्था के सफल कार्यान्वयन के लिए समुचित सहायक संसाधनों को उपलब्ध कराना है।
6. शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रम को इस तरह से पुनर्निर्मित किए जाने की आवश्यकता है कि वे स्कूल पाठ्यचर्या के नवीकरण की प्रक्रिया और अपने क्षेत्र विशेष के संदर्भ में प्रासंगिक हो सकें।
7. इस आधार पत्र में प्रस्तावित शिक्षक-शिक्षा का प्रक्रिया आधारित मॉडल शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों का मुख्य आधारीक ढाँचा बनना



चाहिए जिस पर शिक्षा के पूर्व-प्राथमिक, प्रारंभिक तथा माध्यमिक स्तरों के शिक्षक-शिक्षा कार्यक्रमों का पुनः निर्माण किया जाए सभी राज्यों और जिलों में एस.सी.ई.आर.टी./डी.आई.ई.टी. (डाइट) को विश्वविद्यालयी संस्थानों से जोड़ते हुए।

8. एन.सी.ई.आर.टी. और एन.सी.टी.ई. के बीच उच्च स्तरीय सलाहकार संबंध हों ताकि स्कूली पाठ्यचर्या और शिक्षक-शिक्षा को जोड़ा जा सकें और इस विकसित प्रक्रिया का नवीकरण किया जा सके।
9. स्कूली पाठ्यचर्या नवीकरण के संदर्भ में राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षक-शिक्षा पाठ्यचर्या की समीक्षा की आवश्यकता है।
10. नव अभिकल्पित शिक्षक-शिक्षा तथा विकास के कार्यान्वयन के लिए संभावित रणनीति के विकास की परिचर्चा के लिए राष्ट्रव्यापी सेमिनार तथा कार्यशालाएँ आयोजित की जानी चाहिए।

### उपसंहार

स्वातंत्र्योत्तर भारत में शिक्षा ने बहुतों के लिए सामाजिक बहिष्करण के उपकरण के रूप में काम किया है, समतामूलक समाज के संवैधानिक लक्ष्यों से उन्हें और अधिक दूर करते हुए। अतः स्कूली पाठ्यचर्या के नवीकरण का यह प्रयास ऐसी शिक्षा व्यवस्था को स्थापित करने के संदर्भ में स्थित होना चाहिए जो भारतीय

समाज की संवैधानिक दृष्टि के अनुकूल केंद्रिक मूल्यों और रूपांतरण करने वाले लक्ष्यों पर आधारित हो।

1990 के दशक में बहुत-से नवाचारों और शैक्षिक सुधारों का फोकस बच्चे की प्रकृति को महत्व देने की आवश्यकता पर था। यही नहीं उसके सीखने की गति और उसे शिक्षा में उपयुक्त स्थान देने की बात काफ़ी पुरजोर तरीके से कही जाती थी। लेकिन भारत में विद्यालयी शिक्षा को पुनर्जीवित करने की आशा चाहे वह आदर्शवादी प्रयासों के द्वारा हो या सैद्धांतिक प्रयासों के द्वारा, बहुत कम सफलता मिलेगी अगर शिक्षक की केंद्रीय भूमिका न पहचानी गई।

इसके साथ उन विविध बाधाओं को भी पहचाना जाना चाहिए जिसका सामना एक औसत शिक्षक करता है: सामाजिक, सांस्कृतिक, कौशल तथा जेंडर-आधारित। शिक्षक की दक्षताओं, कौशलों, ज्ञान और दृष्टिकोण में रूपांतरण तथा स्कूल के वातावरण में बदलाव एक प्रबुद्ध पाठ्यचर्या के आदान-प्रदान के लिए पहली शर्त है न कि इसके विपरीत जैसा कि आज माना जाता है। इस तरह के अभ्यास को साकार करना बहुत आसान नहीं होगा जैसा कि शिक्षक-शिक्षा को रूपांतरणीय पेशे के रूप में बदलने की अधूरी कोशिश में देखा गया है। इसके लिए बड़े पैमाने पर संरचनात्मक तथा प्रक्रियात्मक बदलावों की आवश्यकता है जिन्हें इस आधार पत्र में रेखांकित किया गया है।

## NCERT EDUCATIONAL JOURNALS

*Revised Rates w.e.f. 1.1.2009*

<i>Title Single</i>	<i>Annual Copy</i>	<i>Subscription</i>
<b>School Science</b> A Quarterly Journal for Secondary Schools	Rs. 55.00	220.00
<b>Indian Educational Review</b> A Half-Yearly Research Journal	Rs. 50.00	100.00
<b>Journal of Indian Education</b> A Quarterly Journal of Education	Rs. 45.00	180.00
<b>भारतीय आधुनिक शिक्षा ( त्रैमासिक )</b> ( <i>Bharatiya Adhunik Shiksha</i> ) A Quarterly Journal in Hindi	Rs. 50.00	200.00
<b>Primary Teacher</b> A Quarterly Journal for Primary Teachers	Rs. 65.00	260.00
<b>प्राथमिक शिक्षक ( त्रैमासिक )</b> ( <i>Prathmik Shikshak</i> ) A Quarterly Journal in Hindi for Primary Teachers	Rs. 65.00	260.00
<b>Indian Educational Abstracts</b> A Half-yearly Journal	Rs. 75.00	150.00

***For further details please contact :***

The Chief Business Manager  
Publication Department, NCERT  
Sri Aurobindo Marg  
New Delhi 110 016



राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्  
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING